DAMAGE BOOK

UNIVERSAL LIBRARY

OU_176955

UNIVERSAL LIBRARY

समर्पण

अपने पूज्य देवता

के

चरण-कमलों

में

आवश्यक निवेदन

हैदराबाद के निज़ाम, भूपाल, रामपुर आदि के नवाब उर्दू के लिये लाखों रुपया खर्च कर रहे हैं। पर हमारे हिंदू-नरेश, ताल्लुक़दार, ज़मींदार और रईस प्रायः गाढ़ी नींद में सो रहे हैं। मुस्लिम-लीग ने हज़ारों उर्दू-पुस्तकालय देश-भर में खुलवाए हैं। हिंदू-सभा के कार्यकर्ता इस ओर से बिलकुल उदासीन हैं। उन्हें मालूम होना चाहिए कि बिना राष्ट्र-भाषा हिंदी की उन्नति के देश स्वतंत्र नहीं हो सकता, और हिंदू संगठित नहीं किए जा सकते। जो हो, हमारे यहाँ हिंदी-भाषा-भाषी करोड़पति हज़ारों और लखपती लाखों सज्जन हैं। उन्हें अपना कर्तव्य सुझाने के लिये कर्मवीर कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। कांग्रेस, हिंदू-महासभा, आर्यसमाज, सनातनधर्म-सभा, रामायण-मंडल, गीता-मंडल, महंत-मंडल, क्षत्रिय-महासभा, ब्राह्मण-सभा, कायस्थ-महासभा, भार्गव सम्मेलन आदि सभी सभाओं और मंडलों को जुटकर हमारी इस लाइब्रेरी-योजना को सफल बनाना चाहिए।

हमारे पढ़े-लिखे सब बंगाली, गुजराती, मराठी भाई अपने घर में अवश्य अपनी मातृभाषा की अच्छी-अच्छी पुस्तकें रखते हैं। वही भावना हिंदी-भाषी प्रांतों में फैलाने के लिये उद्योगी स्त्री-पुरुषों की तुरंत आवश्यकता है। हमें आप प्रत्येक शहर, क़सबे और ज़िले में काम करने के लिये ऐसे व्यक्ति दीजिए, जिनमें सेवा-भाव हो, और जो हिंदी-सेवा में अपना जीवन दे सकें, साथ ही कुछ कमाएँ भी। हम उनको काफ़ी वेतन और खाने-पीने तथा घूमने का ख़र्च देंगे।

कवि-कुटीर, लखनऊ
१।५।४१

सावित्री दुलारेलाल

भूमिका

ग्वालियर-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन से लौटते समय मैं चिरगाँव उतर पड़ा। मेरे अनन्य मित्र भाई मैथिलीशरणजी गुप्त के अनुज सियारामशरणजी बीमार थे, और मुझे उन्हें देखना था। चिरगाँव पहुँचकर मालूम हुआ कि वह बिराटा के निकट करकोस-ग्राम वायु-परिवर्तनार्थ गए हुए हैं। बस, बंधु मैथिलीशरण को लेकर मैं भी तुरंत उस ओर चल पड़ा। दूसरे दिन हम सब बिराटा के क़िले को, जो अब खँडहर के रूप में है, देखने गए। वहाँ देवी के मंदिर के भी दर्शन किए। बेतवा वहाँ बल खाती हुई अपने शुद्ध जल से किनारों को हरा-भरा कर रही है। वहाँ की एकांत शांति और आनंदमय सुनसान देखने और अनुभव करने की ही चीज़ है। मंदिर के नीचे एक विस्तृत समतल चट्टान है, जिसे देखकर मुझे ऐसा ख़याल आया कि यदि भारत के कोने-कोने से कवि इकट्ठे होकर वहाँ सम्मिलित हों, तो ज्योत्स्ना से नहाई हुई रजनी में वहाँ बहुत सुंदर बृहत् कवि-सम्मेलन हो सकता है। करकोस के कमनीय, शांत वातावरण में, मुझे एक कुएँ को देखकर, जिसमें रहँट लगा हुआ था, एक नया भाव सूझा, और वहीं मैंने अपना वह दोहा लिखा, जो सरस्वती-संपादक ठाकुर श्रीनाथसिंह को बहुत पसंद है—

हृदय कूप, मन रहँट, सुधि-माल माल, रस राग,
बिरह बृषभ, बरहा नयन, क्यों न सिंचै तन-बाग?

अस्तु, वर्माजी के इस उपन्यास की घटना जहाँ घटी थी, उस पवित्र ऐतिहासिक स्थान के दर्शनों का सौभाग्य हमें भी प्राप्त हो

चुका है। वर्माजी सिद्ध-हस्त उपन्यास-लेखक हैं। ऐतिहासिक उपन्यास तो जैसे आपने लिखे हैं, वैसे हिंदी में और किसी ने भी नहीं। आपका 'गढ़-कुंडार'-उपन्यास हिंदी-संसार द्वारा समादृत हो चुका है। इस पर नागरी-प्रचारिणी सभा से २००) का पुरस्कार भी मिल चुका है। प्रस्तुत उपन्यास भी ऐतिहासिक है। इसका कथानक इस प्रकार है—

दलीपनगर के राजा नायकसिंह के दो रानियाँ थीं—बड़ी रानी और छोटी रानी। और केवल एक दासी-पुत्र कुंजरसिंह था। राजा नायकसिंह के कोई औरस पुत्र न था। कामुक थे। बुढ़ापे में कामुकता और बढ़ गई, और दिमाग़ में ख़लल आ गया। सनक बढ़ गई। मंत्री को, किसी अपराध में, जिससे उपन्यास का कोई संबंध नहीं, दलीपनगर में नज़रबंद रहने का आदेश था। मंत्री का वास्तविक काम जनार्दन शर्मा करता था। यह एक चतुर, दूरदर्शी, ज़रा स्वार्थी, धूर्त, मान पर चोट लगने पर कुछ उत्तेजित हो जानेवाले स्वभाव का तथा सहसा पराक्रम या वीरता न दिखलानेवाला, दृढ़ प्रकृति का दरबारी था।

लोचनसिंह राजा का सेनापति था। वह राजा के व्यक्तित्व से राजा के पदकी अधिक मान-मर्यादा करता था। मरने-मारने से न कभी डरता था, और न जान-बूझकर इसमें चूकता था। दृढ़ और कठोर था, सहसाप्रवर्ती और सुलभकोपी, परंतु प्रण का हठ निभानेवाला।

हकीम आग़ा हैदर राजभक्त मुसलमान दरबारी था, और रामदयाल पतित, भ्रष्ट, स्वामिभक्त नौकर। प्रेम ने अंत में इसे कुछ ऊँचा उठाया।

राजा नायकसिंह को बुढ़ापे में असंयम के कारण रोग हो गए थे, उन्हीं के कारण उनका देहांत हुआ था। कुछ लोगों को संदेह था कि उन्हें विष दिया गया।

देवीसिंह को, जो राजा का सगोत्री था, दलीपनगर का राज्य मिला। देवीसिंह संयमी और वीर था, परंतु पद-गौरव के कारण अपने पुराने ऋणों को भूल गया। कालपी के नवाब के साथ जो युद्ध राजा नायकसिंह के ज़माने में आरंभ हो गया था, वह देवीसिंह के राजा होने पर फिर जारी हो गया।

इस युद्ध के फिर चल पड़ने के कई कारण हुए। नायकसिंह के दासी-पुत्र कुंजरसिंह को राजगद्दी न मिली। वह खिन्न हो गया। उसने विद्रोह किया। छोटी रानी ने उसका साथ दिया। यह क्रूर, दृढ़-प्रकृति, सहसाप्रवर्तिनी थी। कालपी के नवाब की सहायता छोटी रानी ने ली।

बिराटा की पद्मिनी—कुमुद—के रूप, लावण्य और सौंदर्य की प्रशंसा दूर-दूर तक थी। उसका जन्म दाँगी-कुल में हुआ था। अनेक लोग उसे देवी का अवतार समझते थे। उसे स्वयं कभी-कभी भान होता था कि मैं देवी का अवतार हूँ। परंतु वह इस विश्वास को भी दूर नहीं रख सकती थी कि मनुष्य-देह में नारी-प्रवृत्ति लिए हुए हूँ। कुंजरसिंह उसे चाहता था। और, वह भी शायद अपने भक्त पर और लोगों से अधिक कृपा करती रही होगी।

इसी बिराटा की पद्मिनी की पालर में उपस्थिति के कारण नायक-सिंह और कालपी के नवाब अलीमर्दान की सेनाओं में मुठभेड़ हो गई, और देवीसिंह राजा नायकसिंह की कृपा का पात्र बना।

परंतु देवीसिंह को दलीपनगर का राज्य जनार्दन शर्मा के षड्यंत्र के कारण मिला। जनार्दन शर्मा छोटी रानी और कुंजरसिंह का कोप-भाजन इसी कारण बना। तब युद्ध हुए। बिराटा का दाँगी सरदार भी आत्मरक्षा और पद्मिनी की रक्षा में अपनी छोटी-सी—बहुत छोटी-सी—सेना लेकर युद्ध में शामिल हो गया। देवीसिंह रानियों का विद्रोह दमन करना चाहता था। कालपी का नवाब

रानियों की सहायता और बिराटा की पद्मिनी को अपने बस में करना चाहता था। देवीसिंह पद्मिनी की सहायता के लिये आया था। परंतु कुंजरसिंह को घटनाओं ने बिराटा के पक्ष में रहते हुए भी राजा देवीसिंह के विरुद्ध कर दिया। तब सबकी अंधाधुंध लड़ाई हुई। रामदयाल को इस लड़ाई में अपनी दुष्कृतियाँ करने का उत्साह मिला।

अंत में बिराटा के मुट्ठी-भर दाँगियों ने नवाब और देवीसिंह की बड़ी-बड़ी सेनाओं का वीरता के साथ मुक़ाबला करते हुए साका किया, और पद्मिनी जल-राशि में तिरोहित हो गई। यहाँ बहुत संक्षेप में इस उपन्यास की बड़ी-बड़ी घटनाओं के संबंध-मात्र का दिग्दर्शन करा दिया गया है।

इस उपन्यास की मुख्य कला देव और मनुष्य-चरित्र का, बल और दुर्बलता का मिश्रण है। पात्रों का चरित्र-चित्रण बहुत सुंदर हुआ है। वार्तालाप और कथोपकथन को स्वाभाविक बनाए रखने का आद्योपांत प्रयत्न किया गया है। इस उपन्यास की कला की बारीकियों का वर्णन करने में एक छोटा-सा ग्रंथ अलग लिखना चाहिए। इसे भविष्य में कोई योग्य समालोचक करेंगे। हमारे-ऐसे बहुधंधी के पास इतना समय कहाँ?

इसमें बिराटा का चित्र बड़े परिश्रम और धन-व्यय के बाद प्राप्त करके लगाया गया है। आशा है, इसे पाठक पसंद करेंगे।

हम चेष्टा कर रहे हैं कि फिर शीघ्र ही वर्माजी की कोई सुंदर चीज़ लेकर हिंदी-भाषा-भाषियों की सेवा में समुपस्थित हों।

कवि-कुटीर
लखनऊ
१२।४।३६

दुलारेलाल

परिचय

सुरतान पुरा (परगना मौठ, ज़िला झाँसी)-निवासी श्रीनंदू पुरोहित के यहाँ मैं प्रायः जाया करता था। उन्हें किंवदंतियाँ और कहानियाँ बहुत आती थीं। वह कहते-कहते कभी नहीं थकते थे, चाहे सुननेवालों को सुनते-सुनते नींद भले ही आ जाय।

एक रात मैं उनके यहाँ गया। नींद नहीं आ रही थी, इसलिये एक कहानी कहने के लिये प्रार्थना की। ज़रा हँसकर बोले—"तुम भाई, सो जाते हो। कहानी की समाप्ति पर 'ओफ़्फ़ो !' कौन कहेगा ?"

मैंने उनसे कहा—"काका, आज नहीं सोऊँगा, चाहे होड़ लगा लो।"

"अच्छा," वह बोले—"भैया, मैं आज ऐसी कहानी सुनाऊँगा, जिस पर तुम कविता बनाकर छपवा देना।"

वह पढ़े-लिखे न थे, इसलिये हिंदी की छपी हुई पुस्तकों को प्रायः कविता की पोथियाँ कहा करते थे।

'विराटा की पद्मिनी' की कहानी उन्होंने सुनाई थी। यह कहानी सुनकर मुझे उस समय तो क्या, सुनने के बाद भी, बड़ी देर तक; नींद नहीं आई। परंतु खेद है, उसके

प्रस्तुत रूप में समाप्त होने के पहले ही उन्होंने स्वर्गलोक की यात्रा कर दी, और मैं उन्हें परिवर्तित और संवर्द्धित रूप में यह कहानी न सुना पाया !

पद्मिनी की कथा जहाँ-जहाँ दाँगी हैं, झाँसी-ज़िले के बाहर भी, प्रसिद्ध होगी। उपन्यास लिखने के प्रयोजन से मैंने नंदू काका की सुनाई हुई कहानी के विख्यात अंशों की परीक्षा करने के लिये और कई जगह उसे सुना। बिराटा के एक वयोवृद्ध दाँगी से भी हठ-पूर्वक सुना। उस वयोवृद्ध ने मुझसे कहा था—"अब का धरो इन बातन में ? अपनो काम देखो जू। अब तो ऐसे-ऐसे मनुख होने लगे कै फूँक मार दो, तो उड़ जायँ।" इसके पश्चात् मैंने बिराटा, रामनगर और मुसावली की दस्तूरदेहियाँ सरकारी दफ़्तर में पढ़ीं। उनमें भी पद्मिनी के बलिदान का सूक्ष्म वर्णन पाया।

मुसावली की दस्तूरदेही में लिखा है कि मुसावली-पाठे के नीचे के दो कुओं को एक बार दतिया के महाराज ने खुदवाया था। ये कुएँ पक्के थे, परंतु अब अस्त-व्यस्त हैं।

देवीसिंह, लोचनसिंह, जनार्दन शर्मा, अलीमर्दान इत्यादि नाम काल्पनिक हैं, परंतु उनका इतिहास सत्य-मूलक है। देवीसिंह का वास्तविक नाम इस समय नहीं बतलाया जा सकता। अनेक कालों की सच्ची घटनाओं का एक ही समय में समावेश कर देने के कारण मैं इस पुरुष के संबंध की घटनाओं को दूसरी घटनाओं से अलग करके बतलाने में असमर्थ हूँ।

जनार्दन शर्मा का वास्तविक व्यक्तित्व एक दुखांत घटना है। जिस तरह जनार्दन ने जाल रचकर देवीसिंह को राज्य दिलाया था, उसी तरह वह इतिहास और किंवदंतियों में भी प्रसिद्ध है, परंतु वास्तविक जनार्दन का अंत बड़ा भयानक हुआ था।

कहा जाता है, राजा नायकसिंह के वास्तविक नामधारी राजा के मरने के बाद उनकी रानी ने प्रण किया था कि जब तक जनार्दन (वास्तविक व्यक्ति) का सिर काटकर मेरे सामने नहीं लाया जायगा, तब तक मैं अन्न ग्रहण न करूँगी। रानी का एक सेवक जब उस बेचारे का सिर काट लाया, तब उन्होंने अन्न ग्रहण किया! यह घटना झाँसी के निकट के एक ग्राम गोरामछिया की है।

लोचनसिंह के वास्तविक रूप का इस संसार में विलीन हुए लगभग बीस वर्ष से अधिक नहीं हुए। वह बहुत ही उद्दंड और लड़ाकू प्रकृति के पुरुष थे। मेरे मित्र श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त ने उनके एक उद्दंड कृत्य पर 'सरस्वती' में, 'दस्ताने'-शीर्षक से, एक कविता भी लिखी थी।

परंतु, जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, उपन्यास-कथित घटनाएँ सत्य-मूलक होने पर भी अपने अनेक कालों से उठाकर एक ही समय की लड़ी में गूँथ दी गई हैं, इसलिये कोई महाशय उपन्यास के किसी चरित्र को उसके वास्तविक रूप का संपूर्ण प्रतिबिंब न समझें, और यदि कोई बात ऐसे चरित्र

की उन्हें खटके, तो बुरा न मानें। इसी कारण मैं उपन्यास-वर्णित मुख्य चरित्रों का विस्तृत परिचय इस समय न दे सका।

लेखक

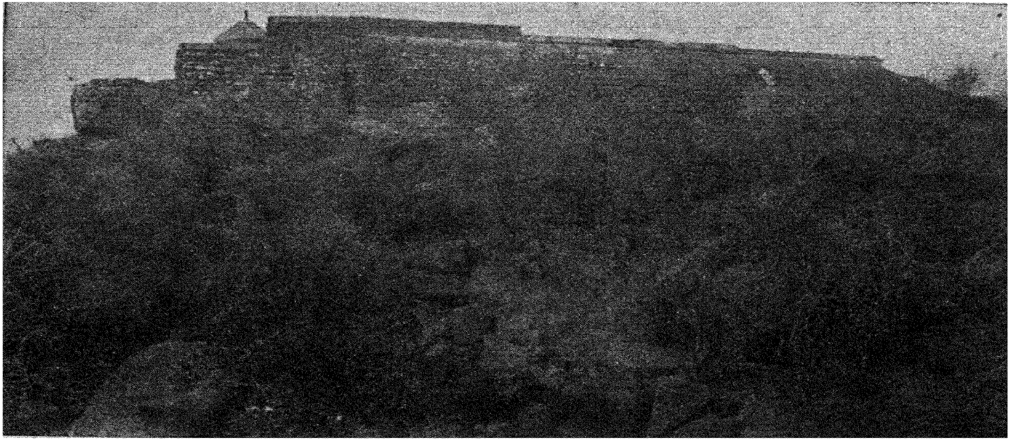

बिराटा का क़िला
(भग्नावशेष)

बिराटा की पद्मिनी

(१)

मकर-संक्रांति के स्नान के लिये दिलीपनगर के राजा नायकसिंह पहूज में स्नान करने के लिये विक्रमपुर आए। विक्रमपुर पहूज-नदी के बाएँ किनारे पर बसा हुआ था। नगर छोटा-सा था, परंतु राजा और राजसी ठाट-बाट के इकट्ठे हो जाने से चहल पहल और रौनक़ बहुत हो गई थी।

दूसरे दिन दोपहर के समय स्नान का मुहूर्त था। बिना किसी काम के ही राजा के कुछ दरबारी संध्या के उपरांत राजभवन में मुजरा के बहाने ग़पशप के लिये आगए। जनार्दन शर्मा यद्यपि मंत्री न था, तथापि राजा उसे मानते बहुत थे। वह भी आया।

बातचीत के सिलसिले में राजा ने जनार्दन से कहा—"पहूज में तो पानी बहुत कम है। डुबकी लगाने के लिये पीठ के बल लेटना पड़ेगा।"

"हाँ महाराज!" जनार्दन ने सकारा—"पानी मुश्किल से घुटनों तक होगा। थोड़ी दूर पर एक कुंड है, उसमें स्नान हों, तो वैसी मर्ज़ी हो।"

अधेड़ अवस्था का एक दरबारी लोचनसिंह, जो अपने सनकी स्वभाव के लिये विख्यात था, बोला—"दो हाथ के लंबे-चौड़े उस कुंड में डुबकी लगाकर कीचड़ उछालना होली के हुल्लड़ से कम थोड़े ही होगा।"

जिस समय लोचनसिंह राजा के सामने बातचीत करने के लिये मुँह खोलता था, अन्य दरबारियों का सिर घूमने लगता था। उमर

के साथ-साथ राजा के मिजाज़ में गरमी बढ़ गई थी। बहुधा आपस में, अकेले में, लोग कहा करते थे, पागल हो गए हैं। लोचनसिंह की बात पर राजा ने गरम होकर कहा—"तब तुम सबों को कल कोस-भर नदी खोदकर गहरी करनी पड़ेगी।"

लोचनसिंह बोला—"मैं अपनी तलवार की नोक से कोस-भर पहूज-नदी तो क्या, बेतवा को भी खोद सकता हूँ। हुक्म-भर हो जाय।"

राजा को कोप तो न हुआ, परंतु खीझ कुछ बढ़ गई। कुछ कहने के लिये राजा एक क्षण ठहरे। सैयद आग़ा हैदर राजवैद्य एक सावधान दरबारी था। मौक़ा देखकर तुरंत बोला—"महाराज की तबियत कुछ दिनों से ख़राब है। धार्मिक कार्य थोड़े जल से भी पूरा किया जा सकता है। अगर मुनासिब समझा जाय, तो गहरे, ठंडे पानी में देर तक डुबकी न ली जाय।"

लोचनसिंह तुरंत बोला—"ऐसी हालत में मैं महाराज को पानी में अधिक समय तक रहने ही न दूँगा। जितना पानी इस समय पहूज में है, वह बीमारी को सौगुना कर देने के लिये काफ़ी है।"

राजा ने दृढ़ता-पूर्वक कहा—"यही तो देखना है लोचनसिंह। बीमारी बढ़ जाय, तो हकीमजी के हुनर की परख हो जाय, और यह भी मालूम हो जाय कि तुम मुझे पानी में एक हज़ार डुबकियाँ लगाने से कैसे रोक सकते हो?"

लोचनसिंह बोला—"हकीमजी का कहा न मानकर जब महाराज को डुबकी लगाने पर उतारू देखूँगा, तब अपना गला काटकर उसी जगह डाल दूँगा, फिर देखा जायगा, कैसे हौसला होता है।"

लोचनसिंह की सनक से राजा की भड़क का ज्वार बढ़ा। बोले—"शर्माजी, पहूज में स्नान न होगा। उसमें पानी नहीं है। पहले तुमने नहीं बतलाया, नहीं तो इस कंबख़्त नदी की तरफ़

सवारी न आती।" "महाराज, महाराज!" जनार्दन ने सकपका-कर कहा—"मुझे स्वयं पहले से न मालूम था।"

राजा बोले—"बको मत। तुम्हारे षड्यंत्रों को खूब समझता हूँ। कुंजरसिंह को बुलाओ।"

कुंजरसिंह राजा का दासी-पुत्र था। वह राज्य का उत्तराधिकारी न था, तो भी राजा उसे बहुत चाहते थे। राजा के दो रानियाँ थीं। बड़ी रानी उसे चाहती थी, इसलिये छोटी का उस पर प्यार न था। राजा बहुत वृद्ध न हुए थे। इधर-उधर के कई रोगों के होते हुए भी राजवैद्य ने आशा दिला रक्खी थी कि उत्तराधिकारी उत्पन्न होगा। इसीलिये राजा ने दूसरा विवाह भी कर लिया था, और दासियों के बढ़ाने की प्रवृत्ति में भी, चाहे पागलपन से प्रेरित होकर, चाहे किसी प्रेरणा-वश, बहुत अधिक कमी नहीं हुई थी। यह देखकर राजसभा के लोगों को विश्वास था कि किसी-न-किसी दिन पुत्र उत्पन्न होगा।

कुंजरसिंह आया। २०-२१ वर्ष का सौंदर्यमय बलशाली युवा था। राजा ने उसे अपने पास बिठलाकर कहा—"कल पहूज में स्नान न होगा।"

"क्यों काकाजू?" कुंजरसिंह ने संकोच के साथ पूछा।

"इसलिये कि उसमें पानी नहीं है।" राजा ने उत्तर दिया—"हमको व्यर्थ ही यहाँ लिवा लाए।"

कुंजरसिंह राजा के विक्षिप्त स्वभाव से परिचित था। जनार्दन और लोचनसिंह का मुँह ताकने लगा।

लोचनसिंह ने कहा—"हकीमजी कहते हैं, नहाने से बीमारी बढ़ जायगी।"

कुंजरसिंह ने धीरे से कहा—"दलीपनगर में ही मालूम हो जाता, तो यहाँ तक आने का कष्ट महाराज को क्यों होता?"

आत्मरक्षा में हकीम को कहना पड़ा—"थोड़ी देर के स्नान से कुछ नुक़सान न होगा।"

राजा बोले—"तब पालर की झील में डुबकी लगाई जायगी, बड़े सबेरे डेरा पालर पहुँच जाय।"

पालर ग्राम विक्रमपुर से चार कोस की दूरी पर था। चारो ओर पहाड़ों से घिरी हुई पालर की झील में गहराई बहुत थी। उसमें डुबकियाँ लगाने के परिणाम का अनुमान करके आग़ा हैदर काँप गया। बोला—"ऐसी मर्ज़ी न हो। झील बहुत गहरी है, और उसका पानी बहुत ठंडा है।"

"और तुम्हारी दवा घूरे पर फेकने लायक़।" राजा ने हँसकर और फिर तुरंत गंभीर होकर कहा—"तुम्हारे कुश्तों में कुछ गुण होगा, और तुम्हारी शेख़ी में कुछ सचाई, तो झील में नहाने से कुछ न बिगड़ेगा। नहीं तो रोज़-रोज़ के मरने से तो एक ही दिन मर जाना कहीं अच्छा।"

जनार्दन विषयांतर के प्रयोजन से बोला—"अन्नदाता, सुना जाता है, पालर में एक दाँगी के घर दुर्गाजी ने अवतार लिया है। सिद्धि के लिये उनकी बड़ी महिमा है।"

"तुमने आज तक नहीं बतलाया?" राजा ने कड़ककर पूछा, और तकिए पर अपना सिर रख लिया।

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—"सुनी हुई ख़बर है। ग़लत निकलती, तो कहनेवाले को यों ही अपने सिर की कुशल के लिये चिंता करनी पड़ती।"

"चुप-चुप।" राजा ने तमककर कहा—"बहुत बड़बड़ मत करना, नहीं तो पीछे पछताओगे।"

"मूड़ ही न कटवा लेंगे आप?" लोचनसिंह अदम्य भाव से बोला—"सो उसका मुझे कुछ डर नहीं है।"

राजा प्रतिहत-से हो गए।

उपस्थित उलझाव का एक ही सुलझाव सोचकर कुंजरसिंह ने कहा—"काकाजू, पालर चलकर संक्रांति का स्नान हो जाय, और उस अवतार-कथा की भी मीमांसा कर ली जाय।"

किसी दरबारी को विरोध करने का साहस नहीं हुआ। लोचनसिंह कोई नवीन उत्तेजना-पूर्ण बात कहने को ही था कि राजा ने जनार्दन से प्रश्न किया—"इस अवतार को हुए कितने दिन हो गए?"

"सुनता हूँ अन्नदाता कि वह लड़की अब १६-१७ वर्ष की है।" जनार्दन ने राजा को प्रसन्न करने के लिये उत्तर दिया—"पालर में तो उसके दर्शनों के लिये दूर-दूर से लोग आते हैं।"

राजा ने कहा—"कल देखूँगा।" जनार्दन जी कड़ा करके बोला—"परंतु, महाराज।" "हर बात में परंतु।" राजा ने टोककर कहा—"क्या परंतु?"

"पालर बड़नगरवालों के राज्य में है।" जनार्दन ने उत्तर दिया—"विना पूर्व-सूचना के पराए राज्य में जाने का न-मालूम क्या अर्थ-अनर्थ लगाया जाय। सब तरफ़ गोलमाल छाया हुआ है। दिल्ली में तो गड़बड़ ही मची हुई है।"

राजा ने बात काटकर कहा—"तुम दलीपनगर को गड़बड़ में डाल दो। देखो शर्मा, एक बात है, हम पालर में डाका डालने तो जा नहीं रहे हैं, जो पहले से बड़नगरवालों का सूचना दें। वे हमारे भाई-बंध हैं। कोई भय की बात नहीं है। तैयारी कर दो।"

आग़ा हैदर को भी राजा की हाँ में हाँ मिलानी पड़ी—"कोई डर नहीं शर्माजी, किसी साँड़नी-सवार के जरिए सूचना भिजवा दी जाय। बड़नगर यहाँ से बहुत दूर भी नहीं है। यदि दूरी का मामला होता, तो और बात थी।"

---

(२)

दूसरे दिन राजा ने पालर की विशाल झील में, जो आजकल गढ़-मऊ की झील के नाम से विख्यात है, ख़ूब स्नान किया। बीमारी बढ़ी या नहीं, यह तो उस समय किसी ने नहीं जाना, परंतु राजा के दिमाग़ को कुछ ठंडक ज़रूर मिली, और वह उस दिन उतने उतावले नहीं दिखाई पड़े। अवतार की बात वह भूल गए, और किसी ने उन्हें उस समय स्मरण भी नहीं दिलाया।

स्नान करने के बाद कुंजरसिंह को उक्त अवतार के दर्शन की लालसा हुई।

१६-१७ वर्ष पहले नरपतिसिंह दाँगी के घर लड़की उत्पन्न हुई थी। जब वह गर्भ में थी, उसकी मा विचित्र स्वप्न देखा करती थी। लड़की के उत्पन्न होने पर पिता को ऐसा जान पड़ा, मानो प्रकाश-पुंज ने घर में जन्म लिया हो। उसकी मा लड़की को जन्म देने के कुछ मास उपरांत मर गई।

नरपति दुर्गा का भक्त था, और जागते हुए भी स्वप्न-से देखा करता था। गाँववाले उसे श्रद्धा और भय की दृष्टि से देखते थे।

वह कन्या रूप-राशि थी। उस पर देवत्व के आरोप होने में विलंब न हुआ। अविश्वास करने के लिये कोई स्थान न था। बालिका, दाँगी की लड़की, में इतना रूप, इतना सौंदर्य कभी न देखा गया था। गाँव के मंदिर में दुर्गा की जो मूर्ति थी, शिल्प की कल्पना ने उसे वह रूप-रेखा नहीं दे पाई थी, जो इस बालिका में सहज ही भासित होती थी। ज्यों-ज्यों उसने वय प्राप्त किया, त्यों-त्यों अंग सुडौल होते गए, सौंदर्य की विभूति बढ़ती, निखरती गई, और गाँववाले नरपतिसिंह की उस कन्या को किसी निर्भ्रांत सिद्धांत की तरह स्वीकार करते गए। कभी विश्वास से फल हुआ, और कभी नहीं भी। पहले बालिका की पूजार्चा बहुधा नरपतिसिंह के ही घर

पर होती रही, पीछे बालिका द्वारा मंदिर में स्थापित मूर्ति की पूजा कराई जाने लगी। जैसे आरंभ में लोग नव-निर्मित मंदिर में बहुधा पूजन के लिये जाया करते हैं, और कुछ समय बाद अपने घर में ही बैठे-बैठे मंदिर स्थापित मूर्ति की वंदना करने लगते हैं, उसी तरह नरपतिसिंह की कन्या के प्रति, कई वर्ष गुज़र जाने पर भी, अविश्वास या अश्रद्धा तो किसी ने भी प्रकट नहीं की, परंतु पूजा का रूप पलट गया। अटक-भीर पड़ने पर कभी-कभी कोई-कोई प्रत्यक्ष पूजा भी कर लेता था। परंतु देवी के नाम पर शुरू-शुरू में जो बड़े-बड़े मेले लगे थे, उनमें क्षीणता आ गई। लोगों के आश्चर्य में ओज न रहा। उस कन्या को देवी का अवतार मानते हुए न केवल गाँव के लोग ठठ-के-ठठ जमा होकर उसके घर पर या मंदिर में जाते थे, बल्कि बाहर के, दूर-दूर के, लोग भी अब मानता मान-मानकर आते थे।

कुंजरसिंह के मन में देवी के दर्शन की इच्छा तो हुई, परंतु लज्जा-शील होने के कारण अकेले जाने की हिम्मत नहीं पड़ी। कोई शायद पूछ बैठे—"क्यों आए? देवी अवश्य है, परंतु युवती भी है।" संयोग से लोचनसिंह मिल गया। साथ के लिये सुपात्र-कुपात्र की अपेक्षा न करके लोचनसिंह से कहा—"दाऊजू, देवी-दर्शन के लिये चलते हो?" उसने उत्तर दिया—"किन बातों में पड़े हो राजा? दाँगी की लड़की दुर्गा नहीं होती। देहात के भूतों ने प्रपंच बना रक्खा होगा।

कुंजरसिंह की इच्छा ने ज़रा हठ का रूप धारण किया। बोला—"अवतार के लिये कोई विशेष जाति नियुक्त नहीं है। देख न लो?"

लोचनसिंह ने विरोध नहीं किया। आगे-आगे लोचनसिंह और पीछे-पीछे कुंजरसिंह नरपतिसिंह के मकान का पता लगाकर चले। वह घर पर मिल गया।

लोचनसिंह ने विना किसी भूमिका के प्रस्ताव किया—"तुम्हारी लड़की देवी है ? दर्शन करेंगे ।"

नरपति की बड़ी-बड़ी लाल आँखों में आश्चर्य छिटक गया। बोला—"कहाँ के हो ?"

"दलीपनगर के राजकुमार।" उत्तर देते हुए लोचनसिंह ने कुंजर की ओर इशारा किया।

"इस तरह दर्शन करने के लिये तो यहाँ देवता भी नहीं आते।" संदेह के स्वर में नरपति ने कहा।

"तब किस तरह देख पाएँगे ?"

"मंदिर में जाओ।"

कुंजरसिंह की हिम्मत टूट गई। लौट पड़ने की इच्छा हुई, परंतु पैर वहीं अड़-से गए। धीरे से लोचनसिंह से कहा—"तो चलो दाऊजू।" और नरपति के खुले हुए घर की ओर मुँह फेर लिया। पौर के धुँधले प्रकाश में उसे एक मुख दिखलाई पड़ा, जैसे अँधेरी रात में बिजली चमक गई हो। आँखों में चकाचौंध-सी लग गई।

लोचनसिंह ने कुंजर के प्रस्ताव को एक कंधा ज़रा-सा हिलाकर, अस्वीकृत कर दिया। नरपति से बोला—"मंदिर में पाषाण-मूर्ति के दर्शन होंगे। हम लोग यहाँ तुम्हारी लड़की को, जो देवी का अवतार कही जाती है, देखने आए हैं।"

प्रस्ताव की इस स्पष्ट भाषा के कारण कुंजरसिंह को पसीना-सा आ गया।

नरपतिसिंह ने ज़रा सोचकर कहा—"हमारी बेटी देवी है, इसमें ज़रा भी संदेह जो करता है, उसका सर्वनाश तीन दिन के भीतर ही हो जाता है। तुम लोगों को यदि दर्शन करना हो, तो मंदिर में चलो। यहाँ दर्शन न होंगे। कोई मेला या तमाशा नहीं है। नारियल, मिठाई, पुष्प, गंध इत्यादि लेकर चलो, मैं वहाँ लिवाकर आता हूँ।"

नरपति की आँखों में विश्वास के बल को और हवा में लंबे-लंबे केशों की एक लट को उड़ते हुए देखकर लोचनसिंह की अदम्यता नहीं डिगी।

पूछा—"इत्यादि और क्या ?"

दृढ़ता-पूर्ण उत्तर मिला—"सोना-चाँदी और क्या ?"

लोचनसिंह के उत्तर देने के पूर्व ही कुंजरसिंह ने नम्रता के साथ कहा—'बहुत अच्छा।"

नरपति तुरंत घर के भीतर अदृश्य हो गया, और किवाड़ बंद कर लिए।

लोचनसिंह ने कुंजर से कहा—"मन तो ऐसा होता है कि तलवार के एक झटके से लंबे केशवाले इस सिर को धूल चटा दूँ, परंतु हाथ कुंठित है।"

"चुप-चुप।" कुंजर आदेश के उच्चारण में बोला—"बाज़ार से सामग्री मँगवा लो।"

लोचन बाज़ार की ओर, जिसमें केवल दो दूकानें थीं, चला गया, और कुंजर नरपति के चबूतरे के एक कोने को झाड़कर छिपने की-सी चेष्टा करता हुआ वहीं बैठ गया।

इतने ही में दो आदमी वहाँ और आए। वेष-भूषा से मुसलमान सैनिक जान पड़ते थे। उनमें से एक ने कुंजर से पूछा—"क्यों जी, नरपति दाँगी का यही मकान है ?"

"हाँ, क्या ?"

"देवी के दर्शनों को आए हैं। कहाँ है ?"

कुंजर को यह अच्छा न मालूम हुआ।

बोला—"होगा कहीं, क्या मालूम।" तीव्र उत्तर न दे सकने के कारण उसे अपने ऊपर ग्लानि हुई। वह कहने और कुछ करने के लिये आतुर हुआ।

वे दोनो उसी चबूतरे पर बैठ गए। कुछ क्षण उपरांत लोचनसिंह एक पोटली में पूजन की सामग्री बाँधे हुए आ गया। कहने लगा—"बनिया हमको धोका देना चाहता था। दो धौल दिए, तब अभागे ने ठीक भाव पर सामग्री दी।"

लोचन ने उन दो नवागंतुकों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

घर की कुंडी खटखटाकर पुकारा—"पूजा की सामग्री ले आए हैं। लिवाकर आ जाओ।"

भीतर से कर्कश स्वर में उत्तर मिला—"मंदिर चलो।"

लोचनसिंह कुंजर को लेकर मंदिर की ओर चला, जिसकी उड़ती हुई पताका नरपति के मकान से ही दिखलाई पड़ रही थी।

लोचन और कुंजर के मंदिर पहुँचने के आधी ही घड़ी पीछे नरपति अपनी लड़की को लेकर आ गया। वे दोनो मुसलमान सैनिक भी पीछे-पीछे आकर मंदिर के बाहर बैठ गए। कुंजरसिंह ने देखा। मन खीज गया। परंतु नरपति के ऊपर उन दोनो सैनिकों की उपस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

कुंजरसिंह ने रूप, लावण्य और पवित्रता के उस अवतार को देखा। एक बार देखकर फिर आँख नहीं उठाई गई। दुर्गा की पाषाण-मूर्ति की ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगा।

"पूजा करो।" नरपति ने आदेश किया।

"किसकी पूजा करूँ?" कुंजर ने सोचा, और एक बार रूप-राशि की ओर देखकर फिर पाषाण-मूर्ति पर अपनी दृष्टि लगा दी।

लोचनसिंह ने विना किसी संकोच के लड़की को ऊपर से नीचे तक ध्यान से देखा। उसने आँखें नीची कर लीं। लोचनसिंह बोला—"किसकी पूजा पहले होगी?"

नरपति ने मूर्ति की ओर संकेत किया।

कुंजर ने भक्ति के साथ मूर्ति का पूजन किया। सोचा—"अब सदेह, सजीव देवी की पूजा होगी।"

"इनका क्या नाम है?" लोचन ने पूछा।

"दुर्गा, दुर्गा का अवतार।" उत्तर मिला।

कुंजर प्रश्न और उत्तर से सिकुड़-सा गया, परंतु नाम जानने की उठी हुई उत्सुकता ठंडी नहीं पड़ी। लड़की के मुख पर इस बेधड़क प्रश्न से हलकी लालिमा दौड़ आई। लोचन ने फिर शिष्टता के साथ पूछा—"यह नाम नहीं, यह तो गुण है। घर में इस बेटी को क्या कहते हो?"

"कुमुद—पर तुम्हें इससे क्या? पूजा हो गई। अब चढ़ावा चढ़ाकर यहाँ से जाओ। दूसरों को आने दो।" नरपति ने कहा। लोचन के दाँत-से-दाँत सट गए, परंतु बोला कुछ नहीं।

कुंजर ने अपने गले से सोने की माला और उँगली से हीरे की अँगूठी उतारकर मूर्ति के चरणों में चढ़ा दी। नरपति ने प्रसन्न होकर माला हाथ में ले ली, और अँगूठी लड़की को पहना दी, जिसका नाम उसके मुँह से 'कुमुद' निकल पड़ा था। कुमुद ने पहले हाथ थोड़ा पीछे हटाया, परंतु पिता की व्यग्रता ने उसकी उँगली को अँगूठी में पिरो दिया। नरपति ने कुंजर से पूछा—"आप कौन हैं?"

कुंजर के मुँह से नम्रता-पूर्वक निकला—"राजकुमार।"

लोचन ने गर्व के साथ कहा—"यह हैं दलीपनगर के महाराजाधिराज के कुमार राजा कुंजरसिंह।"

कुमुद ने धीरे से गर्दन उठाकर कुंजरसिंह की ओर पैनी निगाह से देखा। लालिमा मुख पर नहीं दौड़ी, और न आँखें नीची पड़ीं। फिर सरल, स्थिर दृष्टि से मंदिर के एक कोने की ओर देखने लगी।

नरपतिसिंह ने कुमुद से कहा—"देवी, पूजक को प्रसाद दो।"

कुमुद मिठाई के दोने से एक लड्डू उठाकर कुंजर को देने लगी। नरपति ने रोककर कहा—"यह नहीं," और गेंदे का एक फूल भस्म के दो-चार कणों से लपेटकर कुमुद के हाथ में दिया, और कहा—"यह दो। राजकुमार के लिये यह प्रसाद उपयुक्त है।"

कुमुद ने अँगूठीवाले हाथ में गेंदे का फूल लिया। हाथ, सोने, हीरे और गेंदे के फूल के रंगों में आधे क्षण के लिये स्पर्द्धा-सी हो उठी। श्रद्धा-पूर्वक कुंजर ने वह फूल अपनी अंजलि में ले लिया, और कुमुद की बड़ी-बड़ी, सरल, सुंदर आँखों में अपने संकोच-चंचल नेत्र मिलाकर पुष्प को पगड़ी में सयत्न खोंस लिया। फिर कुमुद से आँख मिलाने का साहस नहीं हुआ।

परंतु कुमुद की आँखों में संकोच या लज्जा का लक्षण नहीं था।

---

(३)

लोचनसिंह और कुंजरसिंह मंदिर से बाहर निकल आए। कुमुद भीतर ही बैठी रही। नरपति दरवाज़े के पास खड़ा होकर मुसलमान सैनिकों से बोला—"पूजा करना हो, तो कर लो, नहीं तो हम घर जाते हैं। ज़्यादा देर नहीं बैठेंगे।"

"जाइए।" उनमें से एक बोला—"हम लोगों ने तो यहीं से दीदार कर लिया।"

"तब क्यों बैठे हो?" कुंजर ने स्पष्ट स्वर में पूछा।

उसने लापरवाही के साथ उत्तर दिया—"चले जायँगे, बैठे हैं; किसी का कुछ लिए तो हैं नहीं।"

कुंजर की भृकुटि टेढ़ी हो गई। "जाओ, अभी जाओ।" आपे से बाहर होकर बोला—"यह देवी का मंदिर है, दिल्लगी की जगह नहीं।"

नरपति ने ढले हुए कंठ से कहा—"झगड़ा मत करिए, पूजन के लिये आए होंगे।"

"पूजन के लिये नहीं आए हैं," दूसरे सिपाही ने कहा—"मन बहलाने आए हैं। अपना काम देखो, हम भी चले जायँगे। कड़े होने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि हमारी ज़बान और तेग़ दोनो ही कड़े हैं।"

लोचनसिंह दाँत पीसकर बोला—"उस ज़बान और तेग़ दोनो के टुकड़े कर डालने की ताक़त हमारे हाथ में है। सीधे-साधे चले जाओ, वरना कौए यहाँ से हड्डियाँ उठाकर ले जायँगे।"

दोनो सिपाहियों ने अपनी-अपनी तलवारें खींच लीं। लोचनसिंह की उनसे पहले ही निकल चुकी थी।

नरपति मंदिर की ओर मुँह करके, चिल्लाकर बोला—"माई, माई, निवारण करो।"

कुमुद दरवाज़े के पास आ गई। कुंजर से बोली—"राजकुमार, इस पवित्र स्थान पर रक्त-पात न हो।"

इन शब्दों में जो प्रबलता थी, जो आदेश था, उसने कुंजर को कर्तव्यारूढ़ कर दिया। तुरंत दोनो ओर की खिंची तलवारों के बीच पहुँचकर बोला—"यहाँ पर नहीं, किसी उपयुक्त स्थान पर।"

"हम सैयद की फ़ौज के आदमी हैं।" एक बोला—"कोई स्थान और कोई भी समय हमारे लिये उपयुक्त है।"

लोचनसिंह अप्रतिहत भाव से बोला—"सैयद का बड़ा डर दिखलाया। न-मालूम कितने सैयदों को तो हम कच्चा ही गटक गए हैं।"

"और हमने न-मालूम तुम-सरीखे कितने लुक्कों को तो चुटकी से ही मसल दिया है।" उनमें से एक ने चिनौती देते हुए कहा।

लोचनसिंह उन दोनो पर लपका। कुंजर अपने प्राणों की ज़रा भी परवा न करके बीच में धँस गया।

लोचन वार को रोककर खिसियाए हुए स्वर में बोला—"कुँवर-

कुँवर, बचो। लोचनसिंह की जलती हुई आग शत्रु-मित्र के अंतर को नहीं पहचानती।"

कुमुद दो क़दम आगे बढ़कर, एक हाथ आकाश की ओर ज़रा-सा उठाकर बोली—"मत लड़ो, अपने-अपने घर जाओ। पुण्य-पर्व है, जो लड़ेगा, दुःख पावेगा।"

दोनो मुसलमान सैनिकों ने अपनी तलवारें नीची कर लीं। कुंजर ने लोचनसिंह का हाथ पकड़ लिया। वे दोनो सिपाही एकटक कुमुद की ओर देखने लगे, अतृप्त, अचल नेत्रों से; मानो अनंत काल तक देखते रहेंगे।

कुमुद ने कुंजर से कहा—"राजकुमार, इनको यहाँ से ले जाइए।" फिर मुसलमान सैनिकों से बोली—"आप लोग यहाँ से जायँ।"

इतने में शोर-ग़ुल सुनकर गाँव के कुछ आदमी आ गए।

मंदिर पर मुसलमानों की उपस्थिति देखकर उन लोगों ने सैनिकों पर झगड़े का संदेह ही नहीं, चुपचाप विश्वास भी कर लिया। कई कंठों से एकाएक निकला—"कौन हो? क्या करते हो? मंदिर की बेइज़्ज़ती करने आए हो?"

भीड़ में से एक ने ख़ूब चिल्लाकर कहा—"इस आदमी ने हमारे नारियल ज़बरदस्ती छीन लिए हैं, और हमें मारा है।" और भीड़ इकट्ठी हुई।

कुमुद भीड़ की ओर मुड़कर चिल्लाई, जैसे कोयल ने ज़ोर की कूक दी हो—"जाओ अपने-अपने घर, व्यर्थ झगड़ा मत करो।"

"जाओ कंबख़्तो यहाँ से।" दोनो मुसलमान सिपाहियों ने भी कहा। कुंजरसिंह ने हाथ के इशारे से भीड़ हटाने का प्रयत्न किया।

परंतु आगेवाले पीछे को न मुड़ पाए थे कि पीछे से और भीड़ आ गई। उसमें दलीपनगर के राजा के कुछ सैनिक भी थे। वास्तविक स्थिति को बिना ठीक-ठीक समझे ही पीछेवाले चिल्लाए—

"मारो, मारो।" लोचनसिंह को तलवार निकाले और कुंजरसिंह को बीच में देखकर पीछे आए हुए सिपाहियों ने भी तलवारें निकाल लीं। इतने में लुटा हुआ दूकानदार फिर चिल्लाकर बोला—"लूट लिया भाइयो, मुझे तो लूट लिया। मेरे नारियल चुरा लिए।" लोचनसिंह ने उस ओर देखा, परंतु आरोपी को पहचान न पाया।

शब्द बढ़ता गया। कुमुद का बारीक स्वर उस भीड़ के हुल्लड़ को न चीर पाया, प्रत्युत पीछेवालों को पूरा विश्वास हो गया कि न केवल लोचनसिंह उनका सरदार, बल्कि उनका राजकुमार और धर्म भी उन दो मुसलमान सैनिकों के कारण संकट में पड़ गए हैं। कुछ ही क्षण में मुसलमान सैनिक भीड़ से घिर गए।

उनमें से एक ने चिल्लाकर कहा 'अरे बेवक़ूफ़ो, हमको यहाँ से निकल जाने दो, नहीं तो तलवार से हम अपना रास्ता साफ़ करते हैं।"

इस समय दो-तीन मुसलमान सिपाही और उस स्थान पर आ गए।

"क्या है? क्या है?" उन्होंने आवेश के साथ पूछा।

पहले आए हुए मुसलमान सैनिकों में से एक ने कहा—"कुछ नहीं, यों ही हुल्लड़ है। ख़ून-ख़राबी मत करना।"

उन दो-तीन नवागंतुक मुसलमान सिपाहियों के आने पर गाँव-वाले ज़रा पीछे हटे, और पीछेवाले दलीपनगर के सैनिक नंगी तलवारें लिए आगे आ गए। तुरंत "मारो-मारो" की पुकारें मच गईं, और खिंची हुई तलवारों ने अपना काम शुरू कर दिया।

लोचनसिंह ने पीछे आए हुए मुसलमान सिपाहियों में से एक को समाप्त कर दिया। पूर्वागंतुकों ने भी वार आरंभ कर दिए। भीड़ के कई आदमी कतर डाले, और घायल कर दिए। कुंजरसिंह तलवार निकालकर कुमुद के पास जा खड़ा हुआ। वह कुंजर को वहीं छोड़कर अपने पिता के साथ धीरे-धीरे घर चली गई।

दलीपनगर के और सैनिक आ गए। घमासान हो उठा। थोड़े-से मुसलमान सैनिक दृढ़ता के साथ लड़ते-लड़ते पीछे हटने लगे। थोड़ी दूर से लड़ते-लड़ते मुसलमान सैनिक एक ओर भाग गए। उनका बहुत दूर तक पीछा नहीं किया गया।

मुसलमान सैनिक की लाश वहीं पड़ी रही, और इधर के जो आदमी मारे और घायल किए गए थे, उन्हें वहीं छोड़कर भीड़ तितर-बितर हो गई। मंदिर में केवल देवी की मूर्ति थी। कुंजरसिंह को वह थोड़ी ही देर पहले का शब्दमय स्थान सुनसान मालूम होने लगा। वहाँ केवल किसी आलोक की कोई छाया-मात्र दिखाई पड़ती थी, किसी मधुर स्वर की गूँज-भर।

मृतों और घायलों का उचित प्रबंध करके जो कुछ हुआ था, उस पर पछतावा करता हुआ कुंजरसिंह अपने डेरे की ओर लोचन को लेकर चला गया।

---

(४)

सध्या होने के पहले गाँव में ख़बर फैल गई कि ४-५ कोस पर मुसलमानों की एक बड़ी सेना ठहरी हुई है, और वह शीघ्र ही आक्रमण करेगी, गाँव में आग लगावेगी, और देवी के अवतार का ज़बरदस्ती अपहरण करेगी।

इस प्रकार की मार-काट उन दिनों प्रायः हो जाया करती थी। इसलिये आश्चर्य तो किसी को नहीं हुआ, परंतु भय सभी को। दलीपनगर के राजा के साथ भी बहुत-से सैनिक थे, इसलिये गाँव-वालों को अपनी रक्षा का बहुत भरोसा था। जो लोग हाथ-पाँव चलाने लायक़ थे, वे हाथियारबंद होकर इधर-उधर टुकड़ियों में जमा हो गए। परंतु गाँव में जन-संख्या अधिक न थी, इसलिये दलीपनगर की सेना की तैयारी की प्रतीक्षा चिंता के साथ करने लगे।

राजा ने अभी तक कोई मंतव्य प्रकट नहीं किया था। समाचार उन्हें मिल गया था।

राजा का रामदयाल-नामक एक विश्वस्त निजी नौकर था। उसके साथ थोड़ी देर बातचीत होने के बाद राजा ने पूछा—"तूने उस लड़की को देखा है?"

"हाँ महाराज।"

"बहुत ख़ूबसूरत है?"

"ऐसा रूप कभी देखा-सुना नहीं गया।"

"कुछ कर सकता है?"

"कोई कठिन बात नहीं।"

"राजमहल की दासियों में डाल ले।"

"जब आज्ञा होगी, तभी।"

"आज रात को।"

"बहुत अच्छा, परंतु—"

"परंतु क्या बे?"

राजा की चढ़ी हुई आँखों से नौकर घबराया नहीं।

बोला—"महाराज, कहीं से मुसलमानों की फ़ौज आई है।"

"मार डाल सबों को, परंतु उस लड़की को लिवा ला।" राजा ने कहा। रामदयाल अनसुनी-सी करके बोला—"महाराज, लोचनसिंह दाऊजू ने उस फ़ौज के एक जवान को मार डाला है, और कई एक को घायल कर दिया है। उन लोगों ने भी गाँव के कई आदमी मार डाले हैं, और अपने भी कुछ सिपाहियों को घायल कर गए हैं।"

राजा ने उपेक्षा के साथ कहा—"इस लंबी दास्तान को शीघ्र समाप्त कर दे। बोल, उसको किस समय लिवा लाएगा?"

उत्तर न देते हुए रामदयाल बोला—"मुसलमानी सेना पास ही,

दो-तीन कोस के फ़ासले पर, ठहरी हुई है। तुरही-पर-तुरही बज रही है। गाँव पर हल्ला बोला जानेवाला है।"

"यह तुरही हमारी फ़ौज की थी। तू झूठ बोलता है।"

"रात को वे लोग गाँव में आग लगा देंगे, और उस लड़की को उठा ले जायँगे।"

राजा रामदयाल के इस अंतिम कथन को सुनकर उठ बैठे। आँखें नाचने-सी लगीं। कहा—"लोचनसिंह को इसी समय बुला ला।"

कुछ क्षण पश्चात् लोचनसिंह आ गया। जुहार करके बैठा ही था कि राजा ने तमककर पूछा—"तुमने आज एक आदमी मार डाला है?"

उसने शांति-पूर्वक जवाब दिया—"हाँ महाराज, एक ही मार पाया, बाक़ी भाग गए। बनिए को भी नहीं मार पाया, वह मुझे चोर बताता था।"

"यह कहाँ की सेना है?"

"कहीं की हो महाराज। मुझे तो उनमें से कुछ को मारना था, सो एक को देवी की भेंट कर दिया।"

"देवी! देवी! तुम लोगों ने एक छोकरी को मुफ़्त देवी बना रक्खा है। मैं देखूँगा, कैसी देवी है।"

"महाराज देखें, या न देखें, परंतु उसकी महिमा देवी से कम नहीं। उसके लिये आज रात को फिर तलवार चलाऊँगा।"

"कैसे? क्यों?"

"महाराज, ऐसे कि मुसलमान लोग उसको आज लेकर भाग जानेवाले हैं। लोचनसिंह उन्हें ऐसा करने से रोकेगा। बस।"

"उसे हमारे डेरे पर भिजवा दो लोचनसिंह, हम उसकी रक्षा करेंगे।"

लोचनसिंह ने उपेक्षा के साथ कहा—"राजमहल की रक्षा का

भार दूसरों के सुपुर्द कर दिया गया है। कुँवर और हम उस देवी की रक्षा करेंगे।"

राजा क्रोध से थर्रा गए। बोले—"रामदयाल, जनार्दन शर्मा को लिवा ला।"

रामदयाल के जाने पर लोचनसिंह ने कहा—"महाराज, एक बिनती है। भर्राए हुए गले से राजा ने पूछा—"क्या?"

"बिनती करने-भर का बस मेरा है", लोचनसिंह ने उत्तर दिया—"फिर मर्जी महाराज की। वह लड़की अवश्य देवी या किसी का अवतार है। उसका बाप वज्र लोभी और प्रचंड मूर्ख है; परंतु बालिका शुद्ध, सरल और भोली-भाली है। हकीमजी से महाराज पूछ लें कि अब महाराज को ऐसी बातों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। महाराज के रोग को देखकर ही कभी-कभी मुझे डर लग जाता है।"

राजा विष का-सा घूँट पीकर चुप रहे। इतने में जनार्दन शर्मा आ गया। राजा ने ज़रा नरम स्वर में कहा—"शर्माजी, मेरी दो आज्ञाएँ हैं।"

"महाराज!" जनार्दन ने कहा।

"एक तो यह कि जो मुसलमान सेना यहाँ आई है, उसे किसी प्रकार यहाँ से हटा दो।"

"महाराज!" जनार्दन बोला, और दूसरी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा।

"दूसरी यह की लोचनसिंह को इसी समय मरवाकर झील में फिकवा दो।" राजा ने क्षोभातुर कंठ से कहा।

जनार्दन दोनो आज्ञाओं पर सन्नाटे में आकर, एक बार लोचनसिंह और दूसरी बार राजा का मुँह निहारकर माथा खुजलाने लगा।

लोचनसिंह ने अपनी तलवार राजा के हाथ में देते हुए कहा—

"मुझे मारने की यहाँ किसी की सामर्थ्य नहीं। जब तक यह मेरी कमर में रहेगी, तब तक आपकी इस आज्ञा के पालन किए जाने में सहस्रों बाधाएँ खड़ी होंगी। आप ही इससे मेरी गर्दन उतार दीजिए।"

राजा तलवार को नीचे पटककर थके हुए स्वर में बोले—"तुम बहुत बातूनी हो गए हो लोचन।"

"जैसा था, वैसा ही हूँ, और वैसा ही रहूँगा भी। मरवा डालिए महाराज, परंतु अपने शरीर को अब और मत बिगाड़िए।" लोचन-सिंह ने हाथ बाँधकर कहा।

राजा बोले—"उठा लो तलवार लोचनसिंह, तुमको मारकर हाथ गंदा नहीं करूँगा।"

तलवार कमर में बाँधकर लोचनसिंह ने पूछा—"महाराज ने मुझे किसलिये बुलाया था?"

"जाओ, जाओ।" राजा ने फिर गरम होकर कहा—"तुम्हारी हमको ज़रूरत नहीं है।"

"है महाराज।" लोचनसिंह ने सोचते-सोचते कहा—"उस देवी के घर का पहरा न लगाकर मैं आज रात राजमहल का ही पहरा दूँगा।"

राजा ने जनार्दन से पूछा—"यह सेना कहाँ की है?"

"कालपी की अन्नदाता।" जनार्दन ने उत्तर दिया।

"भगा दो, मार दो, आग लगा दो, कोई हो, कहीं की हो।" राजा ने हाथ-पैर फेंककर आज्ञा दी।

"अन्नदाता—"

"बको मत जनार्दन, कालपी पर अब हमारा फिर राज्य होगा।"

"होगा अन्नदाता, परंतु अभी कुछ विलंब है। दिल्ली गड़बड़ के तूफ़ान में पड़ी हुई है, किंतु तूफ़ान अभी काफ़ी ज़ोर पर नहीं है। कालपी के फ़ौजदार अलीमर्दान की सेना मालवे में मराठों से हारकर

लौटी है, परंतु अब भी इतनी अधिक है कि मुठभेड़ करना ठीक न होगा। दूसरे राज्यों का रुख हमसे कटा हुआ-सा है।"

"वही सब षड्यंत्र, वही सब पुराना प्रपंच।" राजा ने तकिए के सहारे लेटकर धीरे-धीरे कहा—"तुम्हारे छली-कपटी स्वभाव से तो हमारे लोचनसिंह की बेलाग बात अच्छी।"

लोचनसिंह तुरंत बोला—"नहीं महाराज, शर्माजी बुद्धिमान् आदमी हैं, मैं तो कोरा सैनिक हूँ।"

राजा फिर बैठ गए। बोले—"अच्छा, तुम सब जाओ। जिसको जो देख पड़े, सो करे। मैं सबेरे कालपी की इस सेना को अकेले मार भगाऊँगा। मैं निज़ाम-इज़ाम को कुछ नहीं समझता। कालपी बुंदेलों की है।"

जनार्दन और लोचनसिंह चले गए। परंतु उन लोगों ने सिवा रक्षात्मक यत्नों के किसी आक्रमण-मूलक उपाय का प्रयोग नहीं किया। जनार्दन ने राजा के डेरे का अच्छा प्रबंध कर दिया। लोचनसिंह कई सरदारों के साथ पहरे पर स्वयं डट गया।

राजा ने रामदयाल को पास बुलाकर धीरे से कहा—"आज ही, थोड़ी देर में, अभी।"

"जो आज्ञा।" कहकर रामदयाल चला गया।

---

(४)

रात हो गई। खूब अंधकार छा गया। जगह-जगह लोग आक्रमण रोकने की योजना में लग गए। गाँव में खूब हल्ला-गुल्ला होने लगा, मानो असंख्य सैनिक किसी स्थान पर आक्रमण कर रहे हों। कुंजरसिंह नरपति के मकान के बाहर वेश बदले, शस्त्र-सज्जित टहल रहा था। पहरेवालों की टोलियाँ

इधर उधर से आकर, शोर करती हुई, इस मकान के सामने कुछ क्षण के लिये खड़ी होकर "अंबा की जय, दुर्गा मैया की जय" कहती हुई गुज़र जाती थीं, परंतु कुंजर चुपचाप टहल रहा था। केवल कभी-कभी कहीं दूर की आहट लेने के लिये एक-आध बार ठिठक जाता था। नरपति के किवाड़ बंद थे; भीतर से सुगंधित द्रव्यों के होम की ख़ुशबू आ रही थी।

थोड़ी देर में एक मनुष्य ने आकर नरपतिसिंह के किवाड़ खटखटाए।

कुंजरसिंह ने कदाचित् उसे पहचान लिया। भाला साधा, और स्वर बदलकर पूछा—"कौन?"

"महाराज का आदमी रामदयाल।" उस व्यक्ति ने दंभ के साथ उत्तर दिया।

कुंजरसिंह ने कहा—"रामदयाल, इतनी रात तुम यहाँ कैसे?" बदले हुए स्वर के कारण रामदयाल ने न ताड़ पाया। समझा, दलीपनगर का कोई सैनिक है। बोला—"महाराज यहाँ की रक्षा के निमित्त बड़े चिंतित हो रहे हैं। सारी मुसलमानी सेना छिपे-छिपे यहीं आ रही है। अबेर-सबेर आक्रमण होगा, इसलिये मैं देवी को राजमहल में सुरक्षित रखने के लिये लिवाने आया हूँ।" रामदयाल ने फिर कुंडी खटखटाई। कुंजर भाला टेककर खड़ा हो गया, और आकाश की ओर देखने लगा।

जब कई बार कुंडी खटखटाने पर भी भीतर से कोई उत्तर न मिला, तब रामदयाल ने कुंजर से पूछा—"आप कौन हैं? बतला सकते हैं, नरपतिसिंह कहाँ हैं, और देवीजी कहाँ हैं?"

"मैं हूँ कुंजरसिंह। नरपतिसिंह भीतर हैं।"

रामदयाल सकपका गया, परंतु शीघ्र सँभलकर बोला—"राजा, यहाँ कैसे?"

"देवी की रक्षा के लिये।"

"लो, यह बहुत अच्छा हुआ, परंतु क्या राजा अकेले ही रक्षा करने के लिये डटे रहेंगे?"

"हाँ, उसके लिये मुझे तुम्हारी ज़रूरत नहीं पड़ेगी।"

इतने समय में रामदयाल ने अपनी स्वभाव-सिद्ध स्थिरता पुनः प्राप्त कर ली। बोला—"महाराज की आज्ञा है कि देवी राजमहल में आज की रात सुरक्षित रहें।"

वैसे ही भाले के बल अपने शरीर को थामे हुए कुंजर ने कहा—"रामदयाल, देवी की रक्षा उसके मंदिर में ही सबसे अच्छी होती है। तुम जाओ। मेरे साथ तर्क मत करो।"

दासी-पुत्र होने पर भी कुंजर राजकुमार था, और रामदयाल चाकर होने पर भी दलीपनगर के राजा का विश्वासपात्र। इसलिये कोई एक दूसरे से विचलित न हुआ।

रामदयाल बोला—"मैंने देवी की रक्षा का बीड़ा उठाया है।"

"मैंने तुमसे पहले...।"

"उन्हें राजमहल में जाना होगा। महाराज की आज्ञा है। ऐसे रक्षा न हो सकेगी राजा।"

"कभी नहीं।"

"तो महाराज से जाकर यही कह दूँ राजा?"

"कह दो।"

"मेरे प्राण बड़े संकट में हैं। उधर आज्ञा का पालन नहीं होता, तो सिर से हाथ धोने पड़ेंगे, इधर आपको अप्रसन्न करता हूँ, तो प्राणों पर आ बनेगी।"

कुंजरसिंह भभक उठा। बोला—"जा यहाँ से नीच। मैं तेरी प्रकृति से ख़ूब परिचित हूँ। यदि यहाँ कोई और होता, तो शायद तेरी चल जाती।"

रामदयाल चला गया, और थोड़ा नमक-मिर्च लगाकर सारी बात राजा से कह सुनाई ।

---

(६)

गाँव में रात-भर हो-हल्ला होता रहा, परंतु किसी ने किसी पर आक्रमण नहीं किया ।

सबेरे नहा-धोकर राजा के सामने लोग इकट्ठे हुए ।

सैयद आग़ा हैदर राजा की हालत देखकर सहम गया । धीरे से जनार्दन के कान में कहा—"महाराज को यहाँ लाने में बड़ी भूल हुई ।"

"क्या करते ?" जनार्दन ने भी धीरे से कहा—"उनके हठ के सामने किसी की नहीं चलती । लोचनसिंह-सरीखे वीर को कल संध्या-समय क़त्ल करवाए डालते थे । उसने अपनी वीरता से अपने प्राण बचाए ।" इतने में कुंजरसिंह आया । रात-भर के जागरण के कारण आँखें फूली हुई थीं, और चेहरे पर थकावट छाई हुई थी । प्रणाम करके राजा के पास जाकर यथानियम बैठ गया । राजा की आँखें चढ़ गईं, परंतु कुछ कहा नहीं । देर तक किसी दरबारी की हिम्मत कोई बात कहने की नहीं पड़ी ।

लोचनसिंह बहुत समय तक कभी चुप नहीं रहा था । बोला—"किसी ने हल्ला-वल्ला नहीं किया । जानते थे कि अभी तो एक ही आदमी की लाश ढोनी पड़ी है, आगे न-मालूम कितनी लाशें ढोनी पड़ेंगी ।"

कुंजरसिंह ने पूछा—"लाश को वे लोग कब उठा ले गए थे ?"

"हम लोगों के वहाँ से चले आने के थोड़ी ही देर पीछे ।" लोचनसिंह ने उत्तर दिया ।

राजा ने रुखाई के साथ कहा—"हमको यह सब चबर-चबर पसंद नहीं है।"

फिर सन्नाटा छा गया, इतना कि दूर से आनेवाली रमतूलों और ढोल-ताशों की आवाज़ स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी।

जनार्दन ने धीरे से राजवैद्य से कहा—"हकीमजी, कालपी की फ़ौज छापा मारनेवाली है।"

यह मुसलमानों के लिये मूर्खता की बात होगी, यदि उन्होंने कुछ आदमियों के अपराध के लिये गाँव-भर को सताया, या अपने राज्य की सेना पर धावा किया। रमतूलों और ढोल-ताशों की जो आवाज़ आ रही है, वे किसी की बारात के बाजे हैं।"

जनार्दन ने धीरे से मंतव्य प्रकट किया—"न-मालूम किस बुरी शायत में यहाँ आए थे।"

"सारा क़ुसूर लोचनसिंह का है।"

आग़ा हैदर ने अपने आस-पास कनखियों से देखते हुए, सतर्कता के साथ कहा—"पंडितजी, यह ठाकुर एक दिन अपने राज्य को किसी गहरे खंदक में खपा देगा।"

जब इस तरह से किसी बड़ी जगह के सन्नाटे में दो आदमी कानाफूसी करते हैं, तब टोलियाँ-सी बनाकर अन्य उपस्थित लोग भी कानाफूसी करने लगते हैं।

स्थान-स्थान पर कानाफूसी होती देख राजा उस सन्नाटे को अधिक समय तक न सह सके। बोले—"लोचनसिंह !"

"महाराज !" उसने उत्तर दिया।

"तुम्हारे घराने में चामुंडराय की उपाधि चली आई है, जानते हो ?"

"हाँ, महाराज, सारा संसार जानता है कि सिर-पर-सिर कटाने के बाद यह उपाधि हम लोगों को मिली है।"

"वह तुमको प्यारी है ?"

"हाँ महाराज, प्राणों से भी अधिक, और कदाचित् इस संसार के संपूर्ण जीवों से अधिक।"

"यानी मुझसे भी बढ़कर, क्यों ठाकुर ?"

"हाँ महाराज।"

"निर्लज्ज, मूर्ख।"

"सो नहीं महाराज।" चामुंडराय की जो प्रतिष्ठा है, वह हृदय का ख़ून बहाकर प्राप्त की गई है। किसी भी लोभ के वश में वह दलित नहीं हो सकती। बस, यही तात्पर्य था, और कुछ नहीं।"

"लोचनसिंह, तुमने रात को कहाँ पहरा लगाया था ?"

"राजमहल पर।"

"झूठ बोलते हो। उस लड़की के यहाँ, जो देवी कहलाती है, रखवाली करने पर तुम भी तो थे ?"

"मैं न था, महाराज।"

"काकाजू, वहाँ पर मैं अकेला ही था।" बहुत विनीत, परंतु दृढ़ भाव के साथ कुंजरसिंह बोला।

"हाँ, तुम अब बहुत मनचले हो गए हो।" राजा ने उपस्थित लोगों की परवा न करते हुए कहा—"तुम्हारे ये सब लक्षण मुझे बहुत अखरने लगे हैं। तुम क्या यह समझते हो कि ऐसी बेहूदा हरकतों से मैं प्रसन्न बना रहूँगा ?"

कुंजरसिंह स्थिर दृष्टि से एक ओर देखता रहा, उत्तर में कुछ नहीं बोला।

राजा लोचनसिंह की ओर एकटक दृष्टि से देखने लगे। लोचन ने नेत्र नीचे नहीं किए।

"आज तुम्हारी चामुंडराई की परीक्षा है लोचनसिंह।" राजा ने कुछ क्षण पश्चात कहा।

"आज्ञा हो महाराज।" लोचनसिंह बोला।

"यह मुसलमानी फ़ौज हमको और हमारे धर्म को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिये आई है।" राजा ने कहा—"उन लोगों की आँख मंदिर की मूर्ति तोड़ने और मूर्ति की पुजारिन—उस दाँगी की लड़की—को उड़ा ले जाने पर है। मेरी आज्ञा है, उस सेना का मुक़ाबला करो, और लड़की को सुरक्षित दलीपनगर पहुँचा दो।"

कुंजरसिंह काँप उठा। जनार्दन को रोमांच हो आया, और लोचनसिंह की नाहीं पर सबकी आशा जा अटकी।

लोचनसिंह ने हाथ बाँधकर उत्तर दिया—"उस सेना का सामना करने के लिये मैं अभी तैयारी कराता हूँ, परंतु अपने पास इस युद्ध के लिये काफ़ी सैनिक नहीं हैं। दलीपनगर से और सेना बुलाने का प्रबंध कर दीजिए। दूसरी आज्ञा जो दाँगी की लड़की को दलीपनगर पहुँचाने से संबंध रखती है, उसका पालन उस लड़की की इच्छा पर निर्भर है। यदि वह दलीपनगर न जाना चाहेगी, तो मैं उसे पकड़कर न भेजूँगा।"

लोचनसिंह चला गया।

उसी समय ढोल-ताशों और रमतूलों का शब्द फिर सुनाई पड़ा।

आग़ा हैदर ने कहा—"सवारी दलीपनगर वापस चली जाय, तो बड़ा अच्छा। वहाँ शांति के साथ दवा-दारू होगी।"

"तुम सब गधे हो।" राजा ज़रा कष्ट के साथ बोले—"यह आवाज़ क्या है, इसका पता तुरंत लगाओ, नहीं तो मार खाओगे। याद रखना, मैं लड़ूँगा, किसी को नहीं छोड़ूँगा।"

(७)

राजा के जासूसों ने बाजों का पता दिया। मालूम हुआ, एक दरिद्र ठाकुर की बारात आ रही है, और दूरी पर. उसके पीछे-

पीछे, छिपी-छिपी, कालपी की सेना भी आक्रमण करने के लिये आ रही है।

हकीम ने मना किया, परंतु राजा ने एक न सुनी। घोड़े पर सवार होकर लड़ाई की तैयारी कर दी।

हकीम ने जनार्दन से कहा—"पंडितजी, इस राज्य की ख़ैर नहीं है। अब क्या होगा?"

जनार्दन ने माथा ठोककर उत्तर दिया—"बड़ी कठिनाइयों से राज्य को अब तक बचा पाया है। मंत्री केवल गुणा-भाग जानता है, नीति-वीति कुछ नहीं समझता। कुमार दासी-पुत्र है, अधिकांश सरदार उसे अंगीकार न करेंगे। रानियों में लड़ाई ठनी रहती है। लोचनसिंह एक महज़ झंझावात है। उत्तराधिकारी कोई नियुक्त नहीं है। महाराज का पागलपन और भी अधिक बढ़ गया है। राज्य की नैया डूबने से बचती नहीं दिखाई देती।"

"और, इधर कालपी के सैयद से यह वैर बिसाहना ग़ज़ब ही ढा देगा।" आग़ा हैदर ने कहा—"आज किसी तरह महाराज की जान बच जाय, तो बाद को सैयद को तो मैं मना लूँगा। जनार्दन, आपके पास रोग की दवा है, परंतु मौत की दवा किसके पास है? क्या ठीक है कि आज यह या हम में से कोई बचेंगे, या नहीं। इस अकारण युद्ध से रोका भी; न माने। दलीपनगर से और सेना बुलाने के लिये हरकारा तो भेज दिया है, कदाचित् ज़रूरत पड़े। बड़ी साँसत है! यदि लोचनसिंह बिगड़ जाते, तो राजा के सिर पर लड़ाई का भूत इतना ज़ोर न करता।"

यह कष्ट-कहानी शायद और लंबी होती, परंतु इसी समय राजा की सवारी आ पहुँची। पीछे-पीछे कुंजरसिंह का घोड़ा था। जहाँ जनार्दन और हकीम खड़े थे, राजा ने घोड़े की बाग थामकर कहा—"आप लोग लड़ नहीं सकते। पीछे रहें।" फिर मुड़कर

कुंजरसिंह से कहा—"तुम मेरे साथ मत रहो। लोचनसिंह इधर आवें।"

लोचनसिंह तुरंत घोड़ा कुदाकर आ गया।

"क्या आज्ञा है ?"

"कालपी की फ़ौज पर धावा बोल दो।"

"जो हुकुम।" लोचनसिंह ने उत्तर दिया। दलीपनगर की सेना जासूसों के बतलाए मार्ग पर चल पड़ी, और लोचनसिंह की स्वल्प सावधानता पवन पर।

कुंजरसिंह मन मसोसकर पीछे रह गया था। नरपति के दरवाज़े के सामने से निकला। उधर दृष्टि गई। कुमुद को देखा। सचमुच अवतार। कुंजर ने नमस्कार किया। कुमुद ज़रा-सी—बहुत ज़रा-सी—मुस्किराई; शायद उसे मालूम भी न हुआ होगा कि मुस्किरा रही हूँ।

कुंजरसिंह आगे बढ़ गया।

जिस घर बारात आ रही थी, उसके दरवाज़े पर तोरण-वंदनवार लगे हुए थे। वहीं होकर दलीपनगर की सेना निकली। राजा ने लोचनसिंह से पूछा—"क्या यहीं उस ठाकुर की बारात आ रही है ?"

"हाँ महाराज।" लोचनसिंह ने उत्तर दिया।

राजा ने कहा—"बहुत दरिद्र मालूम होता है। द्वार पर कोई ठाट-बाट नहीं।"

"होगा महाराज, किस-किसका दुख रोवें, यहाँ और सब कहीं ऐसे अनेक भरे पड़े हैं।"

"अजी नहीं," राजा ने चलते-चलते कहा—"सब शरारत है, बदमाशी है; घर में संपत्ति गाड़कर रखते हैं, ऊपर से ग़रीबी का दिखलावा करते हैं। इस लड़ाई से लौटकर साहूकारों से सारी क्षति की पूर्ति कराऊँगा। बहुत दिनों से उनसे कुछ नहीं लिया है।"

लोचनसिंह कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर में दलीपनगर की छोटी-सी सेना पालर के बाहर, जंगल के मुहाने पर, पहुँच गई। ठाकुर की छोटी-सी बारात एक ओर से आ रही थी। वह कुछ दूरी पर ठिठक गई। दूल्हा पालकी में था। कहार पालकी को अपने कंधों पर ही लिए रहे।

राजा ने लोचनसिंह से कहा—"इस घमंड को देखते हो? पालकी नहीं उतारी गई। चाहूँ, तो अभी दूल्हा के खंड-खंड कर डालूँ।"

लोचनसिंह ने उपेक्षा के साथ कहा—"महाराज, यह बुँदेला की बारात है। दूल्हा किसी के लिये भी पालकी से नहीं उतरेगा। निर्धन हों, चाहे श्री-संपन्न, परंतु बुंदेले आपस में सब बराबर हैं।"

"सब बराबर हैं?" राजा ने कालपी की चढ़ती हुई सेना की चिंता न करके पूछा—"सब बराबर हैं? तुम और हम?"

"मैं प्रजा हूँ" लोचनसिंह ने उसी स्वर में कहा—"वह बुंदेला आपकी प्रजा नहीं है। उसकी पालकी नीची नहीं हो सकती।" फिर चिल्लाकर कहारों से बोला—"ले जाओ अपनी पालकी को।" पालकी और बारात कतराकर निकली।

थोड़ी देर में कालपी की सेना से मुठभेड़ हो गई।

राजा, लोचनसिंह और कुंजरसिंह थोड़ी देर घोड़ों पर ही लड़ते रहे। आधी घड़ी पीछे राजा का घोड़ा आहत हो गया। राजा के घोड़े से उतरते ही उनके अन्य सरदार भी पैदल लड़ने लगे।

कालपी की सेना बड़ी दृढ़ता और दिलेरी के साथ लड़ी, परंतु वह अल्पसंख्यक थी।

दलीपनगर की सेना भी बहुत न थी। एक को दूसरे के बल का पता न था। टुकड़ियों में बँटकर दोनो ओर की सेनाएँ भिड़ गईं, और कटने लगीं।

कालपी की एक टुकड़ी ने राजा को, उनके कुछ सरदारों-सहित, धर

दबाया। रोग-ग्रस्त होने पर भी राजा पागलों की तरह लड़ने लगे। कई आक्रमणकारी हताहत हुए, परंतु ठेल-पर-ठेल होने के कारण एक किनारे दूर तक राजा को हटना पड़ा। उनके साथी ज़रा दूर पड़ गए। राजा मुश्किल से अपना बचाव करने लगे। क्षण-क्षण पर यह भासित होता था कि राजा अब आहत हुए, और अब सहायता के लिये ऐसे समय में पुकारना राजा की बची-खुची शक्ति के बाहर था।

इतने में पेड़ों की एक झुरमुट के पीछे इधर-उधर कुछ आदमी ज़ोर से भागे। हमला करनेवालों का ध्यान ज़रा उचटा कि ब्याह का झाँगा पहने और मुकुट बाँधे बारात का वह दूल्हा तलवार भाँजता हुआ वहाँ आ टूटा। ठेठ बुंदेलखंडी में बोला—"काकाजू, एक हाथ मोरोई देखवे में आवै।" उधर पालकी पटककर भागे हुए कहारों ने कुहराम मचाया।

वह दूल्हा इतने वेग से लड़ा कि जगह-जगह से उसका आँगा कट-फट गया, रुधिर की धार बदन से बह निकली, और सिर का मौर टुकड़े-टुकड़े होकर धरती पर रूँद गया। उसी समय दलीपनगर की सेना सिमट आई। तलवार अनवरत रूप से चली। ऐसे चली कि कालपीवालों के छक्के छूट गए। जो सशक्त थे, वे भाग खड़े हुए। मालवा से एक लड़ाई तो हारकर ये लोग आए ही थे, इस लड़ाई में भी एक बार पैर उखड़ने पर फिर भागने में ही कुशल देखी।

संध्या होने के पूर्व ही युद्ध समाप्त हो गया। कालपी की घबराई हुई सेना कालपी की ओर कोसों दूर निकल गई।

राजा घायल हो गए थे, और बहुत थक गए थे। दूल्हावाली पालकी में राजा को लिटाकर ले चले। दूल्हा साथ-साथ था। शरीर से रक्त बह रहा था, परंतु उसकी दृढ़ता में कमी नहीं दिखलाई पड़ती थी। जान पड़ता था, मानो लोह का बना हो।

राजा ने पालकी में लेटे-लेटे क्षीण स्वर में उसका नाम पूछा।

उत्तर मिला—"अन्नदाता, मुझे देवीसिंह कहते हैं।"

"ठाकुर हो?"

"हाँ महाराज।"

"बुंदेला?"

"हाँ महाराज।"

"जीते रहो। तुमको ऐसा पुरस्कार दूँगा, जैसा कभी किसी को न मिला होगा।"

इस समय जनार्दन शर्मा और आग़ा हैदर भी पालकी के पास गाँव की ओर से आ चुके थे, और बड़े आदर की दृष्टि से उस दरिद्र दूल्हा को देख रहे थे। कुंजरसिंह उदास-सा पीछे-पीछे चला आ रहा था। लोचनसिंह कुछ गुनगुनाता हुआ चला जा रहा था। बंदनवारवाले दरवाज़े पर जब राजा की पालकी पहुँची, तब देवीसिंह से राजा बोले—"देवीसिंह, अब तुम अपना ब्याह करो। टीके का मुहूर्त आ गया है। ब्याह होने के बाद दलीपनगर आना—अवश्य आना, भूलना मत।"

पालकी दरवाज़े पर ठहर गई। दूल्हा ने पालकी की कोर को हाथ से पकड़कर क्षीण स्वर में कहा—"मेरा ब्याह तो रणक्षेत्र में हो गया। अब महाराज के चरणों में मृत्यु हो जाय, बस यही एक कामना है।"

जब तक कोई सँभालने को दौड़ता, तब तक देवीसिंह धड़ाम से, पालकी का सहारा छोड़कर, अपनी भावी ससुराल के सामने, गिर पड़ा।

लोचनसिंह ने आगे बढ़कर कहा—"वाह क्या बाँकी मौत मर रहा है। सब इसी तरह मरें, तो कैसे आनंद की बात हो।"

राजा ने तीव्र स्वर में, कराहते हुए, कहा—"काठ के कठोर कलेजेवाले मनुष्य, इस नन्हें-से दूल्हा की मौत पर तू ख़ुश हो रहा है। सँभाल इसको।"

"यह न होगा।" लोचनसिंह ने अविचलित स्वर में कहा—

"क्षत्रिय को बिना किसी सहारे और लाड़-दुलार के मरने दीजिए। वह बचेगा नहीं।" फिर पालकीवालों से बोला—"महाराज को शिविर में ले चलो। हकीमजी तुरंत दवा-दारू का बंदोबस्त करें। मैं इसकी क्षत्रियोचित अंत्येष्टि क्रिया का प्रबंध किए देता हूँ।"

राजा कुछ कहने को हुए, परंतु दर्द ने न बोलने दिया। इतने में कुंजरसिंह वहाँ आ गया। तुरंत घोड़े से उतर पड़ा। अचेत देवीसिंह को, या उसकी लाश को, घोड़े पर रखकर आगे बढ़ गया। लोचनसिंह ने पीछे से आकर कहा—"आज देवी ने लाज रख ली। चलो राजा, पुजारी को कुछ देते चलें।"

कुंजरसिंह ने कोई उत्तर न दिया। जब वे दोनो नरपतिसिंह के मकान के सामने पहुँचे, राजा की पालकी आगे निकल गई थी। लोचनसिंह ने घोड़े पर चढ़े-चढ़े नरपति को पुकारा। दरवाज़े पर साँकल चढ़ी थी, किसी ने उत्तर न दिया।

कुंजर ने आगे बढ़ते हुए कहा—"आओ, मैं नहीं ठहरूँगा।"

लोचनसिंह ने फिर पुकार लगाई। उस मकान से तो कोई उत्तर नहीं मिला, परंतु एक पड़ोसी ने किवाड़ों के पीछे से कहा—"वह तो देवी के साथ दोपहर के बाद ही न-जाने कहाँ अंतर्धान हो गए।"

लोचनसिंह चल दिया। कुंजरसिंह कुछ और प्रश्न करना चाहता था, परंतु वह पड़ोसी पौर से खिसककर अपने घर के किसी भीतरी भाग में जा छिपा। लोचनसिंह बोला—"देवी कूच कर गई। चलिए।"

सब लोग डेरे पर पहुँचे। राजा की मरहम-पट्टी हो गई। घाव काफ़ी लगे थे, परंतु कोई भय की बात न जान पड़ती थी। लोग रात-भर उपचार में लगे रहे। देवीसिंह को भी भुलाया नहीं गया। कुंजरसिंह उसकी दवा-दारू करता रहा। अवस्था चिंता-जनक थी।

दलीपनगर के सरदार राजा को दूसरे ही दिन दलीपनगर ले गए। राजा ने देवीसिंह को भी साथ ले लिया।

---

(८)

दलीपनगर पहुँचने पर राजा के घाव अच्छे हो गए, परंतु पागलपन बहुत बढ़ गया, और उनकी दूसरी बीमारी ने भी भयानक रूप धारण किया। देवीसिंह को अच्छे होने में कुछ समय लगा। राजा का स्नेह उस पर इतना बढ गया कि अपने निजी महल में उसे स्थान दे दिया।

राजा का स्नेह-भाजन होने के कारण बड़ी रानी भी देवीसिंह पर कृपा करने लगीं, और छोटी रानी अकारण ही घृणा।

रामदयाल बचपन से महलों में आता-जाता था। उन दिनों तो वह राजा की विशेष टहल ही करता था। रानियाँ उससे पर्दा नहीं करती थीं। छोटी रानी का वह विशेष रूप से कृपा-पात्र था, परंतु इतना चतुर था कि बड़ी रानी को भी नाख़ुश नहीं होने देता था।

एक दिन किसी काम से छोटी रानी के महल में गया। छोटी रानी ने राजा की तबियत का हाल पूछा। वह स्वयं राजा के पास महीने में एकाध बार जाती थीं।

अवस्था का समाचार सुनकर रानी ने कहा—"अभी तक महाराज ने किसी को उत्तराधिकारी नहीं बनाया है। यदि भगवान् रूठ गए, तो बड़ी विपद् आएगी।"

बात टालने के लिये रामदयाल बोला—"महाराज, काकाजू की तबियत जल्दी अच्छी हो जायगी। हकीमजी ने विश्वास दिलाया है।"

"भगवान् ऐसा ही करें। परंतु हकीम की बात का कुछ ठीक नहीं।" फिर कुछ सोचकर रानी ने कहा—"कुंजरसिंह राजा तो

दासी के पुत्र हैं, उन्हें गद्दी नहीं मिल सकती। वैसे भी राज-सिंहासन उनकी रोनी सूरत के विरुद्ध है।"

"इसमें क्या संदेह है महाराज!" रामदयाल ने हाँ में हाँ मिलाई।

"महाराज ने अपने महलों में उस नए मनुष्य को क्यों रक्खा है?"

"एक बुंदेला ठाकुर है महाराज, पालर की लड़ाई में वह बहुत आड़े आए थे, इसीलिये दवा-दारू के लिये अपने खास महलों में काकाजू ने रख लिया है।"

"जनार्दन शर्मा की भी उस पर कृपा है या नहीं? मंत्री तो बेचारा अपने बाप का लड़का होने के कारण मंत्रित्व कर रहा है। उस गधे में गाँठ की ज़रा भी बुद्धि नहीं। लोचनसिंह जंगल के बाँस की तरह सीधा है। बस, राज्य तो धूर्त जनार्दन कर रहा है। बड़ी रानी के महलों में भी जुहार करने जाता है या नहीं?"

"महाराज, वह तो सभी जगह आते-जाते हैं।"

"अच्छा, एक बात बतला। जनार्दन महाराज के कान में कभी कुछ कहता है या नहीं?"

"मेरे सामने अभी तक तो कुछ कहा नहीं। महाराज तो उन्हें गाली देते रहते हैं।"

"लोचनसिंह तो आते-जाते रहते हैं?"

"नित्य महाराज, परंतु उनसे काकाजू की बातचीत बहुत कम होती है।"

"तब बातचीत किससे ज़्यादा होती है?"

रामदयाल अधिक खोलकर कुछ नहीं कहना चाहता था, परंतु अब निर्वाह न होते देखकर बोला—"शर्माजी के साथ ही बहुत बत-बढ़ाव होता रहता है।"

"किस विषय पर?"

"विषय तो महाराज, कोई ख़ास नहीं है। परंतु कभी-कभी देवीसिंह ठाकुर की प्रशंसा करते हुए सुना है।"

"मैं सब समझती हूँ।" रानी ने सोचकर कहा। फिर एक क्षण बाद बोली – "रामदयाल, यदि तू धर्म पर टिका रहा, तो प्रतिफल पावेगा।"

रामदयाल ने नम्रता-पूर्वक कहा—"महाराज, मैं तो चरणों का दास हूँ।"

"तू मुझे महाराज के महलों के समाचार नित्य दिया कर। अब जा, और ज़रा लोचनसिंह को भेज दे।"

थोड़े समय उपरांत लोचनसिंह आया। दासी द्वारा पर्दे में रानी से बातचीत हुई।

रानी ने कहलवाया—'लोचनसिंह, भगवान् न करें कि महाराज का अनिष्ट हो; परंतु यदि अनहोनी हो गई, तो राज्य का भार किसके सिर पड़ेगा?"

"जिसे महाराज कह जायँ।"

"तुम्हारी क्या सम्मति है?"

"जो मेरे स्वामी की होगी।"

"या जनार्दन की?"

"महाराज की आज्ञा से जनार्दन का सिर तो मैं एक क्षण में काटकर तालाब में फेक सकता हूँ।"

"यदि महाराज कोई आज्ञा न छोड़ गए, तो?"

"वैसी घड़ी ईश्वर न करे, आवे।"

"और यदि आई?"

"यदि आई, तो उस समय जो आज्ञा होगी, या जैसा उचित समझूँगा, करूँगा।"

रानी कुछ सोचती रही। अंत में उसने यह कहलवाकर लोचनसिंह को बिदा किया कि "भूलना मत कि मैं रानी हूँ।"

"इस बात को बार-बार याद करने की मुझे आवश्यकता न पड़ेगी।" यह कहकर लोचनसिंह चला। रानी ने फिर रुकवा दिया। दासी द्वारा कहलवाया—"सिंहासन पर मेरा हक़ है, भूल तो न जाओगे ?"

उसने उत्तर दिया—"जिसका हक़ होगा, उसी की सहायता के लिये मेरा शरीर है।"

"और किसी का नहीं है।"

"मैं इस समय इस विषय में कुछ नहीं कह सकता।"

"स्वामिधर्म का पालन करना पड़ेगा।"

"यह उपदेश व्यर्थ है।"

"तुम्हारे आँखें और कान हैं। किस पक्ष को ग्रहण करोगे ?"

"जिस पक्ष के लिये मेरे राजा आज्ञा दे जायँगे, और यदि वह बिना कोई आज्ञा दिए सिधार गए, तो उस समय जो मेरी मौज में आवेगा।" लोचनसिंह चला गया। रानी बहुत कुढ़ी।

---

(६)

कुछ दिनों बाद बड़नगर से यह उलहना आया कि दलीपनगर की सेना ने अपने राज्य की सीमा के बाहर उपद्रव किया, और कालपी के मित्र-राज्य को बड़नगर का शत्रु बनाने में कसर नहीं लगाई। उलहने के साथ इन आरोपों का उत्तर-मात्र पूछा गया था, उलहनों की पीठ पर कोई धमकी नहीं थी; इसलिये जनार्दन ने राजा को, बिगड़ी हुई अवस्था में, यह समाचार नहीं सुनाया। नाना प्रकार के बहाने बनाकर ओरछे से क्षमा माँग ली।

इसके बाद ही कालपी से एक दूत आया। दिल्ली में फ़र्रुख़सियर नाम-मात्र का राज्य या कुराज्य कर रहा था। चारो ओर मार-काट मची हुई थी। अंतिम मुग़ल-सम्राट् की थपेड़ों ने जो भयंकर लहर

भारतवर्ष में उत्पन्न कर दी थी, उसने क्रांति उपस्थित कर दी। दिल्ली के शासन का संचालन सैयद भाई कर रहे थे। किसी राजा या रजवाड़े को चैन न था। सब शासक परस्पर गुट्टों में एक दूसरे से उलझे हुए थे। सब अपनी-अपनी स्वतंत्रता की चिंता में डूबे हुए थे। उत्तर-भारत में सैयद भाइयों की तूती बोल रही थी। उनकी एक छाया सैयद अलीमर्दान के रूप में कालपी-नामक नगर में भी थी, जो उस समय बुंदेलखंड की कुंजी और मालवे का द्वार समझा जाता था। सैयद भाइयों को उत्तर-भारत के ही झगड़ों से अवकाश न था, दक्षिण-भारत अलग दम घोटे डालता था। अलीमर्दान का भविष्य बहुत कुछ सैयद भाइयों के पक्ष से अटका हुआ था। दलीप-नगर उस समय के राजनीतिक नियमानुसार दिल्ली का आश्रित राज्य था। दिल्ली को उस समय दलीपनगर और कालपी, दोनो की ज़रूरत थी। कम-से-कम दिल्ली को उन दोनो से आशा भी थी। कालपी वस्तुतः दिल्ली की सहायक थी; दलीपनगर केवल शाही काग़ज़ों में। दोनो की मुठभेड़ में दिल्ली को कालपी का पक्ष लेना अनिवार्य-सा था। परंतु यह तभी हो सकता था, जब दिल्ली को अपनी अन्य उलझनों से साँस लेने का अवकाश मिलता। अलीमर्दान इस बात को जानता था। और, उसे यह भी मालूम था कि न-जाने किस समय कहाँ के लिये दिल्ली से बुलावा आ जाय, इसलिये उसने पालर के पास अपनी टुकड़ी के ध्वस्त किए जाने पर तुरंत कोई बड़ी सेना बदला लेने के लिये नहीं भेजी, केवल चिट्ठी भेज दी। एक पत्र दिल्ली भी भेजा कि दलीपनगर बाग़ी हो गया है। परंतु चिट्ठी में पद्मिनी का कोई ज़िक्र न किया। अपनी उलझनों की मात्रा में एक की और बढ़ती होती देखकर बादशाह ने उसे विशेष अवकाश के अवसर पर विचार करने के लिये रख लिया।

जो चिट्ठी दलीपनगर आई थी, उसमें ये चार माँगें की गई थीं—

(१) पालर की रूपवती दाँगी-कन्या एक महीने के भीतर दिल्ली के शाहंशाह की सेवा में कालपी द्वारा भेज दी जाय।

(२) लोचनसिंह-नामक सरदार को ज़िंदा या मरा हुआ भेज दिया जाय।

(३) एक लाख रुपया लड़ाई के नुक़सान का हर्जाना पहुँचा दिया जाय।

(४) दलीपनगर का कोई ज़िम्मेदार कर्मचारी या सरदार राज्य की ओर से कालपी आकर क्षमा-याचना करे।

यदि एक भी माँग पूरी न की गई, तो दलीपनगर की बस्ती और सारे राज्य को शाही सेना द्वारा ख़ाक में मिला देने का प्रस्ताव भी उसी चिट्ठी में किया गया था।

यह चिट्ठी मंत्री को दी गई। मंत्री ने जनार्दन के पास भेज दी। चिट्ठी पाकर जनार्दन गूढ़ चिंता में पड़ गया। हर्जा देकर और माफ़ी माँगकर पिंड छुड़ा लेना तो व्यावहारिक जान पड़ता था, परंतु बाक़ी शर्तें बहुत टेढ़ी थीं। पद्मिनी बादशाह के लिये नहीं माँगी गई थी, बादशाह की ओट लेकर अलीमर्दान ने उसे अपने लिये चाहा था, यह बात जनार्दन की समझ में सहज ही आ गई। लोचनसिंह को जीवित या मृत किसी भी अवस्था में कालपी भेजना, दलीपनगर में किसी के भी बल के बाहर की बात थी। किंतु सबसे अधिक टेढ़ा प्रश्न उस समय इन बातों को राजा के सम्मुख उपस्थित करने का था।

बिना पेश किए बनता नहीं था, और पेश करने की हिम्मत पड़ती न थी। जनार्दन ने आग़ा हैदर को सब हाल सुनाकर सलाह की। "हकीमजी, या तो अब राजा को जल्दी स्वस्थ करो, नहीं तो मुझे छुट्टी दो। कहीं गंगा-किनारे अकेले बैठकर राम-भजन करूँगा।" जनार्दन ने कहा।

हकीम ने कहा --' यदि आपका हौसला पस्त हो गया, तो इस राज्य को पूरी बरबादी ही समझिए ।"

जनार्दन ज़रा मचला। बोला ''नहीं हकीमजी, अब सहा नहीं जाता। रोज़-रोज़ नई नई मुश्किलें नज़र आती हैं। राजा दिन-पर-दिन रोग में डूबते चले जाते हैं, और हर घड़ी जो गालियाँ खाने को मिलती हैं, उनका कोई हिसाब नहीं। अब आप इस आफ़त को सँभालिए, मेरे बूते की नहीं है।"

"राजा अब चंगे नहीं होते।" आग़ा हैदर ने उसास लेकर कहा।

"पहले ही कह दिया होता।"

"तो क्या होता ? कुहराम मचाने के सिवा और क्या कर लेते ?"

"नाहक इतना दम-दिलासा दिलाए रहे। अब क्या करें ? कोई राज्य साथ देने को तैयार न होगा। सिवा मराठों का आश्रय लेने के और कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। सो उसके बदले आधे राज्य से यों ही हाथ धोने पड़ेंगे।"

हकीम के मन में ज़रा बल पड़ गया। बोला—"जितना करते बना, मैंने इलाज किया। मैं कोई फ़रिश्ता तो हूँ नहीं कि रोग को छू-मंतर कर दूँ।"

जनार्दन ने खिसियाकर कहा—"इस कालपी की चिट्ठी को आप ही राजा के सामने पेश करें।"

"मंत्री होंगे आप, चिट्ठियाँ पढ़कर सुनाऊँ मैं !" हकीम ने त्योरी बदलकर कहा—"मुझे सिवा वैद्यक के कुछ नहीं करना है। जिसे चारो तरफ़ अपने हाथ फेकने हों, वही यह काम ख़ूबी के साथ कर सकता है। यदि राजा या आप लोग मुकर जायँगे, तो अपने घर बैठूँगा। ख़ुदा ने रोटी-भाजी के लायक़ बहुत दिया है।"

"जब दलीपनगर का ही सत्यानास हो जायगा, तब क्या खाओगे हकीमजी ?"

"जो जनार्दन महाराज खायँगे, वही बंदा भी खाएगा। आप ही ने इतनी संपत्ति जोड़ रक्खी है कि सबसे ज़्यादा चिंता आपको हो।"

जनार्दन का क्षोभ कम हो गया। भाव बदलकर बोला—"हकीमजी, मैं इतना घबरा गया हूँ कि कोई उपाय नहीं सूझता। अपनों से न कहूँ, तो किसके सामने दुख रोऊँ? आप ही कहिए, आप कहते थे कि कालपी के सैयद को तो मैं किसी-न-किसी तरह मना लूँगा।"

"पंडितजी", हकीम ने उत्तर दिया—"वह मेरा रिश्तेदार तो है नहीं, अपनी ज़बान और उसके ईमान का भरोसा था। मैंने स्वप्न में भी न सोचा था कि सैयद होकर ऐसा ज़ालिम निकलेगा।" फिर एक क्षण सोचकर बोला—"सैयद की शिकायत बिलकुल अन्याय-मूलक नहीं है।"

जनार्दन ने सोचकर कहा—"तब इस चिट्ठी को मैं ही पेश करता हूँ। परंतु आप कृपा करके मौजूद रहिएगा।"

आग़ा हैदर ने स्वीकार किया। एक दूसरे से अलग होने के समय दोनों अशांत थे। जनार्दन इस कारण कि निश्चय और अभ्यास के विरुद्ध वह अपने भावों की उत्तेजना को संयत न रख सका, और वैद्य इस कारण कि जनार्दन सदृश मित्र भी मुझे अयोग्य वैद्य समझते हैं।

जनार्दन आग़ा हैदर की उपस्थिति में राजा के पास पहुँच गया। परंतु उसने, अपने पैमाने के हिसाब से, एक बुद्धिमानी का काम किया। दूत के ज़रिए कालपी जवाब भेज दिया कि हरजे की रक़म एक लाख बहुत है, परंतु दी जायगी; और माफ़ी माँगने के लिये प्रधान राज्य-कर्मचारी जनार्दन शर्मा स्वयं शीघ्र दरबार में उपस्थित होंगे। दाँगी-कन्या दलीपनगर-राज्य की हद के बाहर कहीं लापता है; और लोचनसिंह बहुत बीमार हैं, एक-आध दिन के ही मेहमान हैं, इसलिये

उनके लिये चिंता न की जाय। जनार्दन राजा के गाली-गलौज के लिये दूत को टिकने नहीं देना चाहता था। इसलिये यह संवाद देकर लौटा दिया। उसने सोचा, कुछ समय मिल जायगा, इस बीच में बाहर की घटनाओं के परखने का अवसर हस्तगत हो जायगा, और अपनी राजनीति को तदनुकूल ढालने और गढ़ने में आसानी रहेगी।

---

(१०)

जनार्दन का स्वभाव था कि जब तक बला टालते बने, टाली जाय; उसका मुक़ाबला केवल उस समय किया जाय, जब टालने का अन्य कोई उपाय नज़र न आए।

राजा सुनें या न सुनें, समझें या न समझें, परंतु परंपरागत रीति के अनुसार कालपी की चिट्ठी लेकर उनके पास जाना ही पड़ेगा। रह-रहकर धैर्य खिसक रहा था, और जी चाहता था कि राज्य छोड़कर कहीं चले जायँ, परंतु बाग़-बग़ीचे थे, मकान थे, अनाज और रुपए थे, और थी प्रधान मंत्री के नाम से पुकारे जाने की आशा।

राजा के सामने पहुँचते ही जनार्दन का मन और भी छोटा हो गया। उनकी तबियत आज और भी ज़्यादा ख़राब थी। वह बहुत हँस रहे थे, और बिलकुल बेसिर-पैर की बातें कर रहे थे। आग़ा हैदर मौजूद था।

राजा ने जनार्दन से ख़ूब हँसकर कहा—"कहो बम्हनऊ, आजकल किस घात में हो? तुम और कुंजर मिलकर राज्य करोगे? याद रखना, वह भेड़िया लोचनसिंह तुम सबों को खा जायगा।"

जनार्दन हाथ जोड़े सिर नीचा किए रहा।

"तुम्हारे इस अवनत मस्तक पर अगर दो सेर गोबर लपेट दिया जाय, तो कैसा रहे?" राजा ने अट्टहास करके पूछा।

"महाराज का दिया सिर है, इनकार थोड़े ही है।" जनार्दन ने विनीत भाव से उत्तर दिया।

"हाँ-हाँ।" राजा ने उसी तरह कहना जारी रक्खा—"इसी विनय से तो तुम दुनिया को ठगते रहते हो महाराज। कितना धन और अन्न इकट्ठा कर लिया है, उफ़् ! सोचकर डर लगता है। मरने के बाद सब सिर पर धरकर ले जायगा।"

फिर एकाएक गंभीर होकर बोले—"हकीमजी, बचूँगा या मरूँगा ?"

"अभी महाराज बहुत दिन जिएँगे।" राजभक्त हकीम ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया, परंतु स्वर में विश्वास की खनक न थी। तकिए पर सिर रखकर राजा बोले—"तब कुंजरसिंह राज्य करेगा। वही करे, कोई करे। जनार्दन तुम, राज्य करोगे ?"

"महाराज, ऐसा न कहें। ब्राह्मणों का काम राज्य करने का नहीं है।" जनार्दन ने ज़रा काँपकर कहा। राजा किसी गुप्त पीड़ा के मारे कराहने लगे।

इतने में लोचनसिंह वहाँ आया। प्रणाम करके बैठ गया।

लोचनसिंह ने हकीम से धीरे से पूछा—"आज अवस्था क्या कुछ अधिक भयानक है ?"

"नहीं, ऐसी कुछ अधिक नहीं।" उत्तर मिला।

लोचनसिंह बोला—"आप सदा यही कहते रहते हैं, परंतु महाराज के जी के सँभलने का रत्ती-भर भी लक्षण नहीं दिखलाई देता। सच्ची बात तो यह है कि राजा को यह बीमारी आप ही ने दी है।"

"मैंने !" हकीम ने साश्चर्य कहा।

"हाँ, आपने, निस्संदेह आपने, और किसी ने नहीं दी। बुढ़ापे में जवानी बुला देने का नुसख़ा आप ही ने बतलाया। न-मालूम किन-किन दवाओं की गरमी से महाराज का दिमाग़ आप ही ने जलाया है।"

दाँत पीसकर आग़ा हैदर महल की छत की ओर देखने लगा।

राजा का ध्यान आकृष्ट हुआ। जनार्दन से पूछा—"क्या गड़बड़ है? क्या मेरे ही महल में किसी षड्यंत्र की रचना कर रहे हो?" जनार्दन के उत्तर देने के पूर्व ही लोचनसिंह बोला—"षड्यंत्रों का समय भी महाराज, इन लोगों ने मिल-जुलकर बुला दिया है; परंतु जब तक लोचनसिंह के हाथ में तलवार है, तब तक किसी का कोई भी षड्यंत्र एक क्षण नहीं चल पावेगा।"

"क्या बात है?" राजा ने आँखें फैलाकर पूछा।

लोचनसिंह ने तुरंत उत्तर दिया—"महाराज अपने किसी उत्तराधिकारी को नियुक्त कर दें, नहीं तो शायद बीमारी के साथ-साथ गोलमाल भी बढ़ता ही चला जायगा। जगह-जगह लोग चर्चा करते हैं 'अब कौन राजा होगा?' जगह-जगह लोग सोचते होंगे 'मैं राजा होऊँगा, मैं राजा बन जाऊँगा।' तबियत चाहती है, ऐसे सब पाजियों के गले काटकर कुत्तों को खिला दूँ। महाराज—"

राजा ने कराहते हुए कहा—"मूर्ख, बकवादी, पहले तू अपना ही गला काट।"

लोचनसिंह तुरंत तलवार निकालकर बोला—"एक बार, अंतिम बार आदेश हो जाय, और सब सह लिया जाता है, महाराज की व्यथा नहीं देखी जाती।"

"क्या करता है रे नालायक़, डाल म्यान में तलवार को।" राजा ने भयभीत होकर कहा। फिर बहुत क्षीण स्वर में बोले—"हकीमजी, इस भयंकर रीछ को मेरे पास मत आने दिया कीजिए। यह न-मालूम इतने दिनों कैसे जीता रहा।"

हकीम सिर नीचा किए बैठा रहा।

लोचनसिंह ने भी कुछ नहीं कहा।

जनार्दन उस दिन ठीक मौक़ा न समझकर, कालपी से आई हुई चिट्ठी के विषय में कोई चर्चा न करके लौट आया। लोचनसिंह भी साथ ही आया।

मार्ग में जनार्दन ने कहा—"आपसे एक बिनती है ठाकुर साहब, जो बुरा न मानें, तो निवेदन करूँ।"

"कहिए।"

"ऐसे समय महाराज से कोई तीखी बात मत कहिए।"

"मैंने कौन-सी बात चिल्लाकर कही? क्या यह झूठ है कि अनेक स्थानों पर 'उत्तराधिकारी कौन होगा', इस बारे में तरह-तरह की न सुनने लायक़ वार्ता छिड़ती चली जा रही है? क्या आपको मालूम है कि ख़ास महलों में रानियाँ तक राजा के उत्तराधिकारी के विषय में, बिना किसी मोह या दुःख के, चर्चा कर रही हैं? और कोई कहता, तो सिर या जीभ काट लेता; परंतु रानी को क्या कहूँ? अच्छा किया, जो मैंने अपना विवाह नहीं किया।"

"आपकी बात से राजा को कष्ट होता है।"

"तब आपने राजा को अभी तक नहीं पहचाना। राजा को कष्ट होता है आप-सरीखे लोगों की ठकुर-सुहातियों से। ऐसा राजा कभी न हुआ होगा, जो सच्ची बात और सच्चे आदमियों का इतना आदर करे।"

"यह तो आप बिलकुल ठीक कहते हैं।" जनार्दन ने सावधानी के साथ कहा—"हम लोगों को बड़ी चिंता है कि ऐसे राजा के बाद कम-से-कम ऐसा ही वीर-पोषक राजा हो। इस प्रश्न पर विचार करना आप-सरीखे सरदारों का ही काम है। हम तो आप लोगों के किए हुए निर्धार के केवल पालन करनेवाले हैं।"

---

(११)

कुंजरसिंह को राजसिंहासन के प्राप्त करने की बहुत आशा न-

थी। वह यह जानता था कि राजा का अंतिम समय निकट है, और उनके मरते ही सिंहासन के लिये दौड़ो-झपटो की धूम मच जायगी। उसका संसार में कोई न था, केवल राजा का स्नेह था, सो वह पालर से लौटने के बाद कदाचित् राजा के पागलपन में ऐसा लीन हो गया कि उसके चिह्न तक न दिखलाई पड़ते थे।

बड़ी रानी की ज़रूर कुछ कृपा थी, परंतु उस कृपा में स्नेह के लिये, व्याकुल हृदय के लिये, प्रीति न थी।

पालर में एक आलोक उसने देखा था। वह बिजली की तरह चमका, और उसी तरह विलीन हो गया। उसकी दिव्यता का आतंक-मात्र मन पर गड़ा हुआ था, और जैसे प्रातःकाल कोई सुख-स्वप्न देखा हो, किसी आकाश-कुसुम के दूर से एक क्षण के लिये दर्शन किए हों, और फिर वह विस्तृत अनंत प्रसारमय आकाश में ही कहीं छिप गया हो।

एक-आध बार कुंजरसिंह ने सोचा, स्त्री थी, मनोहर थी, लज्जावती थी, एक बार स्नेह की दृष्टि से देखा भी था। परंतु यह भाव बहुत थोड़ी देर मन में टिकता था। उसके मानस-पटल पर जो चित्र बना था, वह स्पष्ट दृष्टिवाली, अपरिमित शालीनतामय नेत्रोंवाली, कठिनाइयों के सामने अपनी कोमल, गोरी भुजा की एक छोटी-सी उँगली के संकेत से अनंत लहरावलि की प्रबलताओं को जगानेवाली दुर्गा का था। स्वप्न सच्चा था, अनूठा था, और शांतिदायक था। अथवा कदाचित् उत्साह-मात्र दान करनेवाला। परंतु उस समय के चिंताजनक और शून्य-से काल में उस आलोक की दिव्यता-मात्र की स्मृति ही थी।

कुंजर को सिंहासन की आशा कम थी, परंतु उपेक्षा न थी। उसने लोगों से प्रायः सुना था कि संसार में पाँसा पलटते विलंब नहीं होता।

राजा की बहुत बढ़ती बीमारी में एक दिन बड़ी रानी ने राजा के पास से लौटकर अपने महल में कुंजर को बुलाया।

कहा—"राजा का बचना असंभव जान पड़ता है, मेरे सती हो जाने के बाद किसका राज्य होगा ?"

"इस तरह की बातें सुनकर मेरा मन खिन्न हो जाता है, और यथासंभव मैं इस तरह की चर्चा से बचा रहता हूँ।"

"परंतु कुंजर" रानी ने कहा—"जो अवश्यंभावी है, वह होकर रहेगा।"

कुंजरसिंह ने एक क्षण सोचकर उत्तर दिया—"जो आप सती हो गईं, और महाराज ने किसी को उत्तराधिकारी नियुक्त न किया, तो मुझे इस राज्य का अनिष्ट ही दिखाई देता है।"

"छोटी रानी राज्य करेंगी", रानी ने आँखें तानकर कहा—"वह सती न होंगी।"

कुंजर बोला—"यह आपको कैसे मालूम ?"

"क्या मैं उनकी प्रकृति को नहीं जानती हूँ ? वह राज्य-लिप्सा में चाहे जो कुछ कर सकती हैं। वह देखो न, देवीसिंह नाम का एक दीन ठाकुर, जो महाराज ने अपने महल में ठहरा रक्खा है, उनकी आँखों में खटक गया है। कारण केवल इतना ही है कि मैंने दो मीठी बातें कह दी थीं।" रानी ने उत्तर दिया।

"परंतु" कुंजरसिंह बोला—"महाराज उस बेचारे को थोड़े ही राज्य दे रहे हैं, जो छोटी सरकार को खटके।" और उसने घबराहट की एक साँस को दबाया। रानी ने कहा—"कुंजर, जब तक मैं राज्य का कोई स्थायी प्रबंध न कर दूँगी, सती न होऊँगी। यदि मेरे पीछे छोटी रानी ने राज्य करके प्रजा को पीसा, तो मुझे स्वर्ग में भी नरक-यातना-सी अनुभव होगी।"

"मेरे लिये जो कुछ आज्ञा हो, सेवा के लिये तैयार हूँ। संसार में आपके सिवा और मेरा कोई नहीं।"

"तीन आदमियों के हाथ में इस समय राज्य की सत्ता बँटी हुई है—जनार्दन, लोचनसिंह और हकीमजी। इसमें से किस पर तुम्हारा क़ाबू है?"

"क़ाबू तो मेरा पूरा किसी पर नहीं है," कुंजरसिंह ने निःश्वास परित्याग कर उत्तर दिया—"परंतु लोचनसिंह थोड़ा-बहुत मेरा कहना मानते हैं।"

"और जनार्दन?" रानी ने पूछा।

"वह बड़ा काइयाँ है। उसका दाँव समझ में नहीं आता।"

"मैं उसे बहुत दिनों से जानती हूँ। मैंने उसके साथ बहुत-से एहसान भी किए हैं। वह उन्हें भूल नहीं सकता। उसे ठीक करना होगा।"

"कैसे?" कुंजरसिंह ने भोले भाव से प्रश्न किया।

रानी ने अवहेलना की सूक्ष्म दृष्टि से कुंजर को अवलोकन किया। फिर ज़रा मुस्किराकर बोली—"मैं उसे ठीक करूँगी। जो कुछ कहती जाऊँ, करते जाना। और, यदि महाराज स्वस्थ हो गए, और मैं उनके समय उस लोक को चली गई, तो सोलह आना बात रह जायगी।"

कुछ क्षण बाद फिर बोली—"कालपी से एक चिट्ठी आई थी। कल महाराज को जनार्दन ने सुनाई। आपसे बिलकुल बाहर हो गए।" रानी ने चिट्ठी का सविस्तर वृतांत कुंजरसिंह को सुनाया।

कुंजर ने भी उस चिट्ठी का हाल सुना था, परंतु यथावत् उसे मालूम न था। रानी के मुख से संपूर्ण ब्योरा सुनकर उसे आश्चर्य हुआ।

रानी बोली—"मुझे राज्य की सब ख़बरों का पता रहता है। यह तुमने समझ लिया या नहीं?"

कुंजर ने स्वीकार किया। बोला—"उस लड़की का पता क्या मुसलमानों को लग गया है ?"

"नहीं, परंतु जनार्दन ने पता लगा लिया है। बहुत सुरक्षित स्थान में, बिराटा के रजवाड़े के दाँगी राजा सबदलसिंह के दुर्ग में, वह पहुँच गई है।" फिर कहा—"हकीमजी जनार्दन के कहने में हैं। जनार्दन को ठीक कर लेने से वह भी ठीक हो जायँगे।"

---

(१२)

राजा न सँभले—'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की।' पागलपन और शरीर की अन्य बीमारियों के बीच में कभी-कभी कुछ चेत हो आता था। अवस्था इतनी ख़राब हो गई थी कि शायद आग़ा हैदर के सिवा और किसी को उनकी चिंता न रह गई थी। सब बेचैन थे, व्यग्र थे इस उग्र चिंता में कि आगे क्या होगा ?

जिस समय जनार्दन ने राजा को कालपी की चिट्ठी का सारांश सुनाया, सब उपस्थित लोगों को तरह-तरह की फूहर गालियाँ देकर अंत में आज्ञा दी कि कालपी पर चढ़ाई करने की तैयारी कर दो।

बात-बात पर सिर काट और कटवाने की योजनावाले लोचन सिंह को भी इस आज्ञा के पालन करने में कठिनाई अनुभव हुई।

जनार्दन जानता था कि अलीमर्दान शीघ्र चढ़ाई न करेगा। दिल्ली षड्यंत्रों के भँवर में पड़ी थी। दिल्ली के प्रत्येक गुट्ट की दृष्टि अपने प्रत्येक सहायक की सत्वर सहायता पर लगी हुई थी। अलीमर्दान अपने भाग्य का अधिकांश वहाँ के एक गुट्ट से संबद्ध समझता था। दलीपनगर भी उस गुट्ट का शत्रु न था। परंतु किसी गुट्ट का भी इतना आतंक दलीपनगर पर न था कि अलीमर्दान के सामने दाँतों-तले तिनका दबाता। इसलिये जनार्दन ने सेना को धीरे-धीरे तैयार कर डालना ठीक समझा। बड़े पैमाने पर सेना रखना उस

समय की माँग थी। शायद इस तैयारी से अलीमर्दान सहम जाय। और, यदि उसने न भी माना, तो डटकर लड़ाई लड़ ली जायगी। परंतु कालपी पर आक्रमण करना जनार्दन का ध्येय न था, और न उसकी व्यवहार-मूलक राजनीति में इस प्रकार के विचार के लिये स्थान था। वज्र-मुष्टि की नीति में विश्वास रखनेवाले लोचनसिंह की सनक राजा की मनोवृत्ति पर निर्भर थी।

वास्तव में इसी का जनार्दन को बहुत खटका था। राजा कालपी पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे चुके थे। जनार्दन दलीपनगर को इस तरह की मुठभेड़ से बचाना चाहता था। सेना की धीमी तैयारी से इस मुठभेड़ का कुछ समय तक बरकाव हो सकता था। जनार्दन को एक और बड़ी आशा थी—राजा का शीघ्र मरण। और, और जो कुछ उसके मन में रहा हो, उसे कोई नहीं जानता था।

परंतु वह इस विचार पर अवश्य पहुँच चुका था कि राजा के मरते ही दलीपनगर पर आनेवाले तूफ़ान का सहज ही निवारण कर लिया जा सकेगा।

जनार्दन ने राजा की एक दिन बहुत भयानक अवस्था देखकर और दोनो रानियों के कई बुलाओं को टालने के बाद आगा हैदर के घर जाकर मंत्रणा की।

कहा—"आज सबेरे राजा को जरा चेत था। स्थिति की भयंकरता देखकर, जी कड़ा करके मैंने राजा से स्पष्ट कहा कि किसी को गोद ले लिया जाय। आश्चर्य है, वह इस पर नाराज़ नहीं हुए। केवल यह कहा कि अभी मैं नहीं मरूँगा, जियूँगा। फिर मैं ज़्यादा कुछ न कह सका।"

हकीम बोला—"अब उनके जीवन में बहुत थोड़े दिन रह गए हैं। बहुत कोशिश की, मगर यमराज का मुक़ाबला नहीं कर सकता।

राजा की बदपरहेज़ी पर मेरा कोई क़ाबू नहीं। यदि कंबख़्त रामदयाल मर जाय, तो शायद अब भी राजा बच जायँ। उनकी नामुमकिन फ़रमाइशों को पूरा करने के लिये वह सदा कमर कसे खड़ा रहता है। ऐसा बदकार है कि कुछ ठिकाना नहीं।"

"यदि मरवा डाला जाय?"

"यह आप जानें। मैं क्या कहूँ?"

"हकीमजी, बदन में फोड़ा होने पर आप उसे सेवें-पालेंगे या काटकर साफ़ कर देंगे?"

"मैं यदि जर्राह होऊँगा, तो साफ़ करके ही चैन लूँगा। मगर मैं हकीम हूँ, जर्राह नहीं।"

"ख़ैर, जिसका जो काम होता है, वह उसे करता ही है। न्यायाधीश शूली की आज्ञा देता है, परंतु शूली पर चढ़ाते हैं अपराधी को चांडाल।"

"मूज़ी है, और उसने पाप भी बहुत किए हैं। आपके धर्म के अनुसार उसे जो दंड दिया जा सकता हो, दीजिए।"

"परंतु हकीमजी, यह आपने बड़ी टेढ़ी बात कही। रामदयाल का असल में दोष ही क्या है? मालिक ने जो हुकुम दिया, उसे सेवक ने पूरा कर दिया। धर्म-विधि से तो राजा का ही दोष है।"

"राजा करे, सो न्याव पाँसा पड़े, सो दाँव।"

"परन्तु अब राजा के अधिक जीवित रहने से न केवल उनका कष्ट बढ़ रहा है, प्रत्युत यह राज्य भी आफ़त की गहरी खाई की ओर अग्रसर हो रहा है।"

"जो होनी है, उसे कोई नहीं रोक सकता।"

"हकीमजी," जनार्दन ने असाधारण निश्चय के साथ एकाएक कहा—"या तो राजा का रोग समाप्त होना चाहिए, या उन्हें शीघ्र स्वर्ग मिलना चाहिए।"

"दोनो बातें परमात्मा के हाथ में हैं।" हकीम ने निराषा-पूर्ण स्वर में कहा।

जनार्दन बोला—"नहीं, आपके हाथ में है।"

"यानी ?"

"यानी यह कि आप ऐसी दवा दीजिए कि या तो उनका रोग शीघ्र दूर हो जाय, या उनका कष्ट-पीड़ित जीवन समाप्त हो जाय।"

आग़ा हैदर सन्नाटे में आ गया।

बोला—"शर्माजी, अपने मालिक के साथ यह नमकहरामी मुझसे न होगी, चाहे आप उनके साथ मुझे भी, मरवा डालिए।"

अब की बार जनार्दन की बारी सन्नाटे में पड़ने की आई।

ज़रा रुखाई के साथ बोला—"अभी-अभी बेचारे रामदयाल के ख़त्म होने का समर्थन तो कर रहे थे, परंतु जिसके अत्याचारों के कारण बेचारी प्रतिष्ठित प्रजा बिलबिला रही है, जिसकी नादानी की वजह से कालपी का फ़ौज़दार इस निस्सहाय जनपद को सर्वनाश के समुद्र में डुबाने के लिये आ रहा है, जिसकी वज्र-कामुकता के मारे असंख्य भोली-भाली, सती स्त्रियाँ मुँह पर कालिख पोतकर संसार में मक्खियाँ उड़ाती फिर रही हैं, जिसकी—"

"बस-बस, माफ़ कीजिए।" हकीम बोला—"आपको जो करना हो, कीजिए, मैं दख़ल नहीं देता। चाहे किसी को राजा रानी बनाइए, मुझसे कोई वास्ता नहीं। परंतु अपने ईमान के ख़िलाफ़ मैं कुछ न कर सकूँगा।"

विना किसी व्याकुलता के जनार्दन ने बड़ी अनुनय के साथ प्रस्ताव किया—"हकीमजी, मैं हाथ जोड़ता हूँ, कुछ तो इस राज्य के लिये करो, जिसके अन्न-जल से हमारे और आपके हाड़-माँस बने हैं।"

"क्या करूँ ?" हकीम ने अन्यमनस्क होकर पूछा।

जनार्दन ने उत्तर दिया—"सैयद अलीमर्दान को मना लो।

दलीपनगर को बचा लो। सुना है, उसकी फ़ौज कालपी से शीघ्र कूच करनेवाली है। यदि आप उसे बिलकुल न रोक सकें, तो कम-से-कम कुछ दिनों तक अटका लें, तब तक मैं राजा द्वारा किसी उत्तराधिकारी को नियुक्त कराके राज्य को सुव्यवस्थित करा लूँगा। यदि राजा बच गए, तो उत्तराधिकारी की देख-रेख में राज-काज ठीक तौर से होता रहेगा; न बचे, तो जो राजा होगा, सँभाल कर लेगा। इस समय सबके मन किसी अनिश्चित, अंधकारवृत्त, अदृश्य, घोर विपत्ति के आ टूटने की संभावना के डर से थर्रा रहे हैं, मानो मनुष्यों में कोई शक्ति ही न हो। सामने सहायक देखकर ये ही भय-कातर लोग प्रबल हो उठेंगे, और यह राज्य विपत्ति से बच जायगा।"

इस अनुनय की प्रबलता ने हकीम को कुछ सोचने पर विवश किया।

जनार्दन निस्संकोच कहता चला गया--"यदि प्रजा अपने आप कुछ कर सकती होती, तो हमें और आपको इतना ऊँच-नीच न सोचना पड़ता। उसका सशक्त या अशक्त होना अच्छे-बुरे राजा पर निर्भर है। देखिए, छोटे राज्यों के अच्छे नरेशों के आश्रय में प्रजा कैसे-कैसे भयानक आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करती है, और बड़े राज्यों के बुरे नरपतियों की मौजूदगी कराल विष का काम करती है।"

हकीम सोचकर बोला--"मैं कालपी तुरंत जाने को तैयार हूँ, परंतु राजा के इलाज का क्या होगा?"

"किसी अच्छे वैद्य या हकीम को नियुक्त कर जाइए।" उत्तर मिला।

हकीम ने कहा--"मैं अपने लड़के के हाथ में राजा का इलाज छोड़ जाऊँगा, और किसी के हाथ में नहीं।"

"इसमें कोई खलल न डालेगा" जनार्दन ने कहा--"और मैंने

अत्यंत विह्वलता के कारण जो दारुण प्रस्ताव आपके सामने उपस्थित किया था, उसे भूल जाइएगा। अवस्था इतनी भयानक हो गई है कि मेरा तो दिमाग़ ही ख़राब हो गया है।"

"ख़ैर।" हकीम बोला—"इसका आप कुछ ख़याल न करें। मैं अलीमर्दान को तो मनाने की कोशिश करूँगा ही, किंतु दिल्ली के भी किसी गुट्ट को हाथ में लेकर अलीमर्दान को सीधा कर लूँगा। इस समय दिल्ली की सल्तनत में एक औरत की बहुत चल रही है। शायद उसकी मार्फ़त अलीमर्दान को काफ़ी समय के लिये दिल्ली बुलवा सकूँ।"

---

(१३)

"लोचनसिंह के हाथ में सारी सेना नहीं है। मैं कभी न मानूँगी कि सब सरदार उसके कहने या तावे में हैं।" रानी ने उस दिन देर तक कुंजरसिंह को तटस्थ की तरह बात करते हुए सुनकर कहा।

अपनी पहले की कही हुई बातों पर डिगने या आशान्वित होने का कोई लक्षण न दिखलाते हुए कुंजरसिंह बोला—"राव अपनी ही घात में हैं, और दीवान साहब अपने को महाराज से भी बढ़कर हक़दार समझते हैं। लोचनसिंह शूरता में उन सब स्वार्थियों से बढ़कर है, और किसी विशेष पक्ष में नहीं समझा जाता है, इसलिये लोग उसकी बात मानने का कम-से-कम दिखावा अवश्य करते हैं।"

"जो आदमी संसार में यह प्रकट करता है कि मैं हथेली पर जान लिए फिरता हूँ, और बात-बात में सिर दे डालने का दंभ करता है, उसे शूर बोदापन ही कह सकता है। उस दिन तो तुम कहते थे कि तुम्हारे कहने में आ जायगा।"

"आपने भी तो आज्ञा दी थी कि आया जनार्दन को ठीक कर लेंगी।"

"वह तो होगा ही अंत में।" रानी बोली—"परंतु इसमें तुम्हारे किस प्रयत्न को गौरव और पुरस्कार मिलेगा?"

कुंजर ने उत्तर दिया—"संभव है, काकाजू स्वस्थ हो जायँ।"

"असंभव है।" रानी ने बिना किसी छद्म के कहा—"अब तो उनके कष्ट की घड़ियाँ बढ़-भर रही हैं।"

इतने में एक दासी ने आकर ख़बर दी कि रामदयाल आना चाहता है। बुला लिया गया।

एक बार कुंजर और दूसरी बार रानी की ओर बिजली की तेज़ी के साथ देखकर बोला—"महाराज आज पंचनद की ओर जाने की तैयारी कर रहे हैं। निवेदन करवाया है कि आप भी चलें।"

ज़रा अचंभे में आकर रानी ने कहा—"जी कैसा है?"

"कुछ अच्छा है—यों ही है।"

"जनार्दन ने भी मान लिया है?"

"उन्होंने यह कहकर समर्थन किया है कि स्थान-परिवर्तन से लाभ होग ।"

कुंजरसिंह ने पूछा—"कौन-कौन जा रहा है? लोचनसिंह भी जा रहे हैं?"

"हाँ राजा।" भृत्य ने झुककर उत्तर दिया—"सेना भी उनके साथ जायगी, जितनी साथ के लिये आवश्यक होगी।"

रानी ने कहा—"छोटी महारानी जायँगी?"

"हाँ महाराज।" उत्तर मिला।

"अच्छा, जाओ।" रानी बोली—"मैं थोड़ी देर में उत्तर भेजूँगी।"

रामदयाल जाने लगा। रानी ने रोककर कहा—"महाराज की अनुपस्थिति में और यहाँ से अनेक लोगों के चले जाने पर सेना कसके हाथ में छोड़ी गई है?"

उसने जवाब दिया—"शर्माजी ने प्रबंध कर दिया है।"

रामदयाल चला गया।

कुंजरसिंह बोला—"जनार्दन ने अलीमर्दान को शांत करने के लिये आग़ा हैदर को कालपी भेजा है। जान पड़ता है, उस दिशा से अब भय का कारण नहीं है। इसीलिये जनार्दन मान गए हैं। मेरी समझ में आपको वहीं चलना चाहिए, जहाँ जनार्दन और लोचनसिंह महाराज के साथ जायँ। छोटी रानी साथ न जातीं, तब भी आपका जाना आवश्यक होता।"

बड़ी रानी ने भी साथ जाने की सहमति प्रकट की।

---

(१४)

कालपी से आग़ा हैदर ने जनार्दन को लिखा था कि अलीमर्दान नाराज़ तो बहुत था, परंतु अब शांत है, और दलीपनगर को मित्र की दृष्टि से देखता है, लड़ाई की कोई संभावना नहीं, और मुझे कुछ दिनों मिहमान बनाए रखना चाहता है।

असल बात कुछ और थी। निज़ामुलमुल्क हैदराबाद में क़रीब-क़रीब स्वतंत्र हो गया था। मालवा स्वतंत्रता के मार्ग पर दूर जा चुका था। परंतु मराठे अपने संपूर्ण अधिकार के लिये वहाँ दौड़-धूप कर रहे थे। दिल्ली में सैयद भाई अस्त हो चुके थे, और वह कठ-पुतलियों को नचानेवाले ओछे हाथों में थी। बुंदेलखंड के पूर्वीय भाग में महाराज छत्रसाल की तलवार झनझना रही थी। मुहम्मदख़ाँ बंगश उस झनझनाहट का विरोध करता फिर रहा था। अलीमर्दान दिल्ली, मालवा और बंगश के चक्रव्यूह से बचकर अपनी धुन बना ले जाने की चिंता में था। दिल्ली का भय उसे न था, परंतु उसकी ओट की अपेक्षा थी। दिल्ली से ससैन्य आने के लिये बुलावा आया था। विना समझे-बूझे शीघ्र दिल्ली पहुँच जाना उन दिनों

दिल्ली का कोई सूबेदार, फ़ौजदार या सरदार आफ़त से ख़ाली नहीं समझता था। मेरे लिये कोई षड्यंत्र तो तैयार नहीं है? मुहम्मद-ख़ाँ बंगश ने तो कोई शरारत नहीं रची है?

बंगश उसका मित्र था, परंतु अलीमर्दान उसकी लड़ाइयों में बहुत कम शामिल होता था। होता भी, तो उस समय के मित्र के षड्यंत्र, विष और खड्ग से कैसे बचता? इसलिये उसे बंगश पर और बंगश को उस पर संदेह रहता था। अतएव उसने शांति के साथ कालपी में कम-से-कम कुछ दिनों डटे रहना तय किया। दलीपनगर पर आक्रमण करने की बात उसने सदा के लिये स्थगित कर दी हो सो नहीं था। मित्र-भाव दिखलाकर वह दलीपनगर को सुषुप्त रखना चाहता था। अवसर आने पर चढ़ाई कर दूँगा इस निश्चय को उसने सावधानी से गाँठ बाँध लिया था।

आग़ा हैदर का जो अतिथि-सत्कार हुआ, उसने अलीमर्दान के मनोगत भाव को और भी न समझने दिया।

ऐसी परिस्थिति में जनार्दन ने राजा के मनोवेग का समर्थन किया। दलीपनगर में सेना का एक काफ़ी बड़ा भाग अपनी मंडली के कुछ विश्वस्त लोगों के हाथ में छोड़ा, और पंचनद की ओर राजा को लेकर कूच कर दिया। ख़बर लेने के लिये जहाँ-तहाँ जासूस नियुक्त कर दिए। वह राजा का साथ बहुत कम छोड़ता था।

रानियाँ साथ गईं। देवीसिंह अब बिलकुल चंगा हो गया था। उसे भी राजा ने साथ ले लिया।

कहने के लिये कई बार सोची हुई बात को जनार्दन ने मार्ग में एकांत पाकर देवीसिंह से कहा—"आप बड़े वीर हैं। उस दिन महाराज की रक्षा आप ही ने की।"

"बुंदेला का कर्तव्य ही और क्या है, शर्माजी?" देवीसिंह ने

लापरवाही के साथ कहा—"परंतु अब किस तरह उनके प्राण बचेंगे, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा।"

"दवा-दारू हो रही है। देखिए, आशा तो बहुत कम है।" आह भरकर जनार्दन बोला। "ऐसी दशा में महाराज को इतनी दूर नहीं आने देना चाहिए था।"

"यमुनाजी की रज में वह अपने इस जन्म की यात्रा समाप्त करना चाहते हैं, इसलिये हम लोगों ने भी निषेध का उपाय नहीं किया।"

देवीसिंह ने पूछा—"यदि महाराज का स्वर्गवास बीच में ही हो गया, तब क्या कीजिएगा ?"

उत्तर मिला—"यमुनाजी की रज में उनके फूल विश्राम करेंगे। आपके प्रश्न के साथ हम सबकी एक और घोर चिंता का भी संबंध है। वह यह कि उनके पश्चात् इस राज्य का शासन कौन करेगा ?"

"सिवा बुंदेला के और कौन कर सकता है ?" देवीसिंह ने कहा—"कुंजरसिंह तो दासी पुत्र हैं, गद्दी के हक़दार नहीं हो सकते, इसलिये कोई भाई-बंद ही सिंहासन पर बैठेगा।"

"परंतु" जनार्दन ने मुस्किराकर कहा—"भाई-बंद कोई ऐसा नहीं, जिसका दृढ़ता-पूर्वक अपने चेत में उन्होंने निषेध न किया हो। रानियाँ अवश्य हैं।"

देवीसिंह बोला—"यह समय स्त्रियों के राज्य का नहीं।"

"और इधर-उधर कोई भी उपयुक्त भाई-बंद नहीं। बड़ी कठिन समस्या है।"

"सब बुंदेले भाई-बंद ही हैं।"

"आप भी ?" जनार्दन ने आँख गड़ाकर पूछा।

उसने उत्तर दिया—"हाँ, मैं भी। प्रजा होने से क्या भाई-बंदी में अंतर आ सकता है ?"

हँसते हुए जनार्दन ने पूछा—"आपको राजा नियुक्त कर दें, तो ?"

देवीसिंह सन्न रह गया। ज़रा रीती दृष्टि से जनार्दन की ओर देखने लगा।

जनार्दन बोला—"यदि कर दें, तो गो-ब्राह्मणों की तो रक्षा होगी ?" और हँसा।

---

(१५)

पालर में और आस-पास भी ख़बर फैली हुई थी कि घोर लूट-पाट और मार-काट होनेवाली है। उत्तरी भारतवर्ष के लिये यह समय बड़े संकट का था। उपद्रवों के मारे नगरों और राजधानियों में खलबली मची रहती थी। दिल्ली डावाँडोल हो चुकी थी। उसके सहायक और शत्रु अपने-अपने राज्य स्थापित कर चुके थे। परंतु ईर्ष्या और शत्रुता बढ़ने के भय से अपनी पूर्ण स्वतंत्रता बहुत थोड़े राजा या नवाब घोषित कर रहे थे। बहुत-से स्वाधीन हो गए थे, किंतु नाम-मात्र के लिये दिल्ली की अधीनता प्रकट करते रहते थे। इनमें जो प्रबल थे, वे चौकस थे, निर्दय थे, और उनकी प्रजा को बहुत खटका नहीं था, किंतु ऐसे थोड़े थे। जो छोटे या निर्बल थे, वे किसी प्रबल पड़ोसी या दूर के शक्तिशाली, तूफ़ानी जन-नायक की ओर निहारते रहते थे।

एक आग-सी लगी हुई थी। उसकी लौ में बहुत-से जल-भुन रहे थे, अनेकों झुलस रहे थे, और उसकी आँच से तो कोई भी नहीं बच रहा था।

बड़नगर के राजा के लिये भी कम परेशानियाँ न थीं। पालर के निकट किसी होनेवाले तूफ़ान की ख़बर पाकर कुछ प्रबंध करने का संकल्प किया कि दूसरी ओर और बड़े झंझावातों की दुश्चिंता में फँस जाना पड़ा। पालर के निकटवर्ती ग्रामों की रक्षा का कोई

प्रबंध न किया जा सका। ऐसी अवस्था में साधारण तौर पर जैसे प्रजा को अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाता था, छोड़ देना पड़ा।

पालर के और पड़ोस के निकटवर्ती ग्रामीणों ने इस बात को समझ लिया। जंगलों और पहाड़ों की भयंकर गोद में छिपे हुए छोटे-छोटे गढ़पतियों की शरण के सिवा और कोई आसरा न था। कोई कहीं और कोई कहीं चला गया। रह गए अपने घरों में केवल दीन-हीन किसान, जो हरी खेती छोड़कर कहीं न जा सकते थे। उन्हें पेट के लिये, राजा के लगान के लिये, लुटेरों की पिपासा के लिये खेतों की रखवाली करनी थी। आशा तो न थी कि चैत-वैशाख तक खेती बची रहेगी। यदि कहीं से घुड़सवार-सेना आ गई, तो खेतों में अन्न का एक दाना और भूसे का एक तिनका भी न बचेगा। परंतु जहाँ आशा नहीं होती, वहाँ निराशा ईश्वर के पैर पकड़वाती है। यदि बच गए, तो कृतज्ञ हृदय ने एक आँसू डाल दिया, और बह गए, तो भाग्य तो कोसने के लिये कहीं गया ही नहीं।

जिस समय बड़े-बड़े राजा और नवाब अपनी विस्तृत भूमि और दीर्घ संपत्ति के लिये रोज़-रोज़ ख़ैर मनाते थे, अपने अथवा पराए हाथों अपने मुकुट की रक्षा में व्यस्त रहते थे, और उसी व्यस्त अवस्था में बहुधा दिन में दो-चार घंटे नाच-रंग, दुराचार और कदाचार के लिये भी निकाल लेते थे, उस समय प्रजा अपनी थोड़ी-सी भूमि और छोटी-सी संपत्ति के बचाव की फ़िक्र करते हुए भी देवालयों में जाती, कथा-वार्ता सुनती और दान-पुण्य करती थी। संध्या-समय लोग भजन गाते थे। एक दूसरे की सहायता के लिये यथावकाश प्रस्तुत हो जाते थे। यद्यपि बड़ों के सार्वजनिक पतन की विषाक्त छाया में साधारण समाज को खोखला करनेवाले अधर्ममूलक स्वार्थ का पूरा घुन लग चुका

था, और कादरता तथा नीचता डेरा डाल चुकी थी, परंतु बड़ों को छोड़कर छोटों में छल-कपट और बेईमानी का आम तौर पर दौर-दौरा न हुआ था।

झाँझ बजाकर रामायण गाते थे। लुटेरों के आने की ख़बर पाकर इकट्ठे हो जाते थे। मुक़ाबले के लायक़ अपने को समझा, तो पिल पड़े; न समझा, तो दे-लेकर समझौता कर लिया, या समय टालकर किसी गढ़पति के यहाँ वन-पर्वत में जा छिपे।

पालर के सीधे-सादे जीवन में जहाँ विशाल झील में नहा-धोकर काम करना और पेट-भर खा लेने के बाद शाम को झाँझ बजाकर ढोलक पर भजन गाना ही प्रायः नित्य का सरल कार्य-क्रम था, वहाँ देवी के अवतार का चमत्कार ही एक महत्त्व-पूर्ण विशेषता थी। इसके रंग को बाहरवालों ने अधिक गहरा कर दिया था, क्योंकि पालरवालों ने इसकी विज्ञप्ति के लिये स्वयं कोई कष्ट नहीं उठाया था।

वही चमत्कार उन दिनों उनकी विपत्ति का कारण हुआ। असंख्य घुड़सवारों की टापों से टूटे हुए हरे-हरे पौधों की टहनियों को धूल के साथ गगन में उड़ते देखना वहाँ के बचे-खुचे लोगों का जागते-सोते का स्वप्न हो गया था।

जिस दिन दलीपनगर के राजा की मुठभेड़ कालपी के दस्ते के साथ हुई, उसी दिन कुमुद का पिता उसे लेकर कहीं चल दिया था। सब धन-संपत्ति साथ नहीं ले जा पाया था। उसका ख़याल था कि शायद शांति हो जाय। थोड़े ही दिन बाद लौटकर आया।

उसके पड़ोस में केवल ठाकुर की एक लड़की, जिसका नाम गोमती था, रह गई थी। वह घर में अकेली थी। देवीसिंह के साथ इसी का विवाह होनेवाला था। परंतु दूल्हा को राजा की पालकी थामे एहु गिरते लोगों ने और गोमती ने देख लिया था। लोचनसिंह

की सहानुभूतिमयी वार्ता गोमती नहीं भूली थी। दूसरे दिन जब राजा नायकसिंह दलीपनगर की ओर चलने लगे, तब डर के मारे किसी पालर-निवासी ने देवीसिंह की कुशल-वार्त्ता का समाचार भी न पूछ पाया था। गोमती स्वयं जा नहीं सकती थी। उड़ती ख़बर सुन ली थी कि हाल अच्छा नहीं है। लोचनसिंह-सरीखे मनुष्य जिस बेड़े में हों, उसमें वह दीन घायल युवक कैसे बचेगा? परंतु एक टूटती-जुड़ती आशा थी—शायद भगवान् बचा लें, कदाचित् दुर्गा रक्षा कर दें।

नरपतिसिंह को गाँव में फिर देखकर गोमती को बड़ा-ढाढ़स हुआ। जाकर पूछा—"काकाजू, कहाँ चले गए थे? दुर्गा कहाँ हैं?"

"मंदिर में हैं।" नरपतिसिंह ने अपना सामान जल्दी-जल्दी बाँधते हुए उत्तर दिया।

"मैं अपनी दुर्गा की बात पूछती हूँ।" गोमती बोली।

"मंदिर में हैं।" वही उत्तर मिला। बड़ी विनय के साथ गोमती ने कहा—"काकाजू, मैं भी उसी मंदिर में तुम्हारे साथ चलूँगी। जहाँ कुमुद होंगी, वहीं मेरी रक्षा होगी। इस विशाल झील के सिवा और कोई मेरा यहाँ रक्षक नहीं।"

सामान का बाँधना छोड़कर नरपतिसिंह बोला—"क्या दुर्गा रक्षा नहीं करती हैं? ऐसा कहने से बड़ा पाप लगता है।"

गोमती ने दृढ़ अनुनय के साथ कहा—"इसीलिये तो आपके साथ चलूँगी। मेरे पास कोई सामान नहीं है। एक धोती और ओढ़ने-बिछाने का छोटा-सा बिस्तर है; कंधे पर लुटिया-डोर डाल लूँगी। यहाँ नहीं रहूँगी। साथ चलूँगी। जहाँ कुमुद होंगी, वहीं चलूँगी।"

"चल सकोगी?" करारे स्वर में नरपतिसिंह ने गोमती को विचलित करने के लिये कहा।

अचल कंठ से गोमती ने उत्तर दिया—"चलूँगी, चाहे जितनी दूर और चाहे जैसे स्थान पर हों।"

"विराटा, भयानक बेतवा के बीच में, यहाँ से दस कोस।"

"चलूँगी।"

थोड़ी देर बाद दोनो पोटली बाँधकर पालर से चल दिए।

---

(१६)

टेढ़े-मेढ़े, पथरीले-नुकीले और वन्य, पहाड़ी ओछे-सकरे मार्गों में होकर नरपतिसिंह गोमती-सहित बिराटा पहुँच गया।

बिराटा पालर से उत्तर-पूर्व के कोने में है। बेतवा के तट और टापू पर, घोर वन के आँगन में, छोटी-सी संपन्न बस्ती थी। राजा दाँगी था। नाम सबदलसिंह। नदी की करार पर उसका गढ़ था, जो दूर से वन के सघन और दीर्घकाय वृक्षों के कारण कई ओर से दिखलाई भी न पड़ता था।

गढ़ के ठीक सामने, पूर्व की ओर नदी के बीचोबीच, एक टापू पर एक छोटा मंदिर, छोटी-सी दृढ़ गढ़ी के भीतर, था। इस मंदिर में उस समय दुर्गा की मूर्ति थी। जीर्णोद्धार होने के बाद अब उसमें शंकर की मूर्ति स्थापित है। दक्षिण की ओर यह टापू एक ऊँची पहाड़ी में समाप्त हो गया है। कहीं-कहीं पहाड़ी दुर्गम है। जिस ओर यह लंबी-चौड़ी चट्टानों में ढल गई है, उस ओर विस्तृत नीलिमामय जल-राशि है। नदी की धार टापू के दोनो ओर बहती है, परंतु टापू से पूर्व की ओर धार बड़ी और चौड़ी है। इस पहाड़ी के नीचे एक बड़ा भारी दह है।

उत्तर की ओर टापू क़रीब पाव मील लंबी, समथर, उपजाऊ भूमि में समाप्त हुआ है। सबदलसिंह की एक छोटी-सी बैठक उस मैदान में थी, और बैठक के चारो ओर एक छोटा-सा उद्यान।

मंदिरों में कभी कोई साधू-बैरागी आकर, कुछ दिनों के लिये, ठहर जाता था; वैसे ख़ाली पड़ा रहता था। पूजा का अवश्य प्रबंध था, जैसा पुराने बिराटा के बिलकुल उजड़ जाने पर भी इस एकांत मंदिर की पूजार्चा का आज भी कुछ-न-कुछ प्रबंध है।

बिराटा में भी कुमुद के दुर्गा होने की बात विख्यात थी। राजा दाँगी था, इसलिये कुमुद के देवत्व को यहाँ और भी अधिक बड़प्पन मिला। नरपतिसिंह थोड़े ही दिनों गाँव की बस्ती में रहा। नदी के बीच में, टापू की पहाड़ी पर, स्थिर मंदिर उसे अपनी रक्षा और निधि के बचाव के लिये बहुत उपयुक्त जान पड़ा। कुमुद भी आव-भगत और पूजा की बहुलता के मारे इतनी थक गई थी कि टौरिया के मंदिर के एकांत को उसने कम-से-कम कुछ दिनो के लिये बहुत हितकर समझा। नरपति के पालर जाने के पहले ही कुमुद इस मंदिर में चली आई थी।

पालर से लौटकर गाँव में पहुँचने पर नरपतिसिंह ने गोमती से कहा—"तुम अब यहीं कहीं अपने रहने का बंदोबस्त करो। मैं देवी के पास मंदिर मैं जाऊँगा।"

"मैं भी वहीं चलूँगी।"

"बड़ा भयानक स्थान है।"

"भयानक स्थानों से नहीं डरती। देवी की सेवा में मेरा संपूर्ण जीवन सुबीते के साथ बीत जायगा।"

"परंतु यदि देवी ने पसंद न किया, तो?"

गोमती ने विश्वास के साथ उत्तर दिया—"अवश्य करेंगी। देवता के पास एक पुजारिन सदा रहेगी। आप जब कभी टापू छोड़कर बस्ती में राजा के पास आवेंगे, देवी को अकेला न रहना पड़ेगा। आजकल किसी को अकेला न रहना चाहिए।"

नरपतिसिंह ने ज़िद न की।

जिस समय गोमती मंदिर में पहुँची, कुमुद बेतवा के पूर्व तट के उस ओर, वन की ओर, जंगली पशुओं की आवाज़ें सुन रही थी। संध्या हो चुकी थी। पश्चिम दिशा का क्षितिज सुनहले रंग से भर चुका था, और पूर्व की ओर से अंधकार के पल्लड़-के-पल्लड़ नदी की स्वर्ण-रेखा पर मानो आवरण डालनेवाले थे। मंदिर के चारो ओर नदी की प्रशस्त धाराएँ अंधकार और वन्य पशुओं के चीत्कारों से कुमुद की एकांतता को अलग-सा कर रही थीं। पिता को देखते ही एकांतता का गांभीर्य चला गया। हर्ष की एक सुनहली रेखा से आँखें जग गईं, और गोमती को देखते ही आनंद की पुलकावली का रेखा-जाल विकसित मुख पर नाचने-सा लगा।

विना किसी प्रतिबंध के गोमती को गले लगाकर बोली—"गोमती, तुम भी आ गईं! अच्छा किया। भूलीं नहीं। एक से दो हुए। अच्छी तरह हो? अब जब पालर चलेंगे, साथ ही चलेंगे।"

यह मिलाप नरपतिसिंह को भी बुरा नहीं लगा। देवी को—अपनी कन्या को—एक घड़ी के लिये स्वाभाविक आनंद में लहराते देखकर वह बूढ़ा पंडा भी प्रसन्न हो गया। उसने सोचा—"ऐसा मिलाप बहुधा और सबके सामने न हाना चाहिए।"

गोमती भी उमड़े हुए सौंदर्य की युवती थी। परंतु किसी गुप्त चिंता और प्रकट थकावट ने उसे मेघाच्छन्न चाँदनी की तरह बना रक्खा था।

आलिंगन से छूटकर गोमती ने सजल, कृतज्ञ नेत्रों से एक क्षण उन महिमावान्, स्थिर नेत्रों की ओर देखा। बोली—"आपकी शरण में आ गई हूँ, अब कोई कष्ट न रहेगा।" और रोने लगी।

नरपतिसिंह अपना सामान यथास्थान रखने में जुट गया।

कुमुद ने गोमती का हाथ पकड़कर कहा—"आप-आप मत कहो, तुम कहो।"

"देवी से?"

"देवी मंदिर में हैं। मैं तो पुजारिन-मात्र हूँ।"

"नहीं, आप ही कहूँगी। सब लोग आप कहते हैं।"

"नहीं, मुझे वही बहुत प्यारा है। आप-आप सुनते-सुनते थक गई हूँ। दूसरे शब्द में अधिक शांति और सुख है।"

"जैसा आदेश हो।"

"फिर वही! अच्छा, देखा जायगा। परंतु मैं तुम्हारी बहन हूँ, यह संबंध मानने का वचन दो।"

"बड़ी बहन?"

"यही सही।"

"सो तो है ही।"

कुमुद ने कहा—"तुम बहुत थक गई हो। सारी देह धूल और धूप में धूमरी पड़ गई है। नहा-धोकर भोजन करो।"

इतने में नरपतिसिंह का ध्यान आकृष्ट हुआ। उस सिर के बाल बिखेरे पास आता देखकर कुमुद की मुद्रा धीर हो गई।

बोला—"गोमती, तुम इस कोठरी में अपना डेरा डाल लो। तुम्हें मैं कुछ वस्त्र और दूँगा। भोजन करके आराम से सो जाओ।"

कुमुद ने अपने सहज मीठे स्वर में कहा—"हम और वह एक ही स्थान पर, अर्थात् एक ही कोठरी में सोवेंगी। मैंने उसे अपनी छोटी बहन बना लिया है।"

"देवी और गोमती बहन नहीं हो सकतीं।" नरपतिसिंह ने ज़रा अधिकार के स्वर में कहा। फिर नरम होकर बोला—"अच्छा, देवी के मन में जैसा आवे, करें। देवी जिस पर कृपा करें, कर सकतीं हैं।"

गोमती को संबोधन करते हुए उसने कहा—"गोमती बेटी, यह स्मरण रखना कि हमारी-तुम्हारी देह मानवों की है, और कुमुद कुमारी दुर्गा का अवतार है।"

"अवश्य।" गोमती ने उत्तर दिया।

(१७)

भोजन के उपरांत नरपतिसिंह मंदिर के एक बड़े कोठे में जा लेटा और तुरंत सो गया। दूसरी ओर की एक कोठरी में कुमुद और गोमती जा लेटीं।

न-मालूम आज कुमुद गोमती को क्यों गले लगा लेने की बार-बार अभिलाषा कर रही थी। आज की संध्या के पहले उसने कभी किसी को गले नहीं लगाया था। पीठ पर हाथ फेरा था, सिर पर करस्थापन किया था। वरदान और आशीर्वाद दिए थे। परंतु दो स्त्रियाँ घंटों तक जो बेसिर-पैर की निरर्थक बातें करती रहती हैं, और फिर भी नहीं अघातीं, इसका उसके जीवन में कभी अवसर न आया था।

गोमती थकी हुई थी, अंग-अंग चूर हो रहे थे, परंतु मन बहुत हल्का था, और आँखों में नींद न थी। जीभ वार्तालाप के लिये लौंक-सी रही थी। परस्पर की दूरी ने मुहर-सी लगा रक्खी थी। कुमुद इस अवस्था को अवगत कर रही थी। एक स्त्री-हृदय को दूसरे स्त्री-हृदय की मूक भाषा समझने में देर न लगी।

जब दोनो को चुपचाप लेटे-लेटे आधी घड़ी बीत गई, कुमुद ने कहा—"गोमती!"

उसने उत्तर दिया—"मैं अभी सोई नहीं हूँ। आप भी जाग रही हैं?"

"फिर वही आप!" जी के उमड़े हुए किसी अज्ञात, अगम्य वेग को रोकते हुए, हँसकर कुमुद बोली—'भाई, ऐसे काम नहीं चलेगा। इन दूर की बातों से अंतर न बढ़ाओ। क्या बहन कहने से तुम्हारे सिर कोई विपद् आती है?"

कुमुद की हँसी में हलकी पैजनी की क्षीण खनक थी, परंतु गोमती ज़रा विचलित-कंपित स्वर में बोली—"मैं ठाकुर की बेटी हूँ, इस-

लिये नहीं डरती ; वैसे देवी के मंदिर में और देवी के इतने निकट रहने का हर किसी मनुष्य-देहधारी में साहस न हो सकता।"

"तुम्हारी-जैसी तो मेरी भी देह है, गोमती! क्या तुम मुझसे डरती हो?"

"देवी, मैं किसी से नहीं डरती। परंतु सिंहवाहिनी दुर्गा का आदर किस तरह हृदय से दूर किया जा सकता है? लोग कहते हैं, आप रात को सिंह पर सवार होकर संसार-भर का भ्रमण और दीन-दुखियों का कष्ट निवारण करती हैं।"

"गोमती, लोग और क्या-क्या कहते हैं?" अलसाए हुए कंठ से कुमुद ने प्रश्न किया।

गोमती ने उत्तर दिया—"लोग कहते और विश्वास करते हैं, और यह बात सच भी है कि दुर्गा रानी किसी भी प्राणी के कष्ट को रात्रि के अवसान पर उतनी ही मात्रा में नहीं रहने देतीं। प्रातःकाल होते-हाते कलियों को चिटक, फूलों को महँक, हरियाली को दमक, अनाथों को सनाथता, पीड़ितों को स्वास्थ्य और दलितों को आश्रय देती हैं—जैसा आज मुझे मिला।"

"गोमती, तुम पढ़ी-लिखी हो" कुमुद ने ज़रा हँसकर कहा—"इसलिये कविता-सी कह गईं, परंतु क्या यह नहीं जानतीं कि देवता का वास मूर्ति में है, मैं तो दुर्गा की केवल पुजारिन हूँ?"

वह बोली—"मेरा भाग्य उदय होना चाहता है, इसलिये आप इतनी दयालु होकर इस तरह मुझसे बातें कर रही हैं। बिनती यही है कि यह कृपा आगे कभी कम न हो।"

एक क्षण सोचकर कुमुद ने कहा—"पालर में उस दिन की लड़ाई मैं रोकना चाहती थी, परंतु न रोक सकी। दुर्गाजी की यही इच्छा रही होगी। चाहते हुए भी मैं उस रक्त-पात को न रोक सकी, और यहाँ आना पड़ा। इस पर भी गोमती, तुम

वास्तविक दुर्गा को भुलाकर मुझे दुर्गा कहती हो ? मैं तो केवल होम आदि करनेवाली हूँ। और, यदि तुम मुझे ऐसा ही मानती हो तो मुझे बहन कहलवाने में ही आनंद है।"

गोमती ने कहा—"यदि ऐसा है, तो केवल अकेले में बहन कह सकूँगी। सबके सामने कहने में मुझे भय लगेगा।"

"उस दिन युद्ध में क्या हुआ था ?"

"दुर्गा ने जो चाहा, सो हुआ। अंतर्यामिनी होकर भी आप यह प्रश्न करती हैं, यह केवल आपकी महत्ता है।"

"फिर भी तुम्हारे मुँह से सुनना चाहती हूँ।"

गोमती ने जितना वृत्तांत सुन रक्खा था, सुनाया। अपने विवाह से संबंध रखनेवाली घटना नहीं कही।

कुमुद ने पूछा—"उस दिन तुम्हारी बारात आ रही थी, टीका कुशल-पूर्वक हो गया था या नहीं ?"

गोमती ने कोई उत्तर नहीं दिया। एक आह भर ली।

कुमुद ने कहा—"उधर के समाचार मुझे नहीं मिले। पूजार्चा म इतनी संलग्न रही कि पूछ ही नहीं पाया।"

रुद्ध स्वर में गोमती ने कहा—"आपसे कोई बात छिपी थोड़े ही रह सकती है। मैं क्या बतलाऊँ ?"

कुमुद ने सहानुभूति के साथ कहा—"तुम्हारे ही मुँह से सुनूँगी। सच मानो, मुझे नहीं मालूम।"

कुमुद ने उस अँधेरी कोठरी में यह नहीं देखा कि गोमती के कानों तक आँसू बह आए थे। प्रयत्न करके अपने को सँभालकर गोमती ने उत्तर दिया—"मेरा भाग्य खोटा है, इसमें दुर्गा के आशीर्वाद को क्यों दोष दें ?" अपनी बारात के दूल्हा से संबंध रखनेवाली शेष रण-कथा भी सुना दी। अंत में बोली—"घायल राजा पालकी में पड़े हुए थे। वह बंदनवारों के सामने ही रुक गए। मेरी

ओर देखते ही उनके घाव पुलकित हो उठे। सह न सके। थम न सके। जैसे तलवार टूटकर दो टूक हो जाती है, उसी तरह धराशायी हो गए। मैं पास भी न जा सकी।"

"फिर क्या हुआ?' कुमुद ने सहानुभूतिमयी आतुरता के साथ पूछा—"फिर क्या हुआ गोमती?"

एक निठुर ठाकुर पास आकर बुरी-भली बातें कहने लगा। किसी ने उसे लोचनसिंह के नाम से संबोधन किया था।" गोमती ने कहा।

"लोचनसिंह" कुमुद ने कुछ सोचकर कहा—"यह नाम मुझे भी मालूम है। उस दिन की लड़ाई से इस नाम का कुछ संबंध है। कहे जाओ बहन, आगे क्या हुआ?"

गोमती कहने लगी—"वह पत्थर का मनुष्य लोचनसिंह उन्हें ठुकरा देना चाहता था। मेरे मन में आया कि खड्ग लेकर उसे ललकारूँ और सिर काटकर फेक दूँ। इतने में घोड़े पर बैठे राजकुमार वहाँ आ गए।"

"राजकुमार!" ज़रा चकित होकर कुमुद बोली—"अच्छा फिर?"

उत्तर दिया—"राजकुमार आ गए। उन्होंनें धीरे से उनके घायल शरीर को अपने घोड़े पर कस लिया और अपने डेरे पर ले गए। उनका नाम भूल गई हूँ।"

"नाम कुंजरसिंह है।" कुमुद ने कहा, फिर तुरंत ज़रा उपेक्षा के साथ बोली—"कुछ भी नाम सही, फिर वे सब लोग कहाँ गए?"

"लोचनसिंह ने अपना घोड़ा आपके मकान के सामने रोक लिया।"

"मेरे घर के सामने?"

"हाँ, और काकाजू को पुकारा।"

"क्यों? अच्छा, फिर?"

"वह पूजा करना चाहता था, परंतु राजकुमार ने कहा—"आओ, मैं नहीं ठहरूँगा।" वह दुष्ट उन्हें अटकाए रखना चाहता था। फिर काकाजू के नाम से पुकार लगाई, तो कोई नहीं बोला। पड़ोस के पंडितजी ने कहा कि सब लोग दोपहर को ही कहीं चले गए। उसी समय मुझे भी मालूम हुआ कि काकाजू ने घर छोड़ दिया है।"

कुमुद ने ज़रा-सा खाँसा। एक क्षण बाद बोली—"फिर वे सब लोग पालर में ही बने रहे, या उसी रात चले गए?"

गोमती ने उत्तर दिया—"पंडितजी के जवाब देने पर राजकुमार घोड़े की लगाम हाथ में थामे वहीं थोड़ी देर खड़े रहे, परंतु पंडितजी घर से बाहर न निकले। डर गए थे। वह पाषाण-हृदय लोचनसिंह तब राजकुमार को वहाँ से जल्दी-जल्दी लिवा ले गया। सबेरे सुना राजा अपने दल के साथ दलीपनगर चले गए।"

कई क्षण बाद कुमुद ने पूछा—"दूल्हा का कुशल-समाचार सबेरे मिल गया था?"

ज़रा संकोच के साथ गोमती ने कहा—"दूसरे दिन ख़बर लगी थी कि राजकुमार, जिनका नाम आपने कुंजरसिंह बतलाया है, रात-भर मरहम-पट्टी करते और दवा देते रहे। इससे आगे और कुछ नहीं सुना। आप तो राजकुमार को जानती होंगी?"

"मैंने उनका वह नाम यों ही सुन लिया था।" कुमुद बोली—"अब सो जाओ, बहुत थकी हुई हो।"

"अभी तो नींद नहीं आ रही है, सो जाऊँगी। आप सोएँ।"

"मैं भी अभी उनींदी नहीं हुई हूँ। पालर का और क्या समाचार है?"

"गाँव सुनसान हो गया है। केवल चलने-फिरने से अशक्त लोग और थोड़े-से किसान वहाँ रह गए हैं। मुसलमानों की चढ़ाई होने-वाली है। सुनते हैं, वे लोग देश को उजाड़ देंगे, और उजड़ी हुई

भूमि को लोहू-लुहान कर देंगे। कुछ लोग कहते हैं, वे मंदिर का अपमान करने की भी चेष्टा करेंगे।"

क्षुब्ध स्वर में कुमुद ने कहा, मानो कई तार एक साथ झंकार मार गए हों "क्या सब क्षत्रिय उस समय पालर की झील या बेतवा की धार में डूबकर प्राण बचा ले जायँगे? क्या बड़नगर और दलीपनगर के हिंदू उस समय सोते ही रहेंगे?"

गोमती ज़रा भयभीत हो गई, पर एक क्षण बाद, दृढ़ता के साथ, बोली, यद्यपि कुछ लोगों ने वहाँ जाकर फरियाद भी की थी। और, सुनते हैं, दलीपनगर के राजा राजधानी छोड़कर पंचनद की ओर चले गए हैं।"

---

(१८)

राजा नायकसिंह अपने दल के साथ एक दिन पंचनद पहुँच गए।

पंचनद, जिसे पचनदा भी कहते हैं, बुंदेलखंड का एक विशेष स्थान है। यमुना, चंबल, सिंध, पहूज और कुमारी, ये पाँच नदियाँ उस जगह आकर मिली हैं। स्थान की विस्तृत भयानकता उसकी विशाल सुंदरता से होड़ लगाती है। बालू, पानी और हरियाली का यह संगम वैभव, भय और सौंदर्य के विचित्र मिश्रण की रचना करता है।

इस संगम के करीब एक गढ़ी थी। राजा उसी में जाकर ठहरे। संध्या के पहले ही डेरे पड़ गए।

आज तबियत कुछ ज़्यादा ख़राब थी, परंतु बातचीत करने का चाव अधिक था। कुंजरसिंह को बुलाकर पूछा—"लोचनसिंह कहाँ हैं?" और लोचनसिंह के उपस्थित होने पर प्रश्न किया—"कुंजरसिंह कहाँ हैं?"

जितने प्रमुख लोग गढ़ी में राजा के साथ आए थे, सब जानते थे कि राजा के साथ यहाँ आने में ग़लती की है। मार्ग से भटकी हुई इस दूर की गढ़ी में पहुँचकर किसी को भी हर्ष नहीं हुआ। केवल लोचनसिंह ने ठंडा पानी पीकर घोड़े की पीठ ठोकते-ठोकते सोचा कि आज रात-भर अच्छी तरह सोऊँगा। कालपी पंचनद से दूर नहीं थी। कालपी के फ़ौजदार से किसी तत्काल संकट की आशंका न थी। उन दिनों मिलाप करते-करते छुरी चल पड़ती थी, और छुरी चलते-चलते मिलाप हो जाता था। पंचनद दलीपनगर की सीमा के भीतर था। हकीम द्वारा फ़ौजदार की शांत वृत्ति का पता लग चुका था। और, दलीपनगर की सेना भी निर्बल न थी। जनार्दन मेल और लड़ाई, दोनो के लिये तैयार था। कुछ लोग सोचते थे कि दलीपनगर छोड़ आने में राज्य की हत्या का-सा काम किया, परंतु उस परिस्थिति में राजा की आज्ञा का उल्लंघन करना असंभव था। इसलिये ऐसे लोग पछतावा तो प्रकट न करते थे, परंतु राजा के लिये चिंतित दिखाई पड़ते थे। ऐसे लोगों में केवल जनार्दन कम-से-कम ऊपर से चिंतित नहीं जान पड़ता था।

सभी अगुओं के मन में एक ही बात थी—राजा की समाप्ति कब शीघ्रता-पूर्वक हो, और कब राजसत्ता किसी अच्छे आदमी के हाथ में सुव्यवस्था का संग्रह कर दे। केवल देवीसिंह राजा के निकट-वर्तियों में ऐसा था, जो भगवान् से राजा के स्वास्थ्य-लाभ के लिये दिन में एक-आध बार प्रार्थना कर लेता था।

षड्यंत्र ख़ूब सरगर्मी पर थे। बिना किसी लाज-संकोच के राजा के पलँग से चार हाथ के ही फ़ासले पर रचित षड्यंत्रों की काना-फूसी और षड्यंत्र-रचना की बहस होने लगी।

लोगों को यह दिखलाई पड़ रहा था कि सैनिकों का विश्वास लोचनसिंह के बल-विक्रम पर और जनार्दन की दक्षता तथा कुशलता

पर है। जनार्दन अपनी आर्थिक समर्थता और व्यवहार-पटुता के कारण पंचनद पर सेना के विश्वास का स्तंभ-सा हो गया। खुल्लमखुल्ला कोई रानी उसके ख़िलाफ़ कुछ नहीं कह रही थी। लोचनसिंह के पास न कोई षड्यंत्र था, और न कोई षड्यंत्रकारी दल। षड्यंत्र की सृष्टि के लायक़ कुंजरसिंह में न तो यथेष्ट मानसिक चपलता थी, और न किसी षड्यंत्र के प्रबल नायकत्व के लिये पूरी नैतिक हीनता। भीतर महलों में षड्यंत्र बनते और बिगड़ते थे। सुलझाई हुई उलझनें और उलझती जाती थीं, अच्छी-अच्छी योजनाएँ भी तैयार हो जाती थीं, परंतु उनके लिये योग्य संचालक की अटक थी।

दो दिन ठहरने के बाद बड़ी रानी ने कुंजरसिंह को बुलाकर प्रस्ताव किया कि दलीपनगर तुरंत लौट चलो। यह प्रस्ताव कथन में जितना सहज था, व्यवहार में उतना नहीं।

कुंजर ने कहा—"यह असंभव है। काकाजू की मर्ज़ी नहीं है। यदि हमने सैनिकों से कहा, और उन्होंने न माना, तो तिल धरने को भी स्थान न रहेगा?"

"लोचनसिंह से कहो कि मेरी आज्ञा है। राजा को तो इस समय भले-बुरे का चेत ही नहीं।"

"मैंने लोचनसिंह का रुख़ भी परख लिया है। उनके जी में किसी ने यह बात बिठला दी है कि महाराज इस स्थान को कदापि न छोड़ेंगे, और यहीं स्वस्थ हो जायँगे।"

"किसने?"

"हकीमजी ने।"

"आग़ा हैदर के लड़के ने?"

"हाँ, महाराज।"

"लोचनसिंह को बुला दो।" एक क्षण सोचकर फिर रानी बोलीं—"मत बुलाओ उस लट्ठ को। वह गँवार रक्त, तलवार और

सिर के सिवा हमारी सहायता की कोई और बात न कर सकेगा, कुंजरसिंह।"

"आज्ञा।"

"समय आ गया है।"

"यह तो मैं भी देख रहा हूँ।"

"तुम अंधे हो और अपाहिज भी।"

कुंजरसिंह कान तक लाल हो गया, परंतु चुप रहा। रानी बोलीं—"तुम्हारे साथ कोई नहीं दिखलाई देता, और मेरे पक्ष का भी इस जंगल में कोई नहीं। मुझे इसी समय दलीपनगर पहुँचा सकते हो?"

"प्रयत्न करता हूँ।" उत्तर मिला।

कुंजर वहाँ से जाने को हुआ ही था कि रामदयाल रोनी सूरत बनाए आया, बोला—"कक्कोजू—"

"हाँ, बोल, कह क्यों रुक गया?" रानी ने कुछ कठोरता के साथ पूछा।

कक्कोजू, रामदयाल ने कहा "जमनाजी से रज और गंगाजल मँगाने का हुकुम हुआ है। चलना होवै।"

"क्या दशा बहुत बिगड़ गई है?" रानी ने कंपित स्वर में पूछा।

"हाँ महाराज।" कहकर रामदयाल छोटी रानी के पास चला गया।

उसी समय जनार्दन वहाँ आया। रानी आड़ में हो गईं। उत्तर देनेवाली दासी, जिसे जवाबवाली कहते हैं, रानी के कहलवाने से बोली—"कहिए, महाराज का हाल अब कैसा है?"

"पहले से बहुत अच्छा है।" जनार्दन ने उत्तर दिया—"उन्हें खूब चेत है। परंतु अंत समय दूर नहीं मालूम होता। दीप-शिखा की अंतिम लौ की तरह वह जगमगाहट है। बार-बार देवीसिंह का

नाम ले रहे हैं। वह महाराज के पास ही बैठे हैं। दावात-क़लम मँगाई थी।"

कुंजरसिंह ऐसे हिला, जैसे किसी ने एकाएक झकझोर डाला हो। बोला—"दावात-क़लम किसलिये मँगाई थी?"

स्पष्टता के साथ जनार्दन ने जवाब दिया—"कदाचित् अपना अंतिम आदेश अंकित करना चाहते हैं। दावात-क़लम पहुँच गई है, काग़ज़ पर कुछ लिख भी चुके हों।"

"छोटी महारानी कहाँ हैं?" रानी ने तुरंत पुछवाया।

उत्तर दिया—"उन्हें, भी बुलवाया गया है। आप भी यथासंभव शीघ्र चलें।"

कुंजरसिंह सन्न होकर बैठ गया। जनार्दन चला गया।

---

(१६)

उसी समय पंचनद की छावनी में हकीम आग़ा हैदर आ गया। आते ही उसने जनार्दन से कहा—"यहाँ आकर बहुत बुरा किया। क्या राजा को मारने के लिये लाए थे?"

"नहीं" उनकी इच्छा उन्हें यहाँ ले आई। अब वह जा रहे हैं।"

"फिर दलीपनगर?"

"नहीं, गोलोक!"

"ऐसी जल्दी! उफ़्!"

"यह सब पीछे सोचिएगा। राजा के पास तुरंत चलिए।"

दोनो जा पहुँचे। लोचनसिंह दवा-दारू में व्यस्त था। उसने 'चनद पर आने के पश्चात् हर्ष-पूर्वक इस कर्तव्य को स्वीकार कर लिया। एक-एक दवा के बाँटने बनाने में उसे उतना ही आनंद होता था, जितना एक-एक युद्ध के लड़ने जीतने में होता होगा।

और, वह इस कार्य में इतना संलग्न था कि उसे इधर-उधर क्या हो रहा है, इसका कुछ भी चेत न था। इतना विश्वास उसे अवश्य था कि राजा का औषधोपचार सावधानी के साथ हो रहा है। देवीसिंह राजा के पास बैठा उनकी देख-भाल कर रहा था। छोटी रानी एक ओर पर्दे में बैठी हुई थीं।

संकेत में आग़ा हैदर ने अपने लड़के से राजा की दशा पूछी। उसने सिर हिलाकर निराशा-सूचक संकेत किया। आग़ा हैदर ने पास जाकर देखा। राजा क्षीण स्वर में बोले—"हकीमजी, कहाँ थे ?"

काँपते हुए गले से आग़ा हैदर ने कहा—"क़दमों में।"

"आज सब पीड़ा ख़त्म होती है, हकीमजी।" राजा सिसकते हुए बोले।

रोते हुए आग़ा हैदर ने कहा—"हुज़ूर की ऐसी अच्छी तबियत बहुत दिनों से नहीं देखी गई थी। आशा होती है।"

राजा ने हाथ हिलाकर सिर पर रख लिया।

"हकीमजी कालपी गए थे महाराज, वह अलीमर्दान को किसी गड्ढे में खपाने की चिंता में हैं।" लोचनसिंह ने राजा को शायद प्रसन्न करने के लिये कहा।

आग़ा हैदर ने हाथ जोड़कर लोचनसिंह को वर्जित किया।

"हकीमजी", लोचनसिंह ने धीरे से कहा—"क्षत्रिय न तो रण की मृत्यु से डरता है, और न घर की मृत्यु से।"

इतने में एक ओर पर्दे में बड़ी रानी भी आ बैठीं।

रामदयाल ने छोटी रानी के पास से आकर जनार्दन से ज़रा ज़ोर से कहा—"आप सब लोग बाहर हो जायँ। कक्कोजू दर्शन करना चाहती हैं।"

राजा ने यह सब वार्ता कुछ सुन ली, कुछ समझ ली। टूटे हुए स्वर में बोले—"तब सब लोग यही समझ रहे हैं कि मैं मरने को हूँ। कुंजरसिंह कहाँ हैं ?"

कुंजरसिंह तुरंत हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया। राजा की आँखों में आँसू आ गए, और गला रुँध गया। कुछ कहने को हुए, न कह पाए। कुंजरसिंह की आँखें भी डबडबा आईं।

जनार्दन इस समय बहुत सतर्क था, दृष्टि तुली हुई, और सारी देह कुछ करने के लिये सधी हुई। वह ऐसा जान पड़ता था जैसे किसी महत्त्व-पूर्ण नाटक का सूत्रधार हो। उसने लोचनसिंह की ओर देखते हुए कहा—"इस समय महाराज को बात करने में जितना कम कष्ट हो, हम अपना उतना ही बड़ा सौभाग्य समझें।"

लोचनसिंह ने कुंजरसिंह के पास जाकर कहा—"राजकुमार, ज़रा इधर आइए।" इच्छा विरुद्ध कुंजरसिंह दूसरी ओर, दो-तीन क़दम के फ़ासले पर, हट गया।

जनार्दन दावात-क़लम और काग़ज़ लेकर, राजा के पास जाकर झुक गया। राजा असाधारण चीत्कार के साथ बोले—"मुझे क्या तुम सबने पागल समझ लिया है?" और तुरंत अचेत हो गए। रामदयाल झपटकर राजा के पास आना चाहता था, लोचनसिंह ने रोक लिया।

कुंजरसिंह ने हकीम से कहा—"आप देख रहे हैं कि आपकी आँखों के सामने यह सब क्या हो रहा है?"

"मेरी समझ में कुछ नहीं आता।" हकीम ने आँखें मलते हुए कहा।

"यह दुधारा खाँड़ा भी आज किसी लो में आ गया है।" लोचनसिंह की ओर इंगित करके कुंजरसिंह ने दबे गले से कहा, और दृढ़ता-पूर्वक अपने पिता के पैताने जाकर खड़ा हो गया।

लोचनसिंह धीरे से बोला—'महाराज जिसे चाहेंगे, उसे लिख देंगे। किसी को उनसे अपनी माँग-चूँग नहीं करनी चाहिए।"

एक क्षण बाद राजा को होश आता देखकर जनार्दन ने ज़ोर से कहा—"क़लम-दावात मँगवाई थी, सो आ गई है। देवीसिंह के लिये आदेश हुआ, वह यहाँ उपस्थित हैं।"

"मुझे किसलिये ?" एक कोने से देवीसिंह ने पूछा।

जनार्दन ने आग्रह के ऊँचे स्वर में कहा—"अब आज्ञा हो जाय।"

राजा ने कुछ मुँह-ही-मुँह में कहा, परंतु सुनाई नहीं पड़ा!

जनार्दन ने मानो कुछ सुना हो। बोला—"बहुत अच्छा महाराज, यमुनाजी की रज और गंगाजल ये हैं।" वह सामग्री पास ही रक्खी थी।

रामदयाल ने छोटी रानी के पर्दे के पास से चिल्लाकर कहा—"हकीमजी, यहाँ जल्दी आइए।" हकीम राजा को छोड़कर नहीं गया। तब रामदयाल चिल्लाया—"कुंजरसिंह राजा, आप ही इधर तक चले आओ।"

जैसे किसी ने धकेल दिया हो, उसी तरह कुंजरसिंह छोटी रानी के पर्दे के पास पहुँचा। छोटी रानी ने सबके सुनने लायक स्वर में कहा—"भकुए बने खड़े क्या कर रहे हो ? तुम राजा के कुँवर हो, क्यों अपना हक़ मिटने देते हो, जाओ राजा के पास अपना हक लिखवा लो।"

लोचनसिंह बोला—"राजा जिसे देंगे, वही पावेगा। हक़ ज़बर-दस्ती नहीं लिखवाया जा सकता।"

कुंजरसिंह राजा के पलँग की ओर बढ़ा। इतने में जनार्दन ने कहा—'महाराज देवीसिंह का नाम ले रहे हैं। सुन लो चामुंडराया लोचनसिंह, सुन लो हकीमजी, सुन लो कुंजरसिंह राजा, सुन लो कक्कोजू," और सब चुप रहे।

लोचनसिंह बोला—"आप झूठ थोड़े ही कह रहे हैं।"

राजा ने वास्तव में देवीसिंह का नाम दो-तीन बार उच्चारण किया था। परंतु क्यों किया था, इस बात को सिवा जनार्दन के और कोई नहीं बतला सकता था।

जनार्दन ने और किसी ओर ध्यान दिए विना ही खूब चिल्लाकर राजा से कहा—"तो महाराज देवीसिंह को राज्य देते हैं ?"

राजा ने केवल "देवीसिंह" का नाम लेकर उत्तर दिया। और ज़रा देर तक सिर कँपाते रहे, ओठों पर कुछ अस्पष्ट शब्द हिले, परंतु सुनाई कुछ भी न पड़ा। और लोग के मन में संदेह जाग्रत हुआ हो, या न हुआ हो, परंतु लोचनसिंह के मन में कोई संशय न रहा।

जनार्दन ने राजा के हाथ में क़लम पकड़ाकर कहा—"तो लिख दीजिए इस कागज़ पर कि देवीसिंह राजा हुए।" राजा का हाथ अशक्त था। किंतु किसी क्रिया के लिये ज़रा हिल उठा। सबने देखा। जनार्दन ने तुरंत उस हिलते हुए हाथ को अपने हाथ में पकड़कर काग़ज़ पर लिखवा लिया—देवीसिंह राजा हुए। उसके नीचे राजा की सही भी करा ली।

जनार्दन ने देवीसिंह को तुरंत इशारे से पास बुला लिया। बोला—"महाराज अपने हाथ से तिलक भी कर दें।" और, गंगाजल से राजा के अँगूठे को भिगोकर अपने हाथ से हाथ थामे हुए जनार्दन ने देवीसिंह का मस्तक अभिषिक्त करा दिया। लोचनसिंह से कहा—"तोपें दगवा दो।"

हकीम बोला—"कालपी ख़बर पहुँचने में देर न लगेगी। इसी जगह चढ़ाई हो जायगी।"

"होवे।" जनार्दन वेग के साथ बोला—"थोड़ी देर में संसार-भर जान जायगा, अभिषेक गुपचुप नहीं होगा, खुल्लमखुल्ला होगा।"

लोचनसिंह बाहर चला गया।

रामदयाल चिल्लाया—"कक्कोजू की मर्ज़ी है कि यह सब जाल है। महाराज कुछ सुन या समझ नहीं सकते। राजा कुंजरसिंह महाराज हो सकते हैं, और किसी का हक़ नहीं है।"

बड़ी रानी ने कहलवाया, पहले भली भाँति जाँच कर ली जाय कि महाराज ने अपने चेत में यह आदेश लिखा है, या नहीं। व्यर्थ का बखेड़ा नहीं खड़ा करना चाहिए।

बड़ी रानी की ओर हाथ बाँधकर जनार्दन बोला—"बड़ी कक्कोजू के जानने में आवे कि राज्य कुँवर देवीसिंह को ही दिया गया है।"

इतने में राजा कुछ अधिक कंपित हुए। ज़रा ज़ोर से बोले—"कुंजर—सिंह।"

'मेरा नाम ले रहे हैं', कुंजरसिंह ने अब की बार चीख़कर कहा—"मुझे राज्य दे रहे हैं।"

जनार्दन ने कहा—"कभी नहीं, राजा अब अचेत हैं।"

राजा ने फिर अस्थिर कंठ से कहा—"देवीसिंह।"

"राज्य मुझे दिया है।" देवीसिंह कठोर स्वर में बोला।

कुंजरसिंह राजा के पास आ गया। बड़ी रानी ने निवारण करवाया। छोटी रानी ने बढ़ावा दिलवाया। रामदयाल कुंजरसिंह के पास आकर खड़ा हो गया।

"धायँ, धायँ, धायँ" उधर तोपों का शब्द हुआ।

"महाराज देवीसिंह की जय!" तुमुल स्वर में कोठी के बाहर सिपाही चिल्लाए।

इतने में राजा ने क्षीण स्वर में "कुंजरसिंह!" फिर कहा। कुंजरसिंह और रामदयाल ने सुना। शायद जनार्दन ने भी।

कुंजरसिंह बोला—"अब भी छल और धूर्तता करते ही चले जाओगे? मेरा नाम ले रहे हैं।"

"नहीं।" देवीसिंह ने कहा।

"नहीं।" जनार्दन बोला।

आग़ा हैदर चुपचाप एक कोने में खड़ा था।

छोटी रानी पर्दे से चिल्ला उठीं—"कायर, डरपोक, क्या राज्य

ऐसे लिया जाता है ?" पर्दा ज़ोर से हिला, मानो रानी सबके सामने किसी भयानक वेश में आनेवाली हैं। रामदयाल लपककर दरवाज़े पर जा डटा।

कुंजरसिंह ने तलवार खींच ली। इतने में लोचनसिंह आ गया। बोला—"यह क्या है कुंजरसिंह राजा ?"

"ये लोग मुझे अब अपने राज्य से वंचित करना चाहते हैं, दाऊजू। काकाजू ने अभी-अभी नाम लेकर मुझे राज्य दिया है।"

"तलवार म्यान में राजा।" लोचनसिंह ने कुंजरसिंह के पास जाकर, डपटकर कहा—"जो कुछ महाराज ने किया है, वह सब मेरे देखते-सुनते हुआ है।"

"धोखा है।" रामदयाल चिल्लाकर छोटी रानी के दरवाज़े पर डटे हुए बोला।

राजा ऊर्ध्व श्वास लेने लगे

हकीम गरजकर बोला—"महाराज को शांति के साथ परमधाम जाने दीजिए। अब एक-दो क्षण के और हैं, पीछे जिसे जो दिखाई दे, कर लेना।"

राजा की अवस्था ने उपस्थित लोगों के बढ़ते हुए क्रोध पर छाप-सी लगा दी।

राजा को भूमि पर शय्या दे दी गई। मुँह में गंगाजल डाल दिया गया।

तोपों और जय-जयकार के नाद में राजा नायकसिंह की संसार-यात्रा समाप्त हो गई।

---

(२०)

बहुत सपाटे के साथ सब लोग पंचनद से दलीपनगर लौट आए,

केवल कुंजरसिंह पीछे रह गया। राज्य-भर ने पुरानी रीति के अनुसार सूतक मनाया, बाल मुड़वाए, परंतु वास्तव में कोई दुःखी था या नहीं, यह बतलाना कठिन है।

असफल प्रयत्न के पीछे पड़ना बड़ी रानी की प्रकृति में न था। एक बार मनोरथ विफल होते ही पुनः प्रयत्न करना उनके मानसिक संगठन के बाहर की बात थी। छोटी रानी को देवीसिंह का राजतिलक बहुत बुरा लगा। वह सती नहीं हुई। यह देखकर और शायद देवीसिंह के मनाने पर बड़ी रानी भी सती नहीं हुईं।

जनार्दन प्रधान मंत्री घोषित कर दिया गया, और लोचनसिंह प्रधान सेनापति। इसी बीच में दिल्ली से जो समाचार अलीमर्दान को मिला, उससे उसकी बहुत-सी चिंताएँ दूर हो गईं। उसने दलीपनगर पर आक्रमण करना निश्चित कर लिया। यदि अलीमर्दान को वह समाचार कुछ दिन पहले मिल गया होता, तो शायद वह पंचनद पर ही युद्ध ठानने की चेष्टा करता। परंतु इसकी संभावना थी बहुत कम, क्योंकि बहुत दूर न होते हुए कालपी से पंचनद पर तोपों का घसीट ले जाना काफ़ी समय ले लेता।

अब कालपी में दलीपनगर के ऊपर चढ़ाई करने के लिये तैयारी होने लगी। दलीपनगर में इसकी ख़बरें आने लगीं।

थोड़े दिनों बाद वह सेना कालपी से चल पड़ी।

उधर दलीपनगर में भी ख़ूब तत्परता के साथ जनार्दन और लोचनसिंह द्वारा सैन्य-संगठन होने लगा। प्रजा में विश्वास का संचार हुआ। देवीसिंह इस तरह राजसिंहासन पर बैठने लगा, जैसे दरिद्रता या समाजिक स्थिति की लघुता ने कभी उनका संपर्क ही न किया हो।

उसी समय समाचार मिला कि कुंजरसिंह ने कुछ सरदारों को

साथ लेकर, सिंधुतटस्थ सिंहगढ़ पर क़ब्ज़ा करके विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया है। जनार्दन ने यह भी सुना कि छोटी रानी कुंजरसिंह को उभाड़ने और द्रव्य आदि से सहायता करने में कोई संकोच नहीं कर रही हैं। इस पर भी नए राजा ने उनके साथ कोई बुरा बर्ताव करने का लक्षण नहीं दिखलाया।

परंतु जनार्दन से सहन नहीं हुआ। बुलाकर रामदयाल से कहा—"तुम्हारी सब चालें हमें विदित हैं। कुंजरसिंह राजा अपने किए का फल पाएँगे। परंतु तुम उनसे अपना कोई संबंध मत रक्खो, नहीं तो किसी दिन सिर से हाथ धो बैठोगे।"

"मैंने क्या किया है पंडितजी ?" रामदयाल ने पूछा।

"तुमने कुंजरसिंह के पास रुपया-पैसा भेजा है। तुम यहाँ के भेद कुंजरसिंह के पास भेजते रहते हो।"

"मैंने यह कुछ भी नहीं किया।"

"छोटी रानी और तुम यह सब नहीं कर रहे हो ?"

"वह करती होंगी, महारानी हैं, मैं तो नौकर-चाकर हूँ।"

खाल खिंचवाकर भुस भरवा दिया जायगा, जो किसी शेख़ी में भूले हो।"

"किसकी खाल ? रानी की ?"

मैंने यह तो नहीं कहा, परंतु यदि रानी पृथ्वी को सिर पर उठाएँगी, तो क्या वह न्याय से बच जायँगी ? धैर्य की सीमा समाप्त हो चुकी है।"

"मेरा कोई अपराध नहीं।" कहकर रामदयाल चला गया।

जनार्दन दूसरे कामों में लग गया, और इस वार्तालाप को भूल गया। ख़बर लगी कि अलीमर्दान सेना लेकर राज्य की सीमा के पास से होता हुआ बढ़ता आ रहा है, परंतु सीमा के भीतर प्रवेश नहीं किया, और न राज्य की किसी प्रजा को सताया ही

है। शायद कहीं और जा रहा हो। कम-से-कम अपनी तरफ़ से कारण न उपस्थित किया जाय। ऐसी दशा में उससे लड़ने के लिये सेना भेजना राजा देवीसिंह ने उचित नहीं समझा, परंतु अपने यहाँ चौकसी रक्खी। कुंजरसिंह को सिंहगढ़ से निकाल भगाने के लिये कुछ सेना उस ओर रवाना कर दी। कुंजरसिंह अपनी छोटी-सी सेना के साथ सिंहगढ़ में घेर लिया गया। सिंधु-नदी साँप की तरह कतराती हुई इस क़िले के नीचे से बहती चली गई है। नदी के उस ओर भयानक जंगल था। क़िले में खाद्य सामग्री थोड़े दिनों के लिये थी। घेरा प्रचंडता और निष्ठुरता के साथ पड़ा। क़िले से बाहर निकलकर लड़ना आत्मघात से भी अधिक बुरा था। क़िले की दीवारों पर तोपें निरंतर गोले फेंकने लगीं। बचने का कोई उपाय न देखकर जो कुछ उसे अनिवार्य दिखलाई पड़ा, वही निश्चय किया, अर्थात् लड़ते-लड़ते मर जाना।

---

(२१)

मौक़ा मिलते ही रामदयाल ने छोटी रानी को जनार्दन द्वारा अपमानित होने की बात सुना दी। रानी के क्रोध का पार न रहा। बोलीं—"मैं तब अन्न-जल ग्रहण करूँगी, जब जनार्दन का सिर काटकर मेरे पास ले आवेगा।"

रामदयाल को विस्मय हुआ। वह रानी के हठी स्वभाव को जानता था। उसकी यह कल्पना न थी कि बात इतनी बढ़ जायगी। बोला—"अभी काकाजू की तेरहीं नहीं हुई है; जब हो जायगी, तब इस काम के होने में देर नहीं लगेगी।"

"तेरहीं होने के दो-तीन दिन रह गए हैं। मैं तब तक बिना अन्न-जल के रहूँगी।"

"ऐसा न करें महाराज, यदि शरीर को कुछ क्षति पहुँची, तो जो कुछ थोड़ी-सी आशा है, वह भी नष्ट हो जायगी।"

"यदि जनार्दन मार डाला गया, तो मानो राज्य ही प्राप्त हो गया। उसी के प्रपंच से आज मैं इस दशा को पहुँची हूँ। उसी के षड्यंत्रों से राज्याधिकार से वर्जित रही, उसी की धूर्तता के कारण सती न हो पाई। बोल, तू उसका सिर काट सकेगा ?"

"मैं आज्ञा-पालन से कभी न हिचकूँगा।" रामदयाल ने उत्तर दिया—"फिर चाहे चरणों की सेवा में मुझे अपने प्राण भले ही उत्सर्ग करने पड़े।"

"तब ठीक है," रानी ने ज़रा संतोष के साथ कहा—"परंतु अन्न-जल तभी ग्रहण करूँगी।"

रामदयाल ने विषयांतर के प्रयोजन से कहा—"कालपी से अलीमर्दान की सेना आ रही है।"

"आती होगी; मुझे उसकी कोई चिंता नहीं।"

"इधर से सिंहगढ़ की ओर सेना भेजी गई है। बहुत-सी तोपें भी गई हैं। जनार्दन को इस समय अलीमर्दान इतना बड़ा शत्रु नहीं जान पड़ रहा है जितना कुंजरसिंह राजा।"

रानी ने चकित होकर पूछा—"कुंजरसिंह को समाचार भेज दिया या नहीं ?"

उत्तर दिया—"कड़ा पहरा बिठलाया गया है। गुप्तचर वेश बदलकर घूम रहे हैं। वहाँ जाने के लिये मेरे सिवा और कोई नहीं है।"

रानी बोलीं—"तुम्हारे चले जाने से यहाँ मेरे निकट कोई विश्वस्त आदमी नहीं रहेगा। तुम किसी तरह उनके पास यह समाचार पहुँचा दो कि सिंहगढ़ की रक्षा के लिये अधिक मनुष्य एकत्र कर लो, तब तक मैं अन्य सरदारों को ठीक करती हूँ।"

"परंतु दूसरा काम भी मेरे सुपुर्द किया गया है।" रामदयाल ने बनावटी संकोच के साथ कहा।

छोटी रानी गए-गुज़रे पक्ष के लिये हार्दिक अभिलाषा तक का बलिदान कर डालनेवालों के स्वभाव की थीं। बोलीं—"अच्छा, जनार्दन का शीश काटने के लिये एक सप्ताह का समय देती हूँ। एक सप्ताह के पश्चात् मेरा व्रत आरंभ हो जायगा। अभी स्थगित किए देती हूँ। जल्दी कर।"

सिर खुजलाते हुए अत्यंत दीनता-पूर्वक रामदयाल ने कहा—"सेना को सिंहगढ़ की ओर गए हुए देर हो गई है। बहुत तेज़ घोड़े की सवारी से ही इस सेना से पहले सिंहगढ़ पहुँचा जा सकता है। इधर जनार्दन की हम लोगों पर बड़ी पैनी आँख है। कोई अन्य विश्वसनीय आदमी हाथ में है नहीं।"

"अच्छा, मैं पुरुष-वेश में सिंहगढ़ जाती हूँ।" रानी ने तमककर कठिनाइयों का निराकरण किया—"देखें, मेरा कोई क्या करता है?" परंतु धीरे से रामदयाल ने कहा—"महाराज, इस तरह अपने महल को छोड़कर स्वयं देश-निष्कासित होने से कुंजरसिंह राजा को कोई सहायता आपके द्वारा न मिलेगी, और निश्चित स्थान से अनिश्चित स्थान में भटकने की नई कठिनाई का भी सामना करना पड़ेगा।"

रानी की आँख से चिनगारी छूट पड़ी। "मैं दलीपनगर के इस बिल में चूहे की मौत नहीं मरूँगी।" रानी ने कहा—"बड़ी की तरह नहीं हूँ कि ऐरों-ग़ैरों का उस पवित्र सिंहासन पर बैठना सह लूँ। घोड़ा तैयार करवा। हथियार और कवच ला।"

रामदयाल आज्ञा-पालन के लिये चला, फिर लौटकर, हाथ बाँधकर खड़ा हो गया।

रानी झपटकर बोलीं—"क्या मैं ही तेरी खाल खींचूँ?

जानता है, क्षत्रिय कन्या हूँ, अपने हाथ से भी घोड़े पर ज़ीन कस सकती हूँ।"

"महाराजा", रामदयाल बड़बड़ाया।

रानी ने अपने कोषागार से तलवार, ढाल और दो पिस्तौलें निकाल लीं। मुस्किराकर कहा—जैसे सावन की अँधेरी रात में बादलों के भीतर बिजली की एक रेखा थिरक गई हो—"तुझे हथियार उठा लाने का प्रयत्न न करना पड़ेगा। घोड़ा कस सकेगा?"

'महाराज", रामदयाल ने कंपित स्वर में कहा—"मैं भी साथ चलूँगा। यदि सर्वनाश ही होना है, तो हो। नहीं तो पीछे मेरी लाश को किसी घूरे पर गीध और गीदड़ नोचेंगे।"

रानी थककर चौकी की तकिया के सहारे बैठ गईं।

एक क्षण बाद पूछा—"बोल, क्या कहता है?"

"एक उपाय है। आज्ञा हो, तो निवेदन करूँ?"

"कहता क्यों नहीं मूर्ख। क्या ताम्रपत्र पर खुदवाकर आज्ञा दूँ?"

रामदयाल ने स्थिरता के साथ उत्तर दिया—"अलीमर्दान की सेना दलीपनगर पर आक्रमण करने आ रही है। अभी दूर है, परंतु थोड़े दिन में अवश्य ही निकट आ जायगी। जनार्दन उस सेना से युद्ध करने की तैयारी कर चुका है। लड़ाई अवश्य होगी। संधि के लिये कोई गुंजाइश नहीं रही। हो भी, तो कोई चिंता नहीं।"

"यह सब क्या पहेली है रामदयाल?" रानी ने झुँझलाकर पूछा—"सीधी तरह कह डाल, जो कुछ कहना हो।"

रामदयाल ने उत्तर दिया—"अन्नदाता, अलीमर्दान ने अपने राज्य का कुछ नहीं बिगाड़ा था। लोचनसिंह दाऊजी ने नाहक़ उसकी फ़ौज के एक सरदार को मार डाला। यदि वह उसका बदला लेने के लिये आ रहा है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। मंदिर और

दुर्गाजी के अपमान की बात बिलकुल बनावटी है। अलीमर्दान को केवल रुपए से ग़रज़ है।"

रानी उठ खड़ी हुईं। आँखें जल रही थीं, परंतु धीमे स्वर में बोलीं—"देख रामदयाल, यदि तू पागल हो गया है, तो तेरी कोई दवा-दारू न होगी। मैं एक ही वार में तेरा सब रोग बहा दूँगी। जनार्दन का मद दूसरे वार में शांत हो जायगा; फिर यदि यह राज्य अलीमर्दान को मर्द डाले, तो चिंता नहीं, और यदि वह डसे, तो भी चिंता नहीं। यदि तेरी बात समाप्त हो गई हो, और तू अचेत न हो, तो तुरंत घोड़ा कस ले।"

रामदयाल वहाँ से नहीं टला। शीघ्रता-पूर्वक बोला—"कई बार दिल्ली के बादशाहों का साथ इस राज्य ने दिया है। अब की बार दिल्ली के सरदार से यदि सहायता ली जाय, तो क्या बुराई है?"

रानी बैठ गईं, सोचने लगीं। सोचती रहीं।

रामदयाल बीच में बोला—"अलीमर्दान से बड़नगरवाले नहीं लड़ रहे हैं, बिराटा का दाँगी राजा नहीं लड़ रहा है, दलीपनगर को ही क्या पड़ी है, जो व्यर्थ का बैर बिसावे? उसकी सहायता से यदि आप या कुंजरसिंह राजा सिंहासन पा सकें, तो कोई अनुचित बात नहीं।"

रानी ने थोड़ी देर में, बहुत थके हुए स्वर में, कहा—"तब कुंजरसिंह के पास न जाकर अलीमर्दान के पास जा। मेरी राखी लेता जा। यदि वह मंदिर तोड़ने के लिये आया हो, तो विना कोई बातचीत किए तुरत लौट आना। फिर मुझे सिवा जनार्दन के सिर के और कुछ न चाहिए। उस सिर को घूरे पर फेककर सती हो जाऊँगी।"

---

(२२)

कुछ दिन पीछे बिराटा में भी ख़बर पहुँची कि कालपी के सूबेदार अलीमर्दान की सेना पालर में पहुँच गई है। मंदिर तोड़कर नष्ट कर दिया है, और कुमुद को लक्ष्य करके दलीपनगर पर आक्रमण करनेवाली है। यह समाचार वहाँ पहले ही पहुँच गया था कि दलीपनगर का राज्य किसी एक अप्रसिद्ध, दरिद्र ठाकुर देवीसिंह को मिल गया है। किस तरह मिला, यह बात भी नाना रूप धारण करके वहाँ पहुँची थी।

बिराटा छोटा-सा राज्य था, परंतु वहाँ का राजा सबदलसिंह सावधान और दिलेर आदमी था। उसे मालूम था कि इस चढ़ाई का कारण मंदिर की मूर्ति और कदाचित् कुमुद है। उसे वह सुरक्षित रक्खे हुए था। जब उसके पड़ोस में होकर अलीमर्दान की सेना निकली, तब उसने कोई रोक-टोक नहीं की, बल्कि ख़ातिर से पेश आया, जिसमें अलीमर्दान को कोई संदेह न हो।

कुमुद की पूजा बाहर से बिलकुल रुक गई। यदि कभी-कभी लुके-छिपे हो भी जाती थी, तो बड़ी सावधानी के साथ। परंतु बिराटा-वालों की पूजा बढ़ गई। बिराटा-निवासी किसी आनेवाली विपद् के निवारण के लिये भक्ति के साथ उस पूजा में रत रहने लगे।

इधर-उधर के समाचार कुमुद को दिन में बहुत कम मिलते थे। रात को नरपतिसिंह से जो कुछ मालूम होता था, उसमें सांसारिक समाचारों का समावेश बहुत कम रहता था। आध्यात्मिक—अर्थात् पूजा-संबंधी—विषय उनके भोजन और निद्रा के बीच का स्वल्प समय ले लेते थे।

उस दिन जो कुछ गोमती ने सुना, उससे उसकी विचित्र दशा हो गई। वह कभी आकाश की ओर देखती, कभी गजगामिनी गूढ़ धार की ओर और कभी दूसरे किनारे के निर्जन, सघन बन

की ओर देख-देखकर कुमुद से कुछ कहना चाहती थी। पूजा और पुजारियों की भीड़ के मारे दिन में अवसर न मिला। दोनो रात गए अपनी कोठरी में चली गईं। कुमुद को विश्राम की ओर प्रवृत्त होते देखकर गोमती ने कहा—"क्या नींद आ रही है ?"

"बड़ी क्लांत हूँ गोमती। आजकल काम के मारे जी बेचैन हो जाता है। मूर्ति से वरदान न माँगकर लोग मेरे सामने हाथ फैलाते हैं।"

"क्योंकि लोग उसे पा जाते हैं।" प्रफुल्ल गोमती बोली।

उदास स्वर में कुमुद ने कहा—"यह मेरी शक्ति के बाहर है। मैं तो दुर्गा से केवल प्रार्थना करती हूँ, स्वयं किसी को कुछ नहीं दे सकती। जो इससे प्रतिकूल विश्वास करते हैं, वे अपने साथ अन्याय और मेरे साथ क्रूरता करते है।"

इस पर गोमती ज़रा सहम गई। कुछ क्षण बाद उसाँस लेकर बोली—"उधर के समाचार सुने हैं ? युग-परिवर्तन-सा हुआ है।"

"क्या हुआ है गोमती ?" कुमुद ने ज़रा रुचि दिखलाते हुए पूछा।

"दलीपनगर के राजा नायकसिंह का देहांत हो गया है।" उत्तर मिला।

"अब राजा कौन हुआ है ? युवराज को गद्दी मिली होगी।" उठती हुई उत्सुकता को स्वयं शांत करके कुमुद ने पूछा।

"सो नहीं हुआ।" संयत आवेश के साथ गोमती बोली—"राजकुमार को नहीं, दूसरों को राजा राज्य देकर मरे हैं।"

बड़े कौतूहल के साथ कुमुद ने प्रश्न किया—"किसको गोमती ? किसको ?"

गोमती कुछ कहना चाहती थी, न कह सकी।

कुमुद ने उत्तर की प्रतीक्षा किए विना कहा—"राजकुमार ने ऐसा

क्या किया होगा ? उन्हें राजा ने क्यों राज्य नहीं दिया ? वह तो राज्य के उपयुक्त मालूम होते थे, और दूसरे को किसको राज्य दे दिया होगा। समाचार भ्रम-मूलक जान पड़ता है गोमती।"

"देवी का वरदान ख़ाली नहीं जाता।" गोमती ने कहा— "देवी की पूजा रीती नहीं पड़ती।"

"तुमने जो कुछ सुना हो, मुझे सविस्तर बतलाओ।" कुमुद ने मुक्त उत्सुकता के साथ कहा।

गोमती चुप रही, जैसे किसी ने उसका गला पकड़ लिया हो।

थोड़ी देर बाद बोली—"राजकुमार को मैंने भी देखा है। ऐसी महत्ता, इतनी दया दूसरों में कम देखी जाती है। राजा उन्हें चाहते भी थे। वह चाहने योग्य हैं भी।"

कुमुद ने आग्रह-पूर्वक पूछा—"तब बतलातीं क्यों नहीं गोमती, राजा कौन हुआ ?"

उसने उत्तर दिया—"जिसने उस दिन पालर की लड़ाई में राजा के प्राण बचाने के लिये अपने शरीर को लगभग कटवा दिया था।"

कुमुद ने अनसुनी-सी करके कहा—"राजकुमार का क्या दोष समझा गया ? इस कृति का मूल-कारण राजा का पागलपन न समझा जाय, तो क्या समझा जाय ?"

"पागलपन नहीं था जीजी !" गोमती ने दृढ़ता के साथ कहा।

इस नए संबोधन से कुमुद बहुत संतुष्ट नहीं हुई। परंतु उसी सहज मृदुल स्वर में बोली—"तो क्या था, गोमती ?"

"राजकुमार दासी से उत्पन्न हैं, इसलिये उन्हें राज्य नहीं मिला।" गोमती ने स्वाभाविक गति से उत्तर दिया।

"झूठ, झूठ है गोमती।" क्षुब्ध स्वर में कुमुद ने कहा—"लोचन-सिंह-सदृश पुरुष झूठ नहीं बोल सकते।"

"वह निष्ठुर, क्रूर ठाकुर।" गोमती के मुँह से निकल पड़ा—"उसने क्या कहा था ?" कुमुद कुछ देर तक चुप रही। उसके स्वर ने कुछ क्षण बाद फिर वही कोमलता धारण कर ली।

बोली—"तुम्हें कैसे मालूम गोमती ?"

गोमती ने इसके उत्तर में कुंजरसिंह की उत्पत्ति की कथा सुना दी।

लंबी उसाँस लेकर कुमुद ने पूछा—"कौन राजा हुआ गोमती ?"

गोमती ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—"मैंने बतलाया था, जिन्होंने उस दिन राजा के प्राणों की रक्षा की थी।"

कुमुद ने बिस्तर से उठकर विस्मय-पूर्वक कहा—"तुम्हारे दूल्हा ?" गोमती ने कुछ नहीं कहा।

---

(२३)

गाँव के जो स्त्री-पुरुष बिराटा की टौरिया (अब उस स्थान को इसी नाम से पुकारना चाहिए) पर आते थे, उनके साथ कुमुद की बातचीत वरदानों और तत्संबंधी विषयों के अंतर्गत अधिक होती थी। अन्य विषयों की बातचीत सुनने के लिये वह कभी-कभी उत्कंठित हो जाती थी। परंतु पूजक और भक्त लोग ऐसे विषयों की चर्चा उसके सामने नहीं करते थे। पूजक और पूज्य के बीच में श्रद्धा ने जो अंतर उपस्थित कर रक्खा था, वह कुमुद को असह्य हो उठा, किंतु वह ऐसी अधीर न थी कि उसका आतुरता के साथ उल्लंघन कर सकती।

कुंजरसिंह के विद्रोह और अलीमर्दान की अवश्यंभावी चढ़ाई का समाचार यथासमय टौरिया पर पहुँचा। गोमती ऐसे सब समाचारों को जासूसों की तरह खोद निकालने में निमग्न थी।

दो-एक दिन से गोमती कुमुद को किसी उदासी में, किसी अस-

मंजस में उलझी हुई-सी देख रही थी। रात को उन दिनों कोई बात नहीं हुई। गोमती को संदेह हुआ कि कहीं कुंजरसिंह के उत्तराधिकार को दलित समझकर देवी ने दूसरों पर स्वत्व-भंजन और अनुचित अपहरण के आरोप की कल्पना न की हो। कुंजरसिंह के विद्रोह और अलीमर्दान के आक्रमण में अपनी बात कहने के लायक़ सामग्री पाकर रात्रि के आगमन के लिये व्यग्र हो उठी।

गोमती को उस दिन जान पड़ा कि सूर्यदेव बहुत मचल-मचलकर अस्ताचल गए, अंधकार ने प्रकाश को घोर लड़ाइयों के बाद दबा पाया, और उसके अभाग्य से कुमुद लेटने की कोठरी में बड़ा विलंब करके आई।

गोमती ने तुरंत वार्तालाप आरंभ किया।

कुमुद से पूछा—"आज का कुछ समाचार आपने सुना है?"

उसने कहा—"मुझे पूजन से अवकाश ही नहीं मिलता।"

स्वर में कोई क्षोभ न था, परंतु कोमल होने पर भी उसमें संगीत की मंजुलता न थी—जैसे कोयल ने दूर, किसी सघन वन में, वायु के झोंकों की गति के प्रतिकूल, कूक लगाई हो।

"उस दिन मैंने कुमार कुंजरसिंह के विषय में जैसा सुना था, बतलाया था। राज्य न मिलने के कारण असंतुष्ट होकर उन्होंने एक बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।"

एक क्षण के लिये कुमुद की देह थर्रा गई। परंतु उसने अपने सहज स्वर में उत्सुकता-ज्ञापन न करते हुए पूछा—"क्या सुना है गोमती आज?"

"मैंने यह सुना है" गोमती ने उत्तर दिया—"कि दासी-पुत्र कुंजरसिंह ने राज्य-विद्रोह किया है। सिंहगढ़ पर अनधिकार चेष्टा से दख़ल कर लिया है, और इस अनुचित, अधर्म-पूर्ण युद्ध में मनुष्यों के सिर काट और कटवा रहे हैं। छोटी रानी, जो मृत राजा को

विष देकर मार डालना चाहती थीं, उनका साथ दे रही हैं। गृह-कलह की ऐसी आग दोनो ने मिलकर सुलगा दी है कि दलीपनगर का राज्य राख में मिल जाने ही को है।"

कुमुद के हृदय से एक उष्ण उसाँस निकली।

गोमती कहती गई—"इधर कालपी के मुसलमान सूबेदार ने चढ़ाई कर दी है। वह अपने बिराटा के पास से होकर आजकल में ही निकलनेवाला है। उसका प्रयोजन पालर के मंदिर को विध्वंस करने का है। उसने आपके विषय में जो वासना प्रकट की है, उसे कहने से मेरी जीभ के खंड-खंड हो जायँगे।"

अंतिम बात सुनकर कुमुद क्या कहती है, इसकी प्रतीक्षा एक क्षण करने के बाद गोमती ने फिर कहा—"गृह-कलह, जो कुमार कुंजरसिंह ने खड़ी कर दी है, कदाचित् इस अलीमर्दान के मुँह मोड़ने में दलीप-नगर -राज्य को कुंठित कर दे। प्रार्थना है, आप नए राजा को ऐसा अदमनीय बल दें कि नए महाराज कुंजरसिंह के विद्रोह को कुचलकर अलीमर्दान की अधर्म-कुचेष्टा को नष्ट-भ्रष्ट करने में समर्थ हों।"

कुमुद देर तक कुछ सोचती रही। थके हुए, कुछ काँपते हुए, बारीक स्वर में बोली—"गोमती, सो जाओ, फिर कभी बात करूँगी। नींद आ रही है।"

परंतु भक्त का हठ चढ़ चुका था। गोमती बोली—"नहीं देवी, आज वरदान देना होगा, जिसमें कोई अनिष्ट न हो। यदि कहीं आपने समझ लिया कि कुंजरसिंह का पक्ष न्याय-संगत है, तो दलीपनगर का, संसार-भर का, सर्वनाश हो जायगा। यदि दलीपनगर के धर्मा-नुमोदित महाराज कुंजरसिंह से हार गए, यदि अलीमर्दान ने ऐसी अव्यवस्थित अवस्था में राज्य पाया, तो आपके मंदिर का क्या होगा? धर्म का क्या होगा? अन्य राजा अपनी तर्जनी भी मंदिर की रक्षा में न उठावेंगे। बिराटा-राज्य में इतनी शक्ति नहीं

कि अलीमर्दान का मर्दन कर सके। इसलिये जननी, रक्षा करो, बचाओ।"

गोमती कुमुद के पैरों से लिपट गई, और आँसुओं से कुमुद के पैर भिगो दिए।

कुमुद ने कठिनाई से उसे छुड़ाकर अपने पास बिठला लिया। सिर पर हाथ फेरकर बोली—"क्या चाहती हो गोमती? जो कुछ कहोगी, उसके लिये माता दुर्गा से प्रार्थना करूँगी। यह निश्चय जानो कि माता का मंदिर भ्रष्ट न होने पावेगा। उसकी रक्षा भगवती करेंगी।"

"तो मैं यह वरदान चाहती हूँ", गोमती ने अँधेरे में हाथ जोड़कर कहा—"यह भीख माँगती हूँ कि कुंजरसिंह का नाश हो, अलीमर्दान मर्दित हो, और दलीपनगर के महाराज की जय हो।"

ये शब्द उस कोठरी में गूँज गए; कल-कल शब्दकारिणी बेतवा की लहरावली पर उतरा उठे। कुमुद को उस कोठरी में एक क्षण के लिये एक चमक-सी जान पड़ी और शून्य गगन आंदोलित-सा।

कुमुद ने कुछ समय पश्चात् शांत, स्थिर स्वर में कहा—"यह न होगी गोमती, परंतु मंदिर की रक्षा होगी, और अलीमर्दान का मर्दन होगा, इसमें कोई संदेह नहीं।"

"यह वरदान नहीं है," गोमती ने प्रखर स्वर में कहा—यह मेरे लिये अभिशाप है देवी। मैं इस समय, इस तमोमय भवन में, इस बेतवा के कोलाहल के बीच चरणों में अपना मस्तक काटकर अर्पण करूँगी।"

कुमुद ने देखा, गोमती ने अपनी कमर से कुछ निकाला।

कुमुद ने कहा—"क्या करती हो? ऐसा मत करना।"

"भक्त के कटे हुए सिर पर ही दुर्गा का अधिकार है, अन्यथा नहीं। वरदान दीजिए या सिर लीजिए।"

"मैं बतलाती हूँ। ठहरो।" कुमुद ने कहा, और कुछ क्षण तक कुछ सोचती रही।

फिर दृढ़ता-पूर्वक बोली—"तुम्हारे राजा का राज्य स्थिर रहेगा। मंदिर बचेगा, और अलीमर्दान की जय न होगी। तुम्हें इससे अधिक और क्या चाहिए?"

गोमती संतुष्ट हो गई, फिर पैर पकड़ लिए। कुमुद ने उसे धीरे से हटाकर रुखाई के स्वर में कहा—"जाओ, सोओ। भविष्य में कभी फिर उस राजकुमार का वर्णन करोगी, तो अच्छा न होगा।"

गोमती चुपचाप जा लेटी।

---

(२४)

अलीमर्दान एक बड़ी संख्या में सेना लिए हुए पालर जा पहुँचा। उसे अपने पड़ाव के लिये वहाँ से बढ़कर अच्छा स्थान मालूम न था। घोड़े के लिये पानी और चारा, दोनो का सुबीता था, तथा उसी स्थान पर दुर्गा का मंदिर और पुजारिन का घर भी था।

बड़नगर के राजा को अलीमर्दान ने आश्वासन दे दिया था कि उनकी प्रजा के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न किया जायगा, और न मंदिर को नष्ट। दलीपनगर के राजा को दंड देना, राज्य-च्युत करके हलवाहे-का-हलवाहा कर देना ही सिर्फ़ मेरी मंशा है।

दलीपनगर और बड़नगर वर्षों से दिल्ली के मातहत राज्य थे, परंतु परस्पर स्वतंत्र थे। उनकी दिल्ली की मातहती भी दिल्ली के बल के हिसाब से घटती-बढ़ती या तिरोहित होती रहती थी। इस समय इनमें से कोई भी दिल्ली के प्रति व्यावहारिक रूप में अपनी अधीनता प्रकट नहीं कर रहा था; लेकिन खुल्लमखुल्ला विरोध भी न था। दिल्ली के बड़े कर्मचारियों या सेना-नायकों से उनकी इन

दिनों कोई घोषित लड़ाई न थी। नाम-मात्र की भी पराधीनता से बच निकलने के अवसर की ताक में अवश्य थे, परंतु इस समय दलीपनगर का पक्ष लेकर अलीमर्दान से युद्ध छेड़ बैठना समयानुकूल नहीं समझा गया।

दलीपनगर दुविधा में था। एक ओर सिंहगढ़ का घेरा, दूसरी ओर अलीमर्दान; घर में छोटी रानी का भय और पूर्व-दुर्व्यवस्था से राज्य को निकालकर वर्तमान में सुसंगठन का आयोजन।

इसीलिये पालर तक पहुँच जाने में अलीमर्दान की रोक-टोक नहीं की गई शायद रास्ते में बिराटा-सदृश छोटे-छोटे रजवाड़े कुछ विघ्न उपस्थित कर दें, परंतु यह कल्पना सफल न हुई।

अलीमर्दान जब पालर पहुँचा, उसे वहाँ सिवा किसानों के कोई नहीं मिला।

मंदिर का निरीक्षण करने गया। साथ में उसका एक सरदार था। अलीमर्दान ने सरदार से कहा—"मंदिर तो बहुत छोटा है कालेख़ाँ। मैंने बहुत बड़े-बड़े मंदिर देखे हैं। क्या इसी के ऊपर उन लोगों को इतना नाज़ था?"

हुज़ूर, इस जगह को उन लोगों ने अपनी नाक बना रक्खा है। पुजारिन कहीं भाग गई होगी, मगर पता लग जायगा। बुंदेलखंडी लोग भागते भी हैं, तो घर छोड़कर दूर नहीं जाते।"

"तुम्हारे साथ किस जगह लोचनसिंह लड़ा था?"

कालेख़ाँ ने स्थान बतलाकर कहा—"इस जगह हुज़ूर।"

"और वह कहाँ थी?"

लड़ाई के समय कुमुद जिस स्थान पर अपने पिता के साथ कुंजरसिंह की अभिभावता में खड़ी रही थी, वह स्थान भी अलीमर्दान को बतलाया गया।

यह सब देख-भालकर और आस-पास के रास्ते, छिपाव और

आक्रमण के स्थानों की परीक्षा करके संध्या के पहले अलीमर्दान कालेख़ाँ को साथ लेकर झील पर गया।

चारो ओर पहाड़ों से घिरी हुई झील के पूर्वोत्तरीय किनारे पर, पहाड़ी से सटा हुआ, नीचे की ओर, पालर गाँव। उसी किनारे के ऊपरी भाग पर जाकर अलीमर्दान कालेख़ाँ के साथ एक चट्टान पर बैठ गया।

झील में लहरें उठ-उठकर बैठ रही थीं, और सूर्य की किरणों का एक अनंत भांडार-सा प्रतीत हो रहा था। जैसे स्वर्ण की खानें खुल पड़ी हों, और चारो ओर से विशाल ढोंके और पर्वत अपनी निधि की रक्षा के लिये तुले खड़े हों।

"पानी का बड़ा सहारा है यहाँ कालेख़ाँ। यहीं से दस्ते बना-बनाकर हमला करना अच्छा है।"

"बेहतर है हुज़ूर।"

"दो दिन में सामान इकट्ठा कर लो। तीसरे दिन धावा कर दिया जाय। सिपाहियों को इस बीच में आराम भी मिल जायगा।"

"मुसलमान सिपाहियों की एक ख़्वाहिश है हुज़ूर।"

"क्या?"

कालेख़ाँ बोला—"पहले मंदिर तोड़ डाला जाय।" मुस्किराकर अलीमर्दान ने कहा—"ताकि चढ़ाई की मुश्किलें और भी बढ़ जायँ। यह न होगा। बल्कि तुम कड़ा पहरा मंदिर पर लगवा दो। अगर मंदिर की एक ईंट का टुकड़ा भी किसी ने उखाड़ा, तो धड़ से सिर अलग करवा दूँगा। समझ गए कालेख़ाँ?"

नीची गर्दन करके कालेख़ाँ ने उत्तर दिया—"हुज़ूर।"

थोड़ी देर में नमाज़ का वक़्त होने के कारण दोनो पहाड़ी से उतर आए।

इतने में एक सिपाही ने सूचना दी कि दलीपनगर से कोई मुजरा

करने के लिये आया है। उससे नमाज़ के बाद तक ठहरने के लिये कह दिया गया।

नमाज़ के बाद अलीमर्दान से दलीपनगर का जो मनुष्य मिला, वह रामदयाल था। उस समय अलीमर्दान के पास कालेख़ाँ के सिवा और कोई न था।

रामदयाल ने कहा—"मैं सरकार के पास राखी लाया हूँ।"

"राखी!" अलीमर्दान साश्चर्य बोला—"किसने भेजी है? परंतु तुम जवाब दो या न दो, मैं राखी मंज़ूर न करूँगा।"

"ऐसा कभी नहीं हुआ है।" रामदयाल अपने कपड़ों के भीतर हाथ बढ़ाता हुआ बोला।

अलीमर्दान ने कहा—"वह ज़माना अब नहीं है। मैं राखियाँ लेने-देने के लिये नहीं आया हूँ। मेरे आने का प्रयोजन स्पष्ट है। और, यह तो मैंने आज ही सुना है कि दलीपनगर के मर्द भी राखी भेजते हैं।"

"नहीं हुज़ूर," रामदयाल ने कपड़ों में से रेशम की एक छोटी-सी पोटली निकालकर दृढ़ता के साथ कहा—"यह राखी दलीपनगर की रानी ने भेजी है। ग्रहण करनी होगी। बुरी अवस्था में हैं।"

नफ़रत-भरी निगाह से देखते हुए अलीमर्दान बोला—"तुम्हारा नया राजा इतना गिरकर रानी के ज़रिए क्यों शरण माँगता है? छोटी-छोटी-सी दो शर्तें पूरी करने में कौन-से पहाड़ खोदने पड़ेंगे?"

रामदयाल ने उत्तर दिया—"यह राखी राजा ने नहीं भिजवाई है!"

"उसका फल एक ही है, लौटा ले जाओ।"

"यह राखी लौट नहीं सकती। मृत महाराज की छोटी रानी ने भेजी है, जो नए राजा के विरुद्ध आपसे सहायता चाहती हैं।"

अलीमर्दान चौंक पड़ा। "छोटी रानी की राखी मंज़ूर है।" वह

एक क्षण बाद बोला—"लाओ, आज से वह मेरी धर्म की बहन हुई।"

रामदयाल ने प्रसन्नता-पूर्वक अलीमर्दान को राखी दे दी। उसने पगड़ी में रख ली।

फिर रामदयाल से उसने एक-एक करके रियासत-संबंधी सब वृत्त पूछ डाला।

सब हाल सुनकर कालेख़ाँ से बोला—"तुम एक दस्ता लेकर कुंजरसिंह की मदद के लिये सिंहगढ़ जाओ। मैं दूसरे दस्ते से दलीपनगर पर धावा करता हूँ।"

कालेख़ाँ ने स्वीकार किया।

दूसरे दिन कालेख़ाँ एक दस्ता लेकर सिंहगढ़ की ओर रवाना हो गया। अलीमर्दान ने रामदयाल को अपने शिविर में एक-दो दिन के लिये रोक लिया।

---

(२९)

कुंजरसिंह का सिंहगढ़-विद्रोह अलीमर्दान को रामदयाल के मिलने से पहले ही मालूम हो गया था, परंतु उस समय के संदेह के वातावरण के कारण रामदयाल को एकआध दिन के लिये रोक रक्खा। उसने सोचा—"यदि राखी महज़ छल-कपट ही है, तो यह आदमी जल्दी दलीपनगर जाकर किसी तरह की ख़बर न दे सकेगा।"

अपनी सेना का एक दस्ता पालर में छोड़कर दूसरे दिन उसने कूच कर दिया। जब दलीपनगर के राज्य में कई कोस घुस गया, तब रामदयाल को बिदा करते समय बोला—"रानी के पास कुछ सरदार हैं?"

"हैं सरकार।" उसने उत्तर दिया।

"उन सबको लेकर सिंहगढ़ पहुँचो। अब रानी का दलीपनगर में रहना ठीक नहीं।"

"बहुत अच्छा। मैं अभी जाकर इसका प्रबंध करता हूँ।"

कुछ समय उसे और रोककर अलीमर्दान ने कहा—"मंदिर के विषय में तुम्हारा क्या ख़याल है कि मैं तुड़वा दूँगा?"

"कभी नहीं।" रामदयाल ने आवेश के साथ उत्तर दिया।

ज़रा ठहकर अलीमर्दान ने कहा—"मगर जिस लड़की ने यह फ़साद करवाया था, उसे कुछ सज़ा दी जायगी।"

रामदयाल चुप रहा।

अलीमर्दान बोला—"रामदयाल, हम तुम्हारे देवतों की इज़्ज़त करते हैं, मगर उन आदमियों की नहीं, जो देवता बनकर दुनिया को शरारत से न सिर्फ़ ठगते हैं, बल्कि बेक़सूर सिपाहियों को मरवा डालते हैं।"

"यह दुरुस्त है हुज़ूर।" रामदयाल ने कहा।

अलीमर्दान हँसकर बोला—"मगर उस लड़की को जो सज़ा दी जायगी, वह किसी बड़े पुरस्कार से भी बढ़कर होगी।"

रामदयाल अलीमर्दान का मुँह जोहने लगा।

अलीमर्दान कहता गया—"उसे मैं अपने महल में जगह दूँगा। सालर की अपेक्षा शायद कालपी उसे शुरू-शुरू में कम पसंद आवे। बस, इतने में ही सज़ा समझो। इसके बाद अगर वह सुखी न रह सकी, तो तुम मुझे दोष देना। क्या कहते हो रामदयाल?"

उसने उत्तर दिया—"इसमें तो किसी प्रकार का हर्ज नहीं दिखलाई पड़ता हुज़ूर।"

अलीमर्दान ने आँख गड़ाकर पूछा—"उस लड़की का पता बतला सकोगे?"

रामदयाल ने विश्वास दिलाकर कहा—"खोजकर बतलाऊँगा!"

(७६)

अलीमर्दान दलीपनगर-राज्य में थोड़ा ही घुस पाया था कि उसे राज्य की सेना का सामना करना पड़ा।

राजा देवीसिंह और लोचनसिंह के नायकत्व में दलीपनगर की सेना को अलीमर्दान नुक़सान नहीं पहुँचा पाया। दलीप-नगर की ओर उसकी बढ़ती हुई प्रगति को निश्चित रूप से रुक जाना पड़ा। लगभग हर समय नालों, जंगलों और पहाड़ियों में लड़ते-लड़ते अलीमर्दान ने सोचा, बिना किसी अच्छे क़िले को हाथ में किए युद्ध आसानी से और विजय की पूरी आशा के साथ न हो सकेगा। इसलिये उसने देवीसिंह की सेना को अटकाए रखने के लिये एक दस्ता जंगल में छोड़ दिया, और उसी सेना के दूसरे दस्ते को लेकर होशियारी के साथ चुपचाप सिंहगढ़ रवाना हो गया। बहुत चक्करदार मार्ग से जाना पड़ा, इसलिये वह सिंहगढ़ के निकट देर में पहुँचा।

राजा देवीसिंह को इस चाल की सूचना विलंब से मिली। उस समय पालर की छावनी से, अलीमर्दान की इस नई योजना के अनुसार, और सिपाही आ पहुँचे। देवीसिंह इस सेना का मुक़ा-बला और पालर की छावनी पर धावा करने के लिये वहीं गया, और लोचनसिंह को सिंहगढ़ की ओर भेजा।

परंतु इसके पहले ही रामदयाल ने छोटी रानी के पास पहुँच-कर राजधानी में ही उपद्रव जाग्रत् कर दिया था। जो लोग राजा देवीसिंह के अभिषेक से असंतुस्ट थे, वे सब छोटी रानी के झंडे नीचे के आ गए, और उन्होंने ख़ास दलीपनगर में गृह-युद्ध आरंभ कर दिया। छोटी रानी ने एक सरदार के नीचे थोड़ी-सी सेना राजधानी को तंग करने के लिये छोड़ दी, और एक बड़ी तादाद में लेकर सिंहगढ़ की ओर चल पड़ी। उसे यह नहीं मालूम

था कि अलीमर्दान सिंहगढ़ की ओर गया है। मालूम भी हो जाता, तो वह न रुकती।

जनार्दन ने इस विद्रोह का समाचार राजा के पास, जहाँ वह लड़ रहा था, भेजा। पत्रवाहक लोचनसिंह को बीच में ही मिल गया। तब लोचनसिंह सिंहगढ़ की ओर न जाकर सीधा दलीपनगर पहुँचा। राजधानी के बलवे को दबाने के लिये लोचनसिंह को कई दिन लग गए।

इस बीच में रानी और अलीमर्दान की सेनाएँ सिंहगढ़ के मुहासिरे पर पहुँच गईं। तब वहाँ राजा देवीसिंह की सेना को कुंजरसिंह, अलीमर्दान और छोटी रानी की सेनाओं से लोहा लेना पड़ा। परंतु फल के निर्णय में अधिक विलंब नहीं हुआ।

(२७)

राजा देवीसिंह की सेना सिंहगढ़ के घेरे में हार गई और भागकर दलीपनगर पहुँची। विजय की अपेक्षा पराजय का समाचार ज़्यादा जल्दी फैलता है। राज्य-भर के और आस-पास के लोग सुनकर घबराने लगे। अलीमर्दान के वे दस्ते, जो राजा देवीसिंह की सेना का सामना कर रहे थे, अधिक उत्साह के साथ लड़ने लगे।

देवीसिंह ने जनार्दन से कहलवा भेजा—"यदि लोचनसिंह से काम न चलता हो, तो किसी दूसरे सरदार को सिंहगढ़ भेजो। यहाँ उसे मत लौटाना। मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता।"

जनार्दन ने सामरिक स्थिति पर बातचीत करते हुए लोचनसिंह से कहा—"यदि आप सीधे सिंहगढ़ चले जाते, तो अच्छा होता। राजा की आज्ञा का उल्लंघन करके अच्छा नहीं किया।"

"इधर आपकी राजधानी ख़ाक में मिल जाती। मैं न आता, तो यहाँ कौन लड़ता?"

"राजा किसी-न-किसी को भेजते। परंतु जो हो गया, सो हो गया। सिंहगढ़ को किसी तरह हाथ में लेना चाहिए, नहीं तो इस राज्य की कुशल नहीं।"

"और, यदि दलीपनगर भी हाथ से निकल गया, तो आपको आराम से बैठे-बैठे बातचीत करने के लिये जगह तक का ठिकाना न रहेगा।"

"महाराज की आज्ञा है कि आप सिंहगढ़ जायँ।"

"वह पुरानी बात है। यदि काम करना है, तो उसे तो यों ही मानूँगा, और नहीं करना है, तो अपने घर चला जाऊँगा; परंतु युद्ध के विषय में मैं पंडितों की आज्ञा नहीं लिया करता।"

"महाराज ने क्या कहलवाया है, जानते हो?" जनार्दन ने उत्तेजित होकर कहा—"और युद्ध के दिनों में घर बैठ जाना तो किसी भी सरदार को शोभा नहीं देता।"

लोचनसिंह ने पूछा—"महाराज ने क्या कहलवाया है जी?"

सावधानी के साथ जनार्दन ने उत्तर दिया—"यह कि यहाँ न आकर सीधे सिंहगढ़ जायँ।"

लोचनसिंह ने कहा—"आपने यहाँ के विषय में लिख दिया था या नहीं कि क्या-क्या हुआ। किस-किस संकट में राजधानी पड़ गई थी।"

उत्तर मिला—"सब लिख दिया था।"

"महाराज ने कुछ और कहला भेजा है?" उसने पूछा।

जनार्दन बोला—"और तो कुछ याद नहीं पड़ता। जब स्मरण हो आवेगा, बतला दूँगा। अभी तो अपना काम देखिए।"

लोचनसिंह ने तड़ककर कहा—"तो अब राजा को सूचित कर दो कि जहाँ पौरुष की क़दर नहीं, वहाँ लोचनसिंह नहीं रहेगा।" और जनार्दन के विनय-प्रार्थना करने पर भी वहाँ से उठ गया।

(२८)

सिंहगढ़ में कुंजरसिंह को छोटी रानी की सेना के आने का और उसके उद्देश्य का समाचार मिल गया था। इन दोनो का संयुक्त दल सिंहगढ़ के फाटक खुलवाकर भीतर पहुँच गया। कुंजरसिंह को अलीमर्दान के दस्ते का हाल न मालूम था। रामदयाल अलीमर्दान के साथ-साथ था। डोले में रानी की सवारी सबसे पहले दाख़िल होकर दूसरी ओर चली गई। कुंजरसिंह सबसे पहले रानी के पास गया। पैर छूकर खड़ा हो गया। परिश्रम और थकावट के सारे चिह्न उसके मुख पर थे, परंतु हर्ष की भी रेखाएँ चमक रही थीं, जैसे धूल में सोना दमक रहा हो।

रानी ने कृतज्ञ कुंजरसिंह से कहा—"ख़ास दलीपनगर में लड़ाई हो रही है। सैयद की फ़ौज देवीसिंह से पालर की ओर लड़ रही है, और स्वयं सैयद को रामदयाल यहाँ लिवा लाया है। उसकी सहायता न होती, तो तुमसे मिल पाना असंभव होता।" और कुंजर के नत मस्तक पर हाथ फेरा।

हर्ष की रेखाएँ उसी थकावट की बाढ़ में डूब गईं। कुंजर की आँखों में तारे छिटक उठे। अलीमर्दान का नाम सुनते ही शरीर में पसीना आ गया। जब उसका सिर उठा, रानी ने देखा, एक क्षण पहले का उत्फुल्ल मुख मुर्झा गया है, जैसे कमल को पाला मार गया हो।

रानी इस परिवर्तन को न समझ सकीं, परंतु यह उन्हें भासित हो गया कि कृतज्ञता के स्थान पर उसके नेत्रों में रुखाई, उपेक्षा और घबराहट अधिक है।

"क्या है कुंजरसिंह? क्या कहना चाहते हो?" रानी ने पूछा

"कुछ नहीं कक्कोजू।" कुंजरसिंह ने उत्तर दिया—"मुझ-सरीखे तुच्छ मनुष्य के लिये आपने जो कष्ट उठाया है, वह व्यर्थ गया-सा जान पड़ता है।"

इस रुखाई से रानी तिलमिला उठीं। बोलीं—"तुम सदा रोते-से ही बने रहे। क्या इस विजय से तुम्हें राजसिंहासन अपने अधिक निकट नहीं दिखलाई पड़ रहा है? सेना एकआध रोज़ विश्राम कर ले कि तुरंत दलीपनगर के ऊपर प्रबल आक्रमण कर दिया जायगा, और जनार्दन, देवीसिंह, लोचन इत्यादि बाग़ियों को उनके किए का भरपूर बदला दे दिया जायगा।"

"महाराज—" कुंजरसिंह कहता-कहता रुक गया।

"बोलो, बोलो, कुंजरसिंह, क्या कहते हो?" रानी ज़रा चिढ़कर बोलीं।

सामने से रामदयाल को और उससे थोड़े ही पीछे अलीमर्दान को देखकर कुंजरसिंह ने कहा—"अभी कक्कोजू विश्राम करें। बहुत परिश्रम किया है। अवकाश मिलने पर निवेदन करूँगा।" रानी का डोला क़िले के भीतर के महलों में चला गया, और कुंजरसिंह मुड़कर रामदयाल के पास पहुँचा।

रामदयाल ने महत्त्व-पूर्ण दृष्टि और मिठास-भरे स्वर में जुहार किया। धीरे से बोला—"कालपी के नवाब साहब हैं। इन्होंने बात रख ली।"

कुंजरसिंह चुपचाप, चलती-फिरती पत्थर की मूर्ति की तरह, बिना कोई भाव प्रदर्शित किए, अलीमर्दान के पास पहुँचा। अभिवादन किया।

अलीमर्दान को जान पड़ा, इस स्वागत में अतिथि-पूजा की अनुभूति नहीं है। परंतु उसने अपनी कुढ़न को तुरंत दबा लिया। हँसकर और चिल्लाकर बोला—"सिंहगढ़ के बहादुर शेर राज कुंजरसिंह का ही दर्शन हो रहा है न?"

कुंजरसिंह ने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया। उसका आंतरिक भाव जो कुछ भी रहा हो, परंतु उसमें इतनी शिष्टता थी कि हर्ष का उत्तर खिन्नता से न दे।

अपने स्थान पर ले जाते हुए कुंजरसिंह ने मार्ग में कहा—"आपका किसी तरह का कोई समाचार हम क़ैदियों को यहाँ मिलना भाग्य में न बदा था। इसीलिये अकस्मात् सुनकर उचित रूप से आपकी अगवानी न हो सकी।"

"सिपाही की अगवानी सिपाही और किस तरह करता है, राजा साहब ?"

कुंजरसिंह की रुखाई में कुछ कमज़ोरी आई। बोला—"नवाब साहब, यदि अगवानी की त्रुटियों को अच्छे भोजन-पान आदि से दूर कर सकता, तो भी मेरे लिये कुछ कृतकृत्य होने की बात थी, परंतु हम लोगों के पास रूखे-सूखे के सिवा यहाँ और कुछ नहीं है। इसीलिये और भी लज्जित हूँ।"

रामदयाल ने, जो पीछे-पीछे चला आता था, कहा—"महाराज, नवाब साहब बड़े कट्टर सैनिक हैं। इन्हें लड़ाई की धुन में खाना-पीना कुछ नहीं सूझता।"

कुंजरसिंह सबसे पहले अपने जीवन में अपने को 'महाराज' शब्द से संबोधित पाकर एक क्षण के लिये चकित और रोमांचित हो गया। कुछ कहना चाहता था, न कह सका।

अलीमर्दान हँसकर बोला—"राजा साहब, रामदयाल ने बड़ी सहायता की है। आपके शुभचिंतकों में ऐसे कुशल मनुष्य का होना गर्व की बात है। एक छोटी-सी सेना के बराबर इस अकेले का काइयाँपन है।"

कुंजरसिंह ने संयत शब्दों में उसकी प्रशंसा की, परंतु उनमें काफ़ी कृपणता थी, और रामदयाल को वह खटकी। कुंजरसिंह के स्थान पर पहुँचकर अलीमर्दान ने तय किया कि रात को आनंदोत्सव मनाया जाय।

---

(२६)

कड़ी लड़ाई के बाद सिपाही जब अवकाश पाकर आनंद मनाते हैं, तब उनका वेग पाठशाला से छूटे हुए छोटे-छोटे विद्यार्थियों के हुल्लड़ से कहीं अधिक बढ़ जाता है। इस शोर-गुल को एक ओर छोड़कर अलीमर्दान, कुंजरसिंह और रामदयाल एकांत स्थान में जा बैठे।

उमंग के साथ अलीमर्दान ने कहा—"जिस दिन राजा साहब का तिलक होगा, उस दिन जश्न और भी ज़ोर-शोर के साथ मनाया जायगा। आज तो बेचारे थके-माँदे सिपाही केवल थकावट दूर कर रहे हैं।"

"बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सामने हैं।" कुंजरसिंह ने गंभीरता के साथ कहा—"मैंने तो समझा था कि सिंहगढ़ के भीतर ही रण-क्षेत्र और श्मशान दोनो हैं।"

रामदयाल बोला—"अब उतनी कठिनाइयाँ हमारे सामने नहीं हैं, जितनी देवीसिंह इत्यादि के सामने हैं। राजा, ऐसी मनगिरी बातें न करनी चाहिए।"

"आप राजा साहब," अलीमर्दान स्वाभाविक गति के साथ बोला—"राज्य प्राप्त करते ही रामदयाल को बड़ा सरदार बनाइएगा। मैं इनके लिये सिफ़ारिश करता हूँ, निवेदन करता हूँ।"

उसके स्वर में अनुरोध की विशेष मात्रा कल्पित करके कुंजर को रामदयाल का कुछ उन सेवाओं का स्मरण हो आया, जिनका संबंध मृत राजा नायकसिंह के साथ था।

"परंतु" भाव को छिपाकर बोला—"शुभ घड़ी आने पर किसी सेवक की कोई सेवा नहीं भुलाई जा सकती नवाब साहब। यथोचित पुरस्कार सभी को मिलेगा।"

रामदयाल के मन में इस वचन से किसी उमंग का संचार न हुआ। बोला—"महारानी साहब और राजा की कृपा बनी रहे नवाब

साहब हमारे ऊपर, हमें तो चरणों में पड़े रहने में ही सुख है, सरदारी लेकर क्या करेंगे ?"

अलीमर्दान की समझ में न आया। अधिक रोचक विषय की ओर मनोवृत्ति को फेरने के प्रयोजन से बोला—"भविष्य में आपकी क्या कार्य-विधि होगी राजा साहब ? अभी तक तो मैंने सैन्य-संचालन किया है, अब सेनापतित्व का भार आपको लेना होगा।"

इसके उत्तर के लिये कुंजरसिंह तैयार था। बोला—"मेरी गति-मति के ऊपर रानी साहबा को अधिकार है। उनकी इच्छा मालूम करके आपसे प्रार्थना करूँगा।"

"बहुत अच्छा।" अलीमर्दान ने कहा—"सबेरे तक बतला दीजिएगा। परंतु एक सम्मति है, उसे ध्यान-पूर्वक सुन लीजिए, और रानी साहबा से अर्ज़ कर दीजिए। वह यह कि सबेरे तुरंत कुछ फ़ौज दलीपनगर पर हमला करने के लिये रवाना करवा दी जाय, और एक टुकड़ी पास-पड़ोस के छोटे-मोटे क़िलों पर क़ब्ज़ा करने के लिये भिन्न-भिन्न दिशाओं में भिजवा दी जाय।"

कुंजरसिंह बोला—"सेना को इस तरह कई भागों में विभक्त कर देना ठीक रण-नीति होगी या नहीं। कक्कोजू से पूछकर बड़े भोर निवेदन करूँगा।"

अनसुनी-सी करते हुए अलीमर्दान ने कहा—"और क़िले में हमारी और आपकी फ़ौज का एक काफ़ी बड़ा हिस्सा हर तरफ़ मदद भेजने के लिये बना रहेगा।"

---

(३०)

आनंदोत्सववाली उसी संध्या के बाद रामदयाल ने अलीमर्दान से बात करने का अवसर निकाला। वह भी रामदयाल की टोह में था।

परंतु अनुकूल अवसर न होने से उसने बातचीत आरंभ नहीं की, वार्तालाप के सिलसिले को जारी-भर कर दिया।

"गद्दी मिलने के बाद राजा साहब दीवान किसको बनाएँगे रामदयाल ?" अलीमर्दान ने पूछा।

"हुज़ूर या वह जिसे उस पद पर बिठलाएँ।" रामदयाल ने उत्तर दिया।

"मैं तो उन्हें गद्दी पर बिठलाकर कालपी चला जाऊँगा। वहीं के मामलों से फ़ुरसत नहीं। न-मालूम दिल्ली जाना पड़े, न-मालूम मालवे की तरफ़।"

"तब जिसे वह चाहेंगे; परंतु राज्य, इस तिलक के बाद भी, बिना आपकी सहायता के, किस तरह चलेगा, सो ज़रा मुश्किल से समझ में आता है। यदि महारानी के हाथ में शासन की बागडोर रहनेदी जायगी, तो निस्संदेह कठिनाइयाँ कम नज़र आवेंगी।"

अलीमर्दान हँसकर बोला—"यदि रामदयाल को दीवान बना दिया जायगा, तो शायद ज़्यादा गड़बड़ न हो।" फिर तुरंत गंभीर होकर कहने लगा—"तुम क्या इसे असंभव समझते हो ? दिल्ली की सल्तनत में छोटे-छोटे आदमी बहुत बड़े-बड़े हो गए हैं। दिमाग़ और होशियारी की क़द्रदानी की जाती है रामदयाल।"

रामदयाल चुप रहा।

अलीमर्दान ने कहा—"तुम्हें अगर दीवान मुक़र्रर किया गया, तो महारानी साहब को तो कोई एतराज़ न होगा ?"

उसने उत्तर दिया—"उनके चरणों की कृपा से तो मैं जीता ही हूँ।" कुछ और कहना चाहता था, झिझक गया।

अलीमर्दान ने कहा—"राजा साहब तो बेचारे बड़े नेक और सीधे आदमी मालूम होते हैं।"

"रामदमाल ने कोई मंतव्य प्रकट नहीं किया।"

"हमारा कुछ काम किया रामदयाल?" उसने पूछा।

"रामदयाल बोला—"आज्ञा?"

"मैंने तुमसे पालर में कुछ कहा था?"

"याद है।"

"इस बीच में तुम बहुत उलझनों में रहे हो। अगर अब पता लगा सको, तो अच्छा है, नहीं तो ख़ैर।"

"लगा लिया।" रामदयाल ने कहा।

उत्सुकता के साथ अलीमर्दान ने पूछा—"कहाँ है?"

ख़बर लगी है कि वह बिराटा के जंगलों में किसी गुप्त क़िले की अदृश्य गुफा में है।" रामदयाल ने उत्तर दिया।

अलीमर्दान हँसकर बोला—"यह पता तो तुमने ऐसा बतलाया कि शायद तुम ख़ुद वहाँ जाकर भूल जाओ।"

उसने कहा—"जब इतना पता लग गया, तब शेष भी लग ही जायगा।"

अलीमर्दान अपनी सहज सावधानता के वृत्त को उल्लंघन करके बोला—"रामदयाल, बड़ा काफ़ी पुरस्कार मिलेगा।"

"हुज़ूर, मैं उसे ढूँढ़ूँगा, और उसके सम्मुख आपको कर दूँगा। इसका बीड़ा उठाता हूँ।"

"और अगर रामदयाल तुमने इस काम में मेरी मदद की, तो इस राज्य की दीवानी तो तुम्हें मिलेगी ही, मैं अपने पास से भी बहुत बढ़िया इनाम दूँगा।"

रामदयाल ने नम्रता-पूर्वक कहा—"मुझे तो आप लोगों की कृपा चाहिए, और क्या करना है।"

ज़रा दबी ज़बान से अलीमर्दान ने पूछा—"तुम उसे देवी का अवतार तो नहीं समझते? वह देवी का अवतार नहीं हो सकती—"

"ज़रा भी नहीं।" रामदयाल ने उत्तर दिया—"यह तो मूर्खों का ढकोसला है।"

"उसका नाम क्या है?"

"कुमुद।"

---

(३१)

जिस समय अलीमर्दान और रामदयाल की बातचीत हो रही थी, क़रीब-क़रीब उसी समय कुंजरसिंह छोटी रानी के पास था।

छोटी रानी उससे कह रही थीं—"तो तुम्हारा यह तात्पर्य है कि यहाँ हम लोग कोई न आते, तुम्हें यहीं लड़ने-मड़ने और मरने दिया जाता। ठीक है न कुंजरसिंह?"

"आपके दर्शनों से तो मेरे पाप कटते हैं" कुंजरसिंह ने कहा—"परंतु अलीमर्दान को नहीं बुलाना चाहिए था।"

"अलीमर्दान को न बुलाया होता, तो सर्वनाश हो गया होता। उसने तो वैसे भी चढ़ाई कर दी थी। उसे रोक ही कौन सकता था? और दलीपनगर के पूर्व राजा इस तरह की सहायता का आदान-प्रदान पहले से भी करते आए हैं।"

"परतु जिस प्रयोजन से वह आया है, वह आपको मालूम है?"

"वह जनार्दन और लोचनसिंह को सूली देने आया है। यदि वह इसमें सफल हो जाय, तो मैं कहूँगी, बहुत अच्छा हुआ। और अधिक जानने की मुझे ज़रूरत नहीं।"

"वह पालर की देवी और उनका मंदिर नष्ट करने आया है। आपको यह बात स्मरण रखनी चाहिए।"

रानी ने झल्लाकर कहा—"मुझे क्या बात स्मरण रखना चाहिए। मैं इसे बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। इसे सुझाने के लिये मुझे तुम-जैसे लोगों की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि तुम साथ रहकर

लड़ाई लड़ना चाहो, तो अच्छा है। यदि तुम्हारे मन को न भावे, तो जिस तरह चाहो लड़ो, या उस धर्म-द्रोही, स्वामिघाती जनार्दन की शरण चले जाओ, और हम लोगों का अशुभ चिंतन करो।"

कुंजरसिंह का कलेजा हिल गया। नम्रता-पूर्वक बोला—"महाराज रुष्ट न हों। आप राज्य करें, मुझे राज्य की उतनी अधिक परवा नहीं। यदि होगी भी, तो जनार्दन इत्यादि को दंड देने के उपरांत जो कुछ भाग्य में होगा, पाऊँगा।"

इस नम्रता में दृढ़ता की गूँज सुनकर रानी कुछ नरम पड़ीं। बोलीं—"अलीमर्दान का वह प्रयोजन नहीं, जो तुम समझ रहे हो। उसने मेरी राखी स्वीकार की है, मुझे बहन की तरह माना है। हिंदुओं का धर्मनाश उसका कदापि उद्देश्य नहीं है। ऐसी हालत में तुम्हें व्यर्थ के संदेहों में माथापच्ची नहीं करनी चाहिए।"

इतने में वहाँ रामदयाल आ गया। रानी के पास किसी समय भी आने की उसे मनाही नहीं थी।

रानी ने उससे कहा—"रामदयाल, आगे के लिये क्या ढग सोचा गया है?"

कुंजरसिंह की ओर संकेत करके उसने उत्तर दिया—"जैसा निश्चय किया जाय, वैसा होगा।"

"अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ?" रानी बोलीं।

कुंजरसिंह ने कहा—"अलीमर्दान की राय सेना को टुकड़ियों में विभक्त करके इधर-उधर बिखेरने की है। सेना का अधिक भाग वह सिंहगढ़ में रखना चाहते हैं। यदि देवीसिंह की सेना ने किसी ओर से प्रचंड वेग के साथ चढ़ाई कर दी, तो सिंहगढ़ हाथ से चला जायगा, और बिखरी हुई टुकड़ियाँ कभी संयुक्त न हो पाएँगी।"

रानी झुँझलाकर बोलीं—"रामदयाल, क्या इसी तरह का युद्ध करने की बात अलीमर्दान ने कही है?"

उसने उत्तर दिया—"ठीक इसी तरह की तो नहीं कही है। नवाब साहब दलीपनगर को अधिकृत करने के लिये पर्याप्त सेना भेजना चाहते हैं।"

रामदयाल की बात कुंजरसिंह को कभी अच्छी नहीं लगती थी। इस समय और भी प्रखरता के साथ गड़ गई। बोला—"तो कक्कोजू रामदयाल को सेना-नायक बना दें। बस, प्रधान सेनापति अलीमर्दान और सहकारी सेनाध्यक्ष रामदयाल। इसे यदि इन बातों के दख़ल से दूर रक्खा जाय, तो कुछ हानि न होगी।"

अपने इस क्षोभ पर कुंजरसिंह को तुरंत पछतावा हुआ। कुछ कहना ही चाहता था कि रामदयाल ने बहुत विनीत भाव के साथ कहा—"कक्कोजू ने पूछा था, इसलिये मैंने निवेदन किया। यदि कोई अपराध किया हो तो क्षमा कर दिया जाऊँ। मैं तो सदा भगवान् से यह मनाया करता हूँ कि आप ही लोगों के चरणों में पड़ा रहूँ।"

रानी ने कहा—"कुंजरसिंह, तुम प्रायः रामदयाल पर क्यों रोष प्रकट करते रहते हो?"

ठंडे स्वर में कुंजरसिंह ने उत्तर दिया—"यह कभी-कभी ज़रा अपने दायरे के बाहर निकल जाता है, इसलिये चिड़चिड़ाहट हो जाती है। परंतु मैं वैसे इससे नाराज़ नहीं हूँ।"

कुंजरसिंह ने नहीं देखा, परंतु रामदयाल की नीची निगाहों में उपेक्षा का भाव था।

रानी ने पूछा—"तब क्या कार्य-क्रम स्थिर किया?"

कुंजरसिंह ने उत्तर दिया—"हमारी कुछ सेना सिंहगढ़ में रहे, बाक़ी दलीपनगर पर धावा कर दे, और अलीमर्दान अपनी सेना लेकर देवीसिंह पर छापा मारे।"

रानी ने रामदयाल की ओर देखते हुए कहा—"अलीमर्दान को पसंद आवेगा?"

नहीं आवेगा महाराज।'' रामदयाल ने उत्तर दिया।

कुंजरसिंह ने कहा—"मैं नवाब से बात करूँगा।"

दूसरे दिन सबेरे कुंजरसिंह ने अलीमर्दान से अपने संकल्प के अनुरूप कराने की चेष्टा की, परंतु सफल नहीं हुआ। अलीमर्दान सिंहगढ़ को अपने अधिकार से बाहर नहीं होने देना चाहता था, और कुंजरसिंह अलीमर्दान को प्रबलता के किसी विस्तृत कोण पर स्थित नहीं देखना चाहता था। दो तीन दिन इसी विषय को लेकर वाद-विवाद होता रहा। इसका फल यह हुआ कि सहज निर्णयशीला रानी कुंजरसिंह को क़िले के बाहर निकाल देने की कल्पना करने लगीं।

अलीमर्दान को रानी का यह भाव कुछ-कुछ अवगत हो गया। उसका व्यवहार कुंजरसिंह के साथ कड़ुआ होने की अपेक्षा दो-तीन दिनों में अधिक शिष्ट हुआ। उन दो-तीन दिनों में कोई सेना कहीं नहीं भेजी गई। अलीमर्दान ने मुस्तैदी के साथ खाद्य सामग्री इकट्ठी कर ली। परंतु तीन दिन के उपरांत भी रण की योजना अनिश्चित ही थी।

---

(३२)

उस दिन लोचनसिंह के रुष्ट होकर चले आने पर जनार्दन बहुत चिंतित हुआ। वह उसके हठी स्वभाव को जानता था, इसलिये उस समय मनाने के लिये नहीं गया।

देवीसिंह को सूचित नहीं कर सकता था, क्योंकि वह जानता था कि बात और बिगड़ जायगी।

राजधानी का बलवा ऊपर से देखने में दब गया था, परंतु शांत नहीं हुआ था। जिन लोगों ने यह विश्वास करके उपद्रव किया था कि देवीसिंह यथार्थ में राज्य का अधिकारी नहीं है, बड़ी रानी

अनुचित रूप से देवीसिंह का साथ दे रही हैं, और छोटी रानी अन्याय-पीड़ित हैं, उन लोगों के कुचल दिए जाने से भावों की तरंग नहीं कुचली जा सकी, प्रत्युत वह भीतर-ही-भीतर और भी प्रबल और प्रचंड हो उठी। जनार्दन इस बात को जानता था, इसीलिये लोचनसिंह-सदृश योद्धा और सेनापति को, ऐसे गाढ़े समय में, हाथ से नहीं खो सकता था।

परंतु लोचनसिंह की प्रकृति में ऐसी बातों के सोचने के लिये बहुत ही कम स्थान था। जनार्दन कुछ समय का अंतर देकर, विना किसी ठाट-बाट के, अकेला लोचनसिंह के घर गया।

जाते ही हाथ बाँधकर खड़ा हो गया। बोला—"आज एक भीख माँगने आया हूँ।"

सैनिक लोचनसिंह ने बँधे हुए हाथ छुड़ा दिए। कहने लगा—"पंडितजी, मुझे हाथ जोड़कर पाप में मत घसीटो।"

"भीख माँगने आया हूँ। इससे तो आप ब्राह्मणों को वर्जित नहीं कर सकते?"

"मैं आपकी सब करामात समझता हूँ। आप जो कुछ माँगें, दे डालूँगा, परंतु बात न दूँगा। मैं सिंहगढ़ न जाऊँगा।" परंतु लोचनसिंह के स्वर में निश्चय की ऐंठ न थी।

जनार्दन ने तुरंत कहा—'उसके विषय में जो आपको उचित दिखलाई पड़े, सो कीजिए। मैं और एक भीख माँगने आया हूँ।"

लोचनसिंह ने गंभीर होकर पूछा—"और क्या पंडितजी?"

जनार्दन ने राज्य की मुहर लोचनसिंह के सामने डालकर कहा—"सिंहगढ़ मत जाइए। कहीं न जाइए। यह मुहर लीजिए, और दीवानी का काम कीजिए। मेरे बाल-बच्चों की रक्षा का भार लीजिए, और मुझे विदा दीजिए। मैं बदरीनारायण जाता हूँ। ग्रीष्म-ऋतु

आने तक वहाँ पहुँच जाऊँगा। यदि कभी लौटकर आ सका, और दलीपनगर को बचा-खुचा देख सका, तो बाल-बच्चों का भी मुँह देख लूँगा, अन्यथा ब्राह्मण को तीर्थ में प्राण-त्याग करने का भय नहीं है।"

लोचनसिंह ने अचंभे के साथ कहा—"मैं दीवानी करूँगा! दीवानी में क्या-क्या करना होता है, इसे जानने की मैंने आज तक कभी कोशिश नहीं की। यह मुझसे न होगा।"

आतंक के साथ ब्राह्मण बोला—"यह भी न होगा, वह भी न होगा, तब होगा क्या? बात देकर बदलना आपको आज ही देखा, अभी-अभी आपने क्या कहा था?"

लोचनसिंह की आँख के कोने में एक छोटा-सा आँसू झलक आया। बोला "मैं हार गया।"

"क्या हार गए? भीख न दोगे?" जनार्दन ने पूछा।

"सिंहगढ़ जाऊँगा। या तो सिंहगढ़ राजा को दे दूँगा, या कभी अपना मुँह न दिखाऊँगा।" लोचनसिंह ने उत्तर दिया—"अभी सेना लेकर रवाना होता हूँ।"

जनार्दन ने मन में कहा—"अब राजा के पास लोचनसिंह के इस प्रण का समाचार भेजूँगा।"

---

(३३)

अलीमर्दान को ख़बर लगी कि राजा देवीसिंह का सामना करने के लिये जिस फ़ौज को वह छोड़ आया था, उसे मैदान छोड़ना पड़ा, और पालर की सेना को देवीसिंह ने इस तरह आक्रांत किया कि दूसरी टुकड़ी उसमें नहीं मिल सकी। वह चक्कर काटकर सिंहगढ़ की ओर आ रही है। इस सूचना को पाकर अलीमर्दान ने एक बड़े दस्ते के साथ दलीपनगर पर धावा कर देने का निश्चय किया।

वह सिंहगढ़ को भी नहीं भूला। अच्छी तादाद में, कलेख़ाँ के सेनापतित्व में, सैनिकों को छोड़ने का उसने प्रबंध कर लिया।

रानी को भी ख़बर लगी। उन्होंने कुंजरसिंह को उसी समय बुलाकर कहा—"अब क्या करने की ठानी है मन में? अब भी परस्पर लड़ते-झगड़ते ही रहोगे?"

"मैंने तो कोई झगड़ा नहीं किया कक्कोजू। गँवार लोग जैसा गाली-गलौज आपस में करते हैं, क्या उसी को झगड़ा कहा जाता है। कक्कोजू?"

"कह डालो। संकोच मत करो।" कुंजरसिंह ने ज़रा रुखाई के साथ कहा—"मैं यदि क़िले में ही लड़ते-लड़ते मर जाता, तो बहुत अच्छा होता।"

रानी ने कहा—'वह अब भी हो सकता है कुंजरसिंह। मौत के लिये किसी को भटकना नहीं पड़ता। जो लोग कहते हैं कि मौत नहीं आती वे असल में मौत चाहते नहीं, मुँह से केवल बकते हैं। तुम्हें यदि क्षत्रियों की मौत चाहिए, तो योजनाओं में मीन-मेख मत निकालो। जो कहा जाय, करो।"

"मैंने अपनी नीति निश्चय कर ली है।" कुंजरसिंह ने निर्णय-व्यंजक स्वर में कहा—"मैं इस गढ़ को अलीमर्दान के अधिकार में न जाने दूँगा। वह हमारी सहायता सेत-मेत करने नहीं आया है; सिंहगढ़ का परगना और क़िला सदा के लिये हथियाना चाहता है, क्योंकि कालपी की भूमि इसके पास पड़ती है। मैं इस बपौती को प्राण रहते न जाने दूँगा। केवल आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है, और किसी की नहीं—"

रानी ने वाक्य पूरा नहीं होने दिया। बोलीं—"तुम कदाचित् यह समझते हो कि यहाँ न होंगे, तो प्रलय हो जायगी। मैं भी सैन्य-संचालन कर सकती हूँ। लड़ना, मरना और राज्य करना भी जानती हूँ।"

असंदिग्ध भाव से कुंजर ने कहा—"आप राज्य करें, मैं आड़े नहीं हूँ। कोई राज्य करे, पर मैं सिंहगढ़ को दूसरों के हाथ में न जाने दूँगा।"

"मूर्ख," रानी प्रचंड स्वर में बोलीं—"सदा मूर्ख रहा, और सदा मूर्ख ही रहेगा। मैंने अलीमर्दान को सेनापति नियुक्त किया है। उसकी आज्ञा माननी होगी। जो कोई उल्लंघन करेगा, वह दंड का भागी होगा।"

कुंजरसिंह क्रोध के मारे काँपने लगा। काँपते हुए स्वर में उसने कहा—"आप स्त्री हैं, यदि किसी पुरुष ने यह बात कही होती, तो अपने खड्ग से उसका उत्तर देता।"

रानी का हाथ अपने हथियार पर गया ही था कि दौड़ता हुआ रामदयाल आया। एकाएक बोला—"हम लोग घिर गए हैं।"

"किनसे ?" कुंजरसिंह और रानी, दोनो ने पूछा।

उसने उत्तर दिया—"लोचनसिंह की सेना का एक भाग सिंधु-नदी के उस पार वन में, उत्तर की ओर से बहुत निकट, आ गया है। दक्षिण और पश्चिम की ओर से भी एक बड़ी सेना आ रही है।"

रानी दाँत पीसकर बोलीं—"कुंजरसिंह, कुंजरसिंह, जाओ। अब मेरे सामने मत आना।"

कुंजरसिंह यह कहता हुआ वहाँ से चला गया—"मैं क़िला छोड़कर बाहर नहीं जाऊँगा।"

रानी ने रामदयाल से विस्तार-पूर्वक हाल सुना। उसे इस बात पर बड़ी कुढ़न हुई कि दो-तीन दिन यों ही नष्ट करके लोचनसिंह को इतने निकट चले आने का मौक़ा दिया। कदाचित् सारा कोप कुंजरसिंह के ऊपर केंद्रित हो गया।

अपने विश्वास-पात्र रामदयाल से बोलीं—"तुझे अपना प्रण याद है ?"

"हाँ महाराज।"

"कब पूरा करेगा?"

"सिंहगढ़ के युद्ध के उपरांत अवसर मिलते ही तुरंत।"

"अभी चला जा। जैसे बने, राजधानी में उसका गला काट डाल। यदि सब मारे जायँ, और अकेला जनार्दन बचा रहे, तो शांति न होगी।"

"चरणों को अकेला नहीं छोड़ सकता। कुंजरसिंह राजा के स्वार्थ का मुझे बहुत भय है।"

रानी इस उत्तर को सुनकर कुछ देर चुप रहीं, फिर बोलीं—"अच्छा, अभी यहीं बना रह। कुंजरसिंह के ऊपर निगरानी रखने के लिये सेनापति से कह दे।"

रामदयाल ने स्वीकार किया।

---

(३५)

कुंजरसिंह ने अपने सब आदमी इकट्ठे करके सिंधु-नदी की ओर, उत्तरवाले छोटे फाटक के आस-पास, फैला दिए, और उन्हें अपनी स्थिति समझा दी। वे लोग बहुत नहीं थे, परंतु आज्ञाकारी थे।

इतना करके अलीमर्दान के पास गया। "नवाब साहब," कुंजरसिंह ने साधारण शिष्टाचार के बाद कहा—"लोचनसिंह का विरोध बड़ी सावधानी और कड़ाई के साथ करना पड़ेगा। उस-सरीखा रण-शूर और रण-चतुर कठिनाई से कहीं और मिलेगा।"

"ज़रूर होगा।" अलीमर्दान ने रुखाई के साथ कहा—"जब दुश्मन उसका बखान करते हैं, तो ऐसा ही होगा; और इसमें कोई संदेह नहीं कि देवीसिंह की सेना में हम लोगों-जैसे काहिल बहुत कम होंगे।"

कुंजरसिंह इस प्रकट व्यंग्य से पीड़ित नहीं हुआ—कम-से-कम ऐसा उसकी आकृति से ज़ाहिर नहीं होता था। बोला—"यह अच्छा हुआ कि हम लोगों ने अपनी सेना को अनेक भागों में खंडित नहीं किया।" कुंजरसिंह ने कहा—"अन्यथा इस समय हाथ में कुछ भी न रहता। पर ख़ैर, अब गई-गुज़री बातें छोड़कर लोचनसिंह के मुक़ाबले की तैयारी कीजिए।"

अलीमर्दान ने कहा—"वह अच्छी तरह हो गई है। आप, कालेख़ाँ और रानी साहबा क़िले के भीतर से लड़ें, और मैं बाहर से लड़ूँगा। सब लोग भीतर बैठकर लड़ेंगे, तो एक तरह से क़ैदियों की-सी हालत हो जायगी।"

"मुझे यह सलाह पसंद है।" कुंजरसिंह ने एक क्षण सोचने का भाव दिखलाते हुए कहा।

वह बोला—"आप क़िले की लड़ाई बहुत पसंद करते हैं, इसलिये मैंने यही तय किया है।"

अलीमर्दान ने 'यही तय किया है', इस बात को सुनकर कुंजरसिंह को बहुत सुख नहीं मिला।

वह अपने स्थान पर चला गया। थोड़े ही समय में उसे ज्ञात हो गया कि गढ़ का नायकत्व उसके हाथ में नहीं है, और रानी के नाम की ओट में अलीमर्दान सेनापतित्व कर रहा है।

उसके छोटे-से दल को भी यह बात विदित हो गई। अपनी प्रभुता के मद, अपनी आज़ादी के नशे में, वह पहले जिस आनेवाली मौत को दोनो हाथों झेलने के लिये तैयार था, अब उसके साक्षात्कार में उस उन्माद का अनुभव न कर सका।

---

(३५)

लोचनसिंह एक बड़ी सेना लेकर तूफ़ान की तेज़ी की तरह सिंह-

गढ़ पर चढ़ आया। चक्कर दिलवाकर उसने अपनी सेना का एक भाग सिंधु उस पार, क़िले के ठीक उत्तर में, भेज दिया।

अलीमर्दान ने गढ़ से बाहर निकलकर उसका सामना किया। दो दिन की लड़ाई में दोनो ओर के बहुत आदमी मारे गए। बार-बार लोचनसिंह विरोधी दल को गढ़ में भगा देने की चेष्टा करता था, और अलीमर्दान उसे विफल-प्रयत्न कर डालता था। तीसरे दिन लोचनसिंह ने निरंतर आक्रमण जारी रखने के लिये अपनी सेना के अनेक दल बनाए, जो बारी-बारी से जागते, सोते और युद्ध करते थे। यद्यपि यह योजना बिलकुल सही तौर से अमल में न आ सकी, परंतु बहुत अंशों में सफल हुई, और एक दिन-रात की लड़ाई में उसका प्रभाव अलीमर्दान की पीछे हटती हुई सेना पर पड़ा हुआ दिखलाई देने लगा। गढ़ अभी लोचनसिंह से दूर था। थोड़ा-सा पीछे हटकर, अलीमर्दान ख़ूब जमकर लड़ने लगा। दिन-भर बहुत ज़ोर की लड़ाई हुई। संध्या के ज़रा पहले उसकी कुल सेना दाएँ-बाएँ कटकर बहुत तेज़ी के साथ लड़ते-लड़ते भाग गई। आध-आध मील पश्चिम और पूर्व-दिशाओं में भागने के बाद दूर पर एक जगह इकट्ठी होने लगी।

इस आकस्मिक दौड़-धूप में लोचनसिंह की सेना भी तितर-बितर हो गई। अँधेरा हो जाने के कारण दूर तक पीछा न कर सकी, और लौट पड़ी। अलीमर्दान की सेना ने थोड़ी दूर पर, सामने इकट्ठे होकर, गोले-बारी शुरू कर दी, परंतु घड़ी-दो घड़ी बाद शांत हो गई।

लोचनसिंह की समझ में यह रहस्य न आया। थोड़ी देर सोचने के बाद उसने निश्चय किया कि अलीमर्दान क़िले में जा घुसा है, परंतु सामने कहीं-कहीं आग का प्रकाश देखकर उसका भ्रम दूर हो गया। विश्राम-प्राप्त दल को लेकर उसने तुरंत हमला करने का

निश्चय किया। लोचनसिंह के निश्चय को मिटाने या ढीला करने की सामर्थ्य सेना में किसी को न थी, यद्यपि विश्राम-प्राप्त सैनिक भी और अधिक विश्राम प्राप्त करने के आकांक्षी थे।

घुड़सवारों ने आक्रमण किया। आक्रमण का वेग पहले कम, फिर प्रचंड हो उठा। जो घुड़सवार आगे थे, एक स्थान पर जाकर एका-एक रुक गए। एकबारगी चिल्लाए—"मत बढ़ो, धोका है।" और, बहुत-से सवारों का चीत्कार और घोड़ों के मर्माहत होने का स्वर सुनाई पड़ा। तुरंत ही बंदूक़ों की बाढ़-पर-बाढ़ दगने लगी।

गोलियों की भनभनाहट के बीचोबीच लोचनसिंह अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ उसी स्थान पर पहुँचा। देखा, सामने एक बड़ी गहरी और चौड़ी अंधी खाईं है, जिसमें पड़े-पड़े घोड़े अपने टूटे सिर-पैर फड़फड़ा और घायल सिपाही कराह रहे हैं।

घोड़े की लगाम हाथ में पकड़े हुए, घुटने टेके हुए एक सैनिक से लोचनसिंह ने पूछा—"इसमें कितने खप गए होंगे?"

"सैकड़ों।" उत्तर मिला।

"इसी स्थान पर?"

"इसी स्थान पर।"

"मैं लोचनसिंह हूँ।"

"चामुंडरायजू, जुहार।"

"मेरे पीछे आओ। सब आओ।"

"मौत के मुँह में?"

"नहीं, मौत के मुँह से बचने के लिये। अभागे, सब खाईं में कूद पड़ो।"

लोचनसिंह की आज्ञा पर कोई सैनिक खाईं में नहीं कूदा।

लोचनसिंह के शरीर में मानो आग लग गई। परंतु वह अपने सैनिकों को प्यार करता था, इसलिये उसने अपने कोप का किसी

को लक्ष्य नहीं बनाया। परंतु शीघ्र कुछ करना था, इसलिये अपने पास तुरंत थोड़े-से सैनिक इकट्ठे कर लिए।

बोला—"साफ़ा मेरी कमर में बाँधकर नीचे लटका दो। मैं वहाँ की दशा देखता हूँ। उसके बाद घोड़ों को छोड़कर और लोग भी इसी तरह उतर आओ। घोड़ों की लोथों और आदमियों की लाशों को इकट्ठा करके गड्ढा पाट दो, और मार्ग बनाकर खाई को पार कर लो। एक घंटे के भीतर सिंहगढ़ हाथ में आ जायगा। मैंने निश्चय किया है कि आज वहीं सोऊँगा।"

लोचनसिंह को नीचे अकेले न जाना पड़ा। कई सैनिक इसके लिये तैयार हो गए, परंतु लोचनसिंह सबसे पहले नीचे उतरा। नीचे जाकर, इन लोगों ने लाशों का ढेर लगाकर खाई में एक सकरी रास्ता बना ली, पर वह इतनी बड़ी थी कि दो-तीन सवार एक साथ निकल सकते थे। दूसरी ओर से बंदूक़ें चल रही थीं, परंतु लोचनसिंह आगे और उसके सवार पीछे-पीछे खाई पार करके दूसरी ओर पहुँच गए। अलीमर्दान ने कल्पना नहीं की थी कि लोचनसिंह की सेना खाई पार करके इतनी शीघ्र आ जायगी। उसने इस खाई के पश्चिमी तथा पूर्वीय सिरों पर व्यूह बना लिया था, और बीच की पाँत को ज़रा पीछे हटाकर जमा किया था। सिरेवाली टुकड़ियों ने उसके बँधे हुए इशारे पर काम नहीं कर पाया; नहीं तो जिस समय आरंभ में ही लोचनसिंह के बहुत-से योद्धा खाई में गिरे और शोर हुआ, सिरेवाली टुकड़ियाँ इन पर दोनो ओर से हमला कर देतीं, और लोचनसिंह की सेना का एक बहुत बड़ा भाग बहुत थोड़ी देर में नष्ट हो जाता। लोचनसिंह की सेना के एक बड़े दल ने खाई पार करके तुमुल-ध्वनि के साथ जय-जयकार किया। खाई के उसी तरफ़ पीछे जो लोग रह गए थे, उन्होंने भी जयकार किया। क़िले के ऊपर से तोपें गोले उगलने लगीं। खाई के दोनो सिरों की

टुकड़ियाँ क़िले की ओर भागीं। इस गोल-माल में अलीमर्दान की बीच की पाँत भी पीछे हटी। क़िले की तोपों ने शत्रु और मित्र का भेद न पहचाना। दोनो दलों के अनेक लोग इन गोलों से चकनाचूर हो गए।

अलीमर्दान ने क़िले के भीतर घुसकर युद्ध करना पसंद नहीं किया। वह पूर्व की ओर, दूरी पर, अपनी सेना लेकर चला गया। यद्यपि वह चतुराई के साथ पीछे हटने में बड़ा दक्ष था, परंतु इस लड़ाई में उसका नुक़सान हुआ।

---

(३६)

लोचनसिंह की विजयिनी सेना क़िले की ओर बढ़ती गई। खाईं के सिरों की अलीमर्दान की जो टुकड़ियाँ क़िले की ओर भगीं, उनके लिये द्वार न खुल पाया। उत्तर की ओर से लोचनसिंह के दूसरे दस्ते ने ज़ोर का धावा किया। कुंजरसिंह के दल ने यथाशक्ति उत्तर की ओर से आनेवाली बाढ़ का प्रतिरोध किया, परंतु कुछ न बन पड़ा। वह दल उस ओर से क़िले के भीतर घुस आया। कुंजरसिंह ने अपने साथियों-सहित लड़कर मर जाने की ठानी।

उसी समय रामदयाल कुंजरसिंह के पास आया। बोला—"राजा, महारानी के महलों पर चलकर लड़ो। यह स्थान गिर गया है। कालेख़ाँ फाटक पर लड़ रहे हैं। उस तरफ़ से दुश्मन की फ़ौज दाबे चली आ रही है। यदि फाटक खोलते हैं, तो भीतर-बाहर सब ओर वैरी का लोहा बज जायगा।"

कुंजरसिंह ने कहा—"महारानी जितने सिर कटवा सकती हैं, उतने बचा नहीं सकतीं। इस जगह लड़ना व्यर्थ है; मैं तो बाहर जाकर लड़ूँगा।"

"स्त्री की पुकार! और वह आपकी मा भी होती हैं।"

"उन्होंने हम सबको इस दुर्दशा को पहुँचाया।"

"फिर भी मा हैं। राजा नायकसिंह की रानी हैं। याद कर लीजिए। मा के ऋण से उऋण होना है। अन्य सब बातों को भूल जाइए।"

"जो कुछ कहना है, वह तुमसे कह दिया। जाकर कह दो। वह स्त्री नहीं हैं। स्त्री-वेश में प्रचंड पुरुष हैं। यदि उन्हें अपनी रक्षा की चिंता हो, तो मेरे साथ चलें। जाओ।"

यह कहकर, कुंजरसिंह अपने आदमियों को लेकर चलने को हुआ। इतने में कालेख़ाँ आ गया। बोला "कुंजरसिंह, तुमने हमारा सत्यानाश किया! कहाँ जाते हो?"

"जहाँ इच्छा होगी, वहाँ।"

"यह नहीं हो सकता। मैं कोटपाल हूँ। मेरा हुकुम मानना होगा; न मानोगे, सज़ा पाओगे।"

कुंजरसिंह नंगी तलवार हाथ में लिए था। बोला—"दंड-विधान मेरे हाथ में है। जाओ, अपना काम देखो। गढ़ और राज्य का मालिक मैं हूँ। और कुछ फिर कभी बतलाऊँगा।"

कुंजरसिंह चला गया। कालेख़ाँ चिल्लाया—"पकड़ो, पकड़ो।"

रामदयाल ने भी वही पुकार लगाई। लोचनसिंह की सेना के जो सैनिक गढ़ के भीतर आ गए थे, वे कालेख़ाँ की ओर झपटे। वह तो लड़ता हुआ क़िले की दक्षिण ओर निकल गया, परंतु रामदयाल पकड़ा गया। उसने घिघियाकर प्राण-रक्षा की प्रार्थना की—"मैं तो नौकर हूँ, सिपाही नहीं हूँ, मुझे मत मारो।"

सिपाहियों ने उसे क़ैद कर लिया।

उधर से हल्ला करके लोचनसिंह की सेना ने गढ़ का सदर फाटक तोड़ डाला। कालेख़ाँ की सेना घमासान करने लगी, परंतु लोचनसिंह को पीछे न हटा सकी। कालेख़ाँ कुछ सिपाहियों को

लेकर क़िले से बाहर निकल गया। उसकी शेष सेना का अधिकांश मारा गया; जो नहीं लड़े, वे क़ैद कर लिए गए।

रामदयाल पहले ही क़ैद कर लिया गया था। लोचनसिंह ने रानी को भी क़ैद कर लिया।

मशालों की रोशनी में क़िले का प्रबंध करके लोचनसिंह ने क़िले के भीतर और बाहर सेना को नियुक्त किया। एक दल कालेख़ाँ का पीछा करने के लिये भी भेजा। अलीमर्दान भी स्थिति को समझकर वहाँ से दूर चला गया। कालेख़ाँ अपने बचे-खुचे आदमी लेकर उससे जा मिला। और दोनों अपने पालरवाले दस्ते से, कई कोस के फ़ासले पर, कुछ समय उपरांत, जा मिले। उस रात लोचनसिंह सिंहगढ़ में तो पहुँच गया, परंतु सो नहीं सका।

---

(३७)

राजा देवीसिंह ने अलीमर्दान के पालरवाले दस्ते को हटाकर ही चैन नहीं लिया, बल्कि इस बात का प्रबंध करने की भी चेष्टा की कि वह लौटकर फिर उपद्रव न करे। राजधानी सुरक्षित थी। सिंहगढ़-विजय का समाचार पाकर उसने दलीपनगर की सीमा को बचाव के लिये दृढ़ करना आरंभ कर दिया। उधर लोचनसिंह को उचित धन्यवाद देते हुए आदेश भेजा।

लोचनसिंह ने इसे पाकर रामदयाल को बुलाया। क़ैद में था, पहरेदारों के साथ आया। लोचनसिंह ने कहा—"छोटी रानी से मिलना चाहता हूँ। थोड़ी देर में आता हूँ। काग़ज़, क़लम-दावात तैयार रक्खें।"

रामदयाल लौटा दिया गया। थोड़ी देर बाद लोचनसिंह गया। पर्दे में बैठी हुई रानी से बातचीत होने लगी।

रानी ने कहा—"जो हुकुम तुमने अपने डेरे पर मेरे नौकर को

बुलाकर दिया, उसे किसी से यहीं कहलवा भेजते; क्यों मेरा हल्कापन करते हो ?"

"मैं नौकरों के डेरों पर नहीं जाता। और, क्या ठीक था, जो कुछ किसी के द्वारा कहलवा भेजता, उसे माना जाता या नहीं ?"

"यह नौकरों का डेरा है लोचनसिंह ?"

"यह न सही, वह तो है। अब मैं जिस काम से आया हूँ, वह सुन लीजिए।"

"क्या ? सिर काटने के लिये ?"

"यह काम मेरा नहीं, और न मैं इसके लिये आया ही हूँ। क़लम, दवात, काग़ज़ मौजूद है ?"

"नहीं है। काहे के लिये चाहिए ?"

लोचनसिंह ने बहुत शिष्टाचार के साथ बतलाने की कोशिश की, परंतु फिर भी उसके स्वर में काफ़ी कठोरता थी। बोला—"आपको इस काग़ज़ पर यह लिखना होगा कि दलीपनगर-राज्य से आपको कोई वास्ता नहीं।"

"किसकी आज्ञा से ?" रानी ने काँपते हुए स्वर में पूछा।

"राजा की आज्ञा से।" उत्तर मिला।

"राजा की आज्ञा से।" बड़ी घृणा के साथ रानी बोलीं—"उस भिखमंगे की आज्ञा से ! जाओ, उससे कह दो कि मैं रानी हूँ, राज्य की स्वामिनी हूँ। वह लुटेरा और जनार्दन विश्वासघाती है, चोर है, मैं तुम सबों के दंड की व्यवस्था करूँगी।"

"तुम अब रानी नहीं हो," लोचनसिंह ने उत्तेजित होकर कहा—"स्त्री हो, नहीं तो—"लोचनसिंह वाक्य पूरा नहीं कर पाया। अपने आवेश में डूबकर रह गया।

रानी बोलीं—"लोचनसिंह, लोचनसिंह, कोई स्त्री तुम्हारी भी मा रही होगी, परंतु तुम किसी के होकर न रहे। मेरे स्वामी के

लिये तुम अपना सिर दे डालने की डींग मारा करते थे। झूठे, घमंडी, इस छिछोरे का अंजलि-भर अन्न खाते ही तू अपने पुराने स्वामी को भूल गया ! हट जा मेरे सामने से।"

लोचनसिंह ने इस तरह के कुवचन अपने जीवन-भर में कभी न सुने थे। तिलमिला गया।

बोला—"सच मानो रानी, अपने पूर्व राजा की याद ही मेरे खड्ग को इस समय रोके हुए है, नहीं तो ऐसा अपमान करके कोई भी स्त्री-पुरुष मेरे हाथ से नहीं बच सकता था। तुम क़ैद में हो, इसलिये भी अवध्य हो, और इसलिये तुम्हारी ज़बान इतनी तेज़ चल रही है। राजा को सब हाल लिखे देता हूँ। वह यदि तुम्हें प्राण-दंड भी देंगे, तो मैं कोई निषेध नहीं करूँगा।"

लोचनसिंह बहुत खिन्न, बहुत क्रांत वहाँ से चला गया; परंतु रानी कहती रहीं—"देखूँगी, देखूँगी, कैसे देवीसिंह राजा बना रह सकता है ? सबको सूली न दी या कतर न डाला, तो मेरा नाम नहीं। इन नमकहरामों का मांस यदि कुत्तों से न नुचवा पाया, तो जान लूँगी कि संसार से धर्म बिलकुल उठ गया।"

उस दिन से लोचनसिंह ने रानी का पहरा बहुत कड़ा कर दिया।

---

(३८)

लोचनसिंह से ख़बर पाकर राजा देवीसिंह ने रानी को रामदयाल-समेत दलीपनगर बुलवा लिया, और लोचनसिंह को सिंहगढ़ की रक्षा के लिये वहीं रहने दिया।

देवीसिंह अपनी सेना को एक सरदार की मातहती में छोड़कर दलीपनगर आ गया। उसी दिन जनार्दन के साथ बातचीत हुई।

राजा ने कहा—"लोचनसिंह ने रानी के साथ बहुत कड़ाई का बर्ताव किया है, परंतु इसमें दोष मेरा है, मुझे लिखा-पढ़ी कराने

का काम लोचनसिंह के हाथ में न देना चाहिए था। तुम्हारे हाथ में होता, तो सुबीते के साथ हो जाता।"

"नहीं महाराज," जनार्दन बोला –"मुझी पर तो रानी का पूरा कोप है। उन्होंने मुझे मरवा डालने का प्रण किया है। मेरे द्वारा वह काम और भी दुष्कर होता।"

राजा ने हँसकर कहा—"वह तो इस समग्र संसार को दूसरे लोक में उठा भेजने की धमकी देती रहती हैं। मैं ऐसे पागलों की बहँक की कुछ भी परवा नहीं करता। मैं चाहता हूँ, रानी का अब किसी तरह का अपमान न किया जाय, और पहरा बहुत हल्का कर दिया जाय। वह राजमाता हैं। आदर की पात्री हैं। केवल इतनी देख-भाल की ज़रूरत है, जिसमें संकट उपस्थित न कर सकें।'

"यह बात ज़रा कठिन है महाराज! पहरा कठोर न रहेगा, किसी दिन पूर्ववत् महल से निकल भागकर फिर विद्रोह खड़ा कर देंगी।" जनार्दन दृढ़ता के साथ बोला।

राजा ने एक क्षण सोचकर कहा—"तब उन्हें बड़ी रानी के महलों में एक ओर रख दो। वहाँ पहले ही से बहुत नौकर-चाकर और सैनिक रहते हैं। पहरा काफ़ी बना रहेगा, और रानी को खटकने न पावेगा।"

इस प्रस्ताव को ध्यान-पूर्वक न सोचकर जनार्दन ने स्वीकार कर लिया।

राजा बोले—"और, यदि वह लिखा-पढ़ी न कराई जाय, तो क्या हानि होगी? सब जानते हैं, मैं राजा हूँ। एक रानी के मानने या न मानने से क्या अंतर पड़ेगा?"

"जो लोग महाराज," जनार्दन ने उत्तर दिया—"भीतर-ही-भीतर राज्य से फिरे हुए हैं, उनके लिये लिखा-पढ़ी अमोघ अस्त्र काकाम

देगी। डाँवाडोल तबियत के आदमियों के लिये इतना ही सहारा बहुत हो जायगा।"

राजा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। इसके बाद दोनो छोटी रानी के पास गए। वहाँ पहुँचने के पहले देवीसिंह ने कहा—"पंडितजी, बातचीत आपको करनी पड़ेगी। मैं बहुत कम बोलूँगा।"

जनार्दन को कुछ कहने का मौक़ा न मिला। दोनो रानी के पास पहुँच गए। रानी पर्दे में थीं। राजा ने देहरी पर माथा टेककर प्रणाम किया। रानी ने आशीर्वाद नहीं दिया।

बोलीं—"जनार्दन को यहाँ से हटा दो।"

देवीसिंह इस तरह के अभिवादन की आशा नहीं रखता था। सन्नाटे में आ गया। उसे अवाक् होता देख जनार्दन आगे बढ़ा। कहने लगा—"मेरे ऊपर आपका जो रोष है, सो उचित ही है, परंतु यदि आप विचार करें, तो समझ में आ जायगा कि वास्तव में मेरा अपराध कुछ नहीं। और, मान लिया जाय कि मैं अपराधी ही हूँ, तो भी आपको माता के बराबर मानता हूँ, इसलिये क्षमा के योग्य हूँ। मैंने जो कुछ किया है, राज्य के उपकार के लिये किया है—"

रानी ने टोककर कहा—"हम जो दर-दर मारे-मारे फिर रहे हैं, हमारे साथ जो छोटे-छोटे आदमी पशुओं जैसा बर्ताव कर रहे हैं, हमें जो बंदी-गृह में डाल रक्खा है, वह सब राज्य का उपकार ही है न पंडितजी? स्मरण रखना, इस लोक के बाद भी कुछ और है, और देर-सबेर वहीं जाओगे।"

"सो मुझे सब मालूम है।" जनार्दन ने कहा—"आपकी मेरे ऊपर जैसी कुछ दया-दृष्टि है, वह भली भाँति प्रकट है, परंतु प्रार्थना है कि अब ऐसा निर्देश कीजिए, जिसमें राज्य का कुशल-मंगल हो।"

राजा ने जनार्दन से पूछा—"रामदयाल कहाँ है?"

रानी ने तुरंत उत्तर दिया - "क़ैदखाने में, पैकरे डाले हुए। और, मुझे जितनी स्वतंत्रता दे रक्खी है, उसका बड़प्पन इससे नापा जा सकता है कि स्नान करते समय भी दो-तीन बाँदियाँ नंगी तलवार लिए सिर पर तनी रहती हैं। एक शूरवीरता का काम तुम लोगों के लिये रह गया है—मुझे विष दिलवा दो, या तलवार से कटवाकर फिकवा दो।"

जनार्दन कुछ कहना चाहता था, परंतु राजा ने आँख के संकेत से मना कर दिया, और स्वयं बोला—"रामदयाल को मैं इसी समय मुक्त करता हूँ। वह सदा आपकी चाकरी में रहेगा, और आप बड़ी कक्कोजू वाले महल में चली जायँ।"

"न।" रानी ने कहा—"मैं इसी क़ैदखाने में अच्छी, जो पहले मेरा ही महल था, आज यातना-गृह हो गया है। इसी में बने रहने से तुम लोगों की शुभ कामना अच्छी तरह पूर्ण हो सकेगी। मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी।"

"जाना होगा।" राजा बोले—"कक्कोजू, यदि तुम यहाँ से उस महल में न जाओगी, तो मैं सेवा करने के लिये इसी स्थान पर आ रहूँगा।"

रानी कुछ देर चुप रहीं।

जनार्दन ने कहा—"आप इसे भी हम लोगों के किसी स्वार्थ की प्रेरणा समझेंगी। परंतु कृपा करके अब शांति के साथ रहिएगा। सोचिए, आपने इस राज्य के नाश करने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी। अलीमर्दान को बुलवाया, जो पालर के मंदिर का नाश करने के लिये कटिबद्ध रहा है, जो दुर्गा के अवतार को भ्रष्ट करने का निश्चय करके आया था। आप यदि यहीं रहना पसंद करती हैं, तो बनी रहें, किया ही क्या जा सकता है?"

"झूठ, झूठ, सब झूठ।" रानी ने कड़ककर कहा—"यह सब

जनार्दन का रचा हुआ माया-जाल है। किस तरह तुम्हीं ने मेरे स्वामी को दवा दे-देकर अधोगति को पहुँचाया, न-जाने क्या खिला-खिलाकर फिर रोग-मुक्त न होने दिया, और अंत में प्राण लेकर ही रहे, और फिर—"रानी का गला रुँध गया।

राजा बीच में पड़ना चाहते थे, पर यह समझ में न आता था कि इस अवसर पर किस तरह बात को टालकर सांत्वना दी जाय।

जनार्दन ने कहने का निश्चय कर लिया, और बोला—"और फिर क्या रानी? राजा ने जो कुछ आज्ञा दी, उसका मैंने पालन किया। जिसके भाग्य में भगवान् ने राज्य लिखा था, उसे मिला; आप यों ही हम लोगों की जान की गाहक बन बैठी हैं। महाराज आपके सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करने की योजना करते हैं, तो आप व्यर्थ अपने कष्टों को बढ़ाने की चिंता में निरत हो जाती हैं।"

राजा ने कहा—"मैंने रामदयाल को मुक्त कर दिया है। आप उसे तुरंत यहाँ भेजें।"

जनार्दन रामदयाल को लेने के लिये गया।

राजा ने कहा "कक्कोजू आप पंडितजी पर क्रोध न करें। राज्य सँभालने के लिये उन्हें अपना काम करना पड़ता है।"

"कक्कोजू मुझे मत कहो।" रानी ने रोते हुए कहा—"मैं राजा की रानी हूँ, और तुम्हारी कोई नहीं। यदि कोई होती, तो क्या लोचनसिंह इत्यादि मेरा ऐसा अपमान कर पाते?"

"जो कुछ हुआ, वह अनिवार्य था कक्कोजू।" राजा बोले—"जो कुछ हुआ, उसका स्मरण छोड़ दीजिए। आगे जो कुछ करूँगा, आपकी आज्ञा से।"

"जिसमें मैं तुम्हें लिखा-पढ़ी कर दूँ कि राज्य का हक़ छोड़ दिया।" रानी ने रोना बंद करके, चमककर कहा—"यही है न तुम्हारी दयालुता के मूल में?"

राजा ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। बाँदियों से रानी के आराम के विषय में बातचीत करने लगे। इतने में रामदयाल को लेकर जनार्दन आ गया।

राजा ने रामदयाल से कहा—"कक्कोजू को बड़ी कक्कोजू वाले महल में पहुँचा दो। उन्हें यदि किसी तरह का कष्ट हुआ, तो तुम्हें संकट में पड़ना होगा।"

रानी बोलीं—"तुम उसकी खाल खिंचवाओ, और जनार्दन मेरी खाल खिंचवाए।"

इस व्यंग्य का कोई प्रतिवाद न करके दोनों वहाँ से चले गए।

---

(३६)

बड़ी रानी के महल में छोटी रानी को रखने के बाद जनार्दन ने सोचा, अच्छा नहीं किया। एक तो यह कि छोटी रानी शायद उन्हें भी विचलित करने की कोशिश करें, और दूसरे यह कि वहाँ निकल भागने का अधिक सुबीता था। उसे इस बात का पछतावा था कि राजा की भावुकता का नियंत्रण न कर पाया, और स्वयं भी एक छोटे-से कष्ट से बचने के लिये दूसरे बड़े संकट में जा पड़ा।

राजा ने छोटी रानी को बड़ी रानी के भवन में भेज देने के बाद पहरा शिथिल कर दिया, और रामदयाल को उनकी सेवा में बने रहने की अनुमति दे दी। जो लोग बड़ी रानी की टहल में रहते थे, उन्हीं से छोटी रानी पर निगरानी रखने के लिये चुपचाप कह दिया।

परंतु निगरानी नहीं हुई। राजा के साथ उस दिन जो वार्तालाप छोटी रानी का हुआ था, वह लोगों पर प्रकट हो गया। उसी के बाद पहरा ढीला कर दिया गया था। किसे क्या पड़ी थी कि प्रकट व्यवहार को भूलकर गुप्त आदेश का अक्षरशः अनुसरण करे। जिन

लोगों को यह काम सौंपा गया था, उन्हें यह भी भय था कि यदि कभी कोई बात राजा की मर्ज़ी के खिलाफ़ हो गई, तो जान पर बन आवेगी। और, राजा की मर्ज़ी कब क्या है, इस बात का पता लगा लेना किसी साधारण टहलुए या सिपाही के लिये संभव नहीं था।

इस ग़लती को जनार्दन ने राजा को सुझाया भी, परंतु उन्होंने यह कहकर जनार्दन को शांत करने की चेष्टा की कि विश्वास करने से विश्वास उत्पन्न होता है। जनार्दन ने ऊपर से तो कुछ नहीं कहा, परंतु विश्वस्त गुप्तचर नियुक्त कर दिए। महल के टहलुओं में से इन्हें कोई-कोई पहचानते थे। गुप्तचरों के विषय में परस्पर काना-फूसी हुई, वास्तविक स्थिति का अनुमान करने के लिये इधर-उधर के अटकल लगे, चर्चा बढ़ी। रामदयाल को भी मालूम हो गया। दोनो रानियों के लिये भी वह भेद रहस्य न रह गया। छोटी रानी को विश्वास हो गया कि देवीसिंह इस क्रूरता के लिये ज़िम्मेदार नहीं है, बल्कि जनार्दन—पुराना शत्रु जनार्दन—है। बड़ी रानी को अपने भवन में छोटी रानी का आगमन अच्छा नहीं मालूम हुआ। राजा ने क्यों ऐसा किया? जनार्दन का इसमें क्या मतलब है? मेरे ही महल में क्यों इस विपद् को रक्खा? इत्यादि प्रश्न बड़ी रानी के मन में उठने लगे।

बड़ी रानी का स्वभाव गिरती पाली का साथ देने का न था, परंतु अपने पूर्व वैभव की स्मृति को जाग-जाग पड़ने से रोकना किसकी सामर्थ्य में है? छोटी रानी के लिये उनके हृदय में शायद ही कभी प्रेम रहा हो, परंतु उनके कष्टों और अपमानों की बढ़ी हुई, बहुत बढ़ाई हुई, गाथा सुनकर मन खीझने लगा। उस क्षोभ का वह किसी को भी लक्ष्य नहीं बनाना चाहती थीं। राजा देवीसिंह की ओर उनके मन की प्रवृत्ति संधि की तरफ़ हो चुकी थी, और उन्होंने अपनी वर्तमान अनिवार्य स्थिति के ऊपर क़रीब-क़रीब क़ाबू

कर लिया था। परंतु उजड़े हुए गौरव को लुटा हुआ बतलानेवालों की कमी न थी। दलित महत्त्वाकांक्षा का पुरा हुआ घाव कभी-कभी हरा होकर, निःश्वास के रूप में गल-गलकर बाहर आ जाता था।

छोटी रानी की उपस्थिति ने खीझ, क्षोभ और दलित हृदय की आहों का सिलसिला जारी कर दिया। मन की इस अवस्था में जनार्दन के गुप्तचरों की निगरानी के समाचार ने उन्हें इस बात के सोचने पर विवश किया कि छोटी रानी को जैसा थोथा आश्वासन, विना किसी विघ्न-बाधा के जीवन-यापन कर लेने का, दिया है, उसी तरह का मुझे भी दिया गया है, क्योंकि जिस तरह चुपचाप उनके ऊपर चौकसी रहती है, उसी तरह अवश्य ही मेरे ऊपर भी रहती होगी।

दो ही तीन दिन के बाद छोटी रानी से सलाह करके रामदयाल बड़ी रानी के पास पहुँचा। जब तक दासियाँ पास रहीं, तब तक वह केवल शिष्टाचार की बातें करता रहा। रानी समझ गई कि किसी गुप्त-चर की उपस्थिति के कारण रामदयाल हृदय-तल की बात कहने से झिझक रहा है। अपनी निज की दासियों में भी कोई गुप्तचर नियुक्त है, इस कल्पना पर रानी का जी जल उठा। दासियों को हटाकर रानी ने रामदयाल के साथ अधिक स्वतंत्र वार्तालाप की आशा की।

रामदयाल ने दासियों के चले जाने पर कहा—"वह आपसे छोटी हैं। आप क्या उनके किए-न-किए को क्षमा न कर देंगी? जो दुःख आपको है, वही उन्हें भी है।"

ठंडी साँस लेकर रानी ने कहा—"उनमें और सब गुण हैं, केवल एक वाणी उनके क़ाबू में होती, तो वृथा का झंझट आपस में कभी न होता। उनके कष्ट और अपमान की बात सुनकर हृदय बैठ जाता है।"

रामदयाल ने इधर-उधर की बातें करने के सिवा उस समय और कुछ नहीं कहा।

जाते समय बोला—"यदि कक्कोजू आपके पास आएँ, तो क्या आपको अखरेगा ?"

बड़ी रानी की पूजा उनके स्वाभिमान के माप से अधिक हो गई। आँखें छलक पड़ीं। रुद्ध कंठ से कहा—"वह क्या कोई और हैं ? अवश्य आवें।"

"बहुत अच्छा महाराज।" कहकर रामदयाल चला गया।

'महाराज'-शब्द के संबोधन में खोखलेपन की पूरी झाईं अवगत करके बड़ी रानी को अपनी असमर्थ अवस्था पर परिताप हुआ।

(४०)

नियुक्त समय पर छोटी रानी बड़ी रानी के पास आईं। बड़ी का चरण-स्पर्श द्वारा अभिवादन किया। बड़ी ने आशीर्वाद देना चाहा। क्या आशिष देतीं ? कोई गुप्त वेदना हृदय में जाग पड़ी, और मुख पर आँसुओं की बूँदें ढलक आईं। छोटी रानी भी घूँघट मारे रोईं, परंतु बड़ी रानी को यह नहीं मालूम हुआ कि उनके आँसुओं ने घूँघट को भिगो पाया या नहीं।

बड़ी रानी की समझ में जब कुछ समय तक यह न आया कि कौन सी बात पहले कहूँ, तब छोटी रानी बोलीं—"जो कुछ मुझसे बुरा-भला बना हो, उसे बिसार दिया जाय, क्योंकि अब यह सोचना है कि इतने बड़े जीवन को कैसे छोटा किया जाय।"

बड़ी ने कहा—"मैं तो आज ही जीवन को समाप्त करने के लिये तैयार हूँ; अब और क्या देखना है, जिसके लिये जियूँ।"

छोटी रानी ने ज़रा घूँघट उघारा। बोलीं—"मैं केवल एक अनुष्ठान के लिये अब तक जीवन बनाए हुए हूँ। बात फैल भी गई है, परंतु मुझे उसकी चिंता नहीं। आज्ञा हो, तो सुनाऊँ ?"

"अवश्य, अवश्य।"

"जनार्दन हम लोगों के सर्वनाश की जड़ है।"

"अब उसकी चर्चा ही व्यर्थ है।"

"वह चर्चा अमिट है। क्या भूल गईं, किस तरह से उसने महाराज के हस्ताक्षर का जाल किया? किस तरह उसने एक अनजान लड़के को अपना खिलौना बनाकर सारे राज्य की बागडोर अपने हाथ में कर रक्खी है?"

इन प्रश्नों का बड़ी रानी ने कोई उत्तर नहीं दिया। नीचा सिर कर लिया।

छोटी रानी ने ज़रा धीमे होकर कहा—"असल में हम लोग राज्य के अधिकारी हैं। बिरानों को अपनी संपत्ति भोगते देखकर छाती सुलग जाती है। यही मेरा दोष है, यही मेरा पाप है।"

"पर इसका प्रतीकार ही क्या हो सकता है? जो भाग्य में लिखा है, सो होकर रहेगा।"

"हमारे भाग्य में यह सब दुःख और जनार्दन के भाग्य में हमारा अपमान करना ही लिखा है, यह अभी कैसे कहा जा सकता है?"

बड़ी रानी छोटी का मुँह ताकने लगीं।

छोटी रानी ने उत्तेजित होकर कहा—"हमारे भाग्य में राज्य लिखा है प्रजा पालन लिखा है, और जनार्दन के भाग्य में प्राण-वध का दंड बदा है। मुझे देवी ने सपना दिया है।"

देवी के सपने की बात सुनकर बड़ी रानी बोली—"अलीमर्दान को तुमने क्यों निमंत्रण दिया? इसे लोग अच्छा नहीं कहते।"

"न कहें अच्छा।" छोटी ने कहा—"कष्टों से पार पाने के लिये मैंने उसके पास राखी भेजी थी। और क्या करती?"

"वह देवी का मंदिर तोड़ने आया है।"

"नहीं।"

"और मंदिर की पुजारिन को, जो देवी का अवतार भी मानी जाती है, नष्ट करने।"

"इसमें बिलकुल तथ्य नहीं। हमारे विरुद्ध प्रजा को उभाड़ने के लिये ही जनार्दन इत्यादि ने यह षड्यंत्र खड़ा किया है।"

"लोचनसिंह सौगंद खाकर कहता है।"

"ओह! उस नीच, नराधम पशु की बात मत कहो। उस-जैसी हृदय-हीनता पत्थर की शिलाओं में भी न होगी। ऐसा मूर्ख, ऐसा अभिमानी—"

बड़ी रानी ने धीरे से छोटी रानी की उग्रता के बढ़ते हुए वेग को रोकने के लिये टोककर कहा—"अपने स्वभाव को अपने हाथ में रक्खो। जो कुछ करो, समझ-बूझकर करो। हमारे निर्बल हाथों में कोई शक्ति नहीं, जो सरदार किसी समय तरफ़दार थे, उनके जी मुरझा गए हैं। अब कदाचित् कोई साथ न देगा।"

"यह सब पाजीपन जनार्दन का है।" छोटी रानी ने धारा प्रवाह में कहा—"जिस समय सरदार मुझे नंगी तलवार लिए घोड़ी की पीठ पर देखेंगे, उस समय उनके बाहु फड़क उठेंगे। न्याय और धर्म का साथ देने में मनुष्यों को विलंब नहीं होता। बिखरी हुई, सोई हुई शक्तियाँ, मुर्झाई हुई अचेत आत्माएँ धर्म के लिये सिमटकर प्रचंड रूप धारण करती हैं, और—"

उद्दंड प्रबलता के इन काल्पनिक चित्रों से ज़रा भयभीत होकर बड़ी रानी बोली—"तुम ठीक कहती हो, परंतु इस विषय पर फिर कभी शांति के साथ बातचीत होगी, तब तक सावधानी के साथ अपनी बात अपने मन में रक्खो।"

"मैं किसी से नहीं डरती।" छोटी रानी ने कहा—"मन की बात मन में ही बंद कर लेने से वह वहीं की होकर रह जाती है। आपको

सीधा पाकर ही तो इन लोगों की बन आई है। आप कैसे इन लोगों की करतूतों को सहन करती हैं ?"

इसका उत्तर बड़ी रानी ने एक लंबी साँस लेकर दिया। थोड़ी देर में छोटी रानी चली गई। बड़ी रानी ने सोचा—"यदि मैं छोटी के साथ अपनी शक्ति को मिला देती, तो ये दिन सिर पर न आते। मैं अपने को निस्सहाय, निराश्रय समझकर ही इस हीन दशा को पहुँची हूँ।"

---

(४१)

कुंजरसिंह अपने साथियों को लेकर अँधेरे में सिंहगढ़ से निकल आया था। सिंधु-नदी के उत्तर ओर, कई कोस तक, दलीपनगर का राज्य था—वन और पर्वतों से आकीर्ण; परंतु कोई दृढ़ क़िले उस ओर नहीं थे। जहाँ दलीपनगर की सीमा ख़त्म हुई थी, वहाँ से कालपी का सूबा शुरू हो गया था। उस ओर चले जाने पर दलीप-नगर के दीर्घक्षेत्र से संबंध टूट जाता, और कोई पक्का आश्रय मिलता नहीं। ऐसी दशा में उसने पूर्व की ओर, पहूज और बेतवा-नदियों के आस-पास, ठहरकर अपनी टूटी हुई शक्ति को फिर से जोड़ने का निश्चय किया। उसके संगी भी राज़ी हो गए, परंतु साथ बहुत थोड़ों ने दिया। गिरती हुई अवस्था में भी आशा के बल पर साथी बलिदान करने के लिये अनुप्राणित रहते हैं, परंतु निराशा की दशा में बलिदान लगभग असंभव हो जाता है। इसलिये कुंजरसिंह के साथियों की संख्या क्रमशः कम होती चली गई।

सिंहगढ़ से निकलने के उपरांत दो-एक दिन भटकने में लग गए। शीघ्र किसी निश्चय पर पहुँच जाने का अभ्यास न होने के कारण कभी उत्तर और कभी पूर्व की ओर भटकते गए। पहूज के निकट की उर्वरा, शस्य-श्यामला भूमि शीघ्र त्यागकर वन में पहुँचे। वहाँ भी

एकआध दिन ही रह पाए। अंत में २५-३० कोस की उद्देश्य-हीन यात्रा समाप्त करके इन लोगों ने बेतवा-किनारे के घोर वन और सुरक्षित गढ़ों की ओर दृष्टि डाली।

कुछ ही समय पहले प्रसिद्ध चंपतराय ने बेतवा के जंगल-भर को और इन छोटे-छोटे क़िलों के आश्रय से मुग़ल-सम्राट औरंगज़ेब की नाकों दम करके बुंदेलखंड की स्वाधीनता का अनुष्ठान किया था। अभी लोगों को वे दिन याद थे। कुंजरसिंह की धारणा और विचार पर भी उस स्मृति का प्रभाव पड़ा। उसने बिराटा और रामनगर के गढ़ों के पड़ोस में अपनी योजना सफल करने की ठानी। इन गढ़ों के पड़ोस में वह पहुँच चुका था।

झाँसी से पूर्वोत्तर-कोण में बिराटा की गढ़ी, जिसका अवशेष अब एक मंदिर-मात्र है, पच्चीस मील की दूरी पर है। रामनगर और बिराटा में केवल कोस-भर का अंतर है। दोनो बेतवा के किनरे, भयकर वन में छिपे-से, अर्द्ध-भग्नावस्था में, अब भी पड़े हैं।

बिराटा से दो कोस दक्षिण-पश्चिम की ओर मुसावली एक छोटा-सा उजड़ा गाँव है। उन दिनों भी वह बड़ी जगह न थी। परंतु छिपाव और रक्षा का साधन वहाँ सदा रहा है। नालों और काँटेदार पेड़ों की विस्तृत भरमार है। मुसावली की पहाड़ी इस जंगल की ओट का काम करती है।

उन दिनों बिराटा में दाँगी राजा राज्य करता था, और रामनगर में एक बुंदेला-सरदार रहता था। ये दोनो कभी पूर्ण स्वतंत्र नहीं रहे, परंतु इनकी अधीनता भी नाम-मात्र की थी। कभी कालपी को कर देते थे, कभी ओरछा को और कभी किसी को भी नहीं।

औरंगज़ेब के काल तक ये लोग भांडेर या कालपी के मुग़ल-सूबेदारों की मार्फ़त मुग़ल-सम्राटों को कर चुकाते रहे। औरंगज़ेब की दक्षिणी चढ़ाइयों के समय शासन शिथिल हो गया। उसके

मरने के उपरांत जो राजनीतिक भूकंप आया, उसमें ये लोग क़रीब-क़रीब स्वाधीन हो गए। स्वाधीनता-यज्ञ के बड़े यजमानों का ये लोग साथ देते रहते थे, परंतु स्वयं खुल्लमखुल्ला किसी शक्ति के कोप को उत्तेजित नहीं करते थे। इसीलिये इतने दिनों बचे रहे।

चंपतराय ने ऐसे लोगों का ख़ूब उपयोग किया था। कुंजरसिंह ने भी इनके उपयोग को ही अपना एकमात्र आश्रय निर्धारित किया।

परंतु एकाएक इनमें से किसी के पास सहायता माँगने के लिये पहुँचना उसने उचित नहीं समझा।

उसने सोचा, मुसावली में पहुँचकर स्थिति का निरीक्षण और बिराटा तथा रामनगर के सरदारों से मिलकर अपने बल की पुनः स्थापना करूँगा। यदि यह संभव न हुआ, तो बिराटा-वन के किसी अदृश्य स्थान में भगवती दुर्गा का स्मरण करते-करते जीवन समाप्त कर दूँगा। और, कदाचित् अलीमर्दान इस स्थान पर किसी मतलब से चढ़ाई करे, तो उसके निरोध में शरीर-त्याग करना राज्य-प्राप्ति से भी बढ़कर होगा। उसे मालूम था कि कुमुद कहीं बिराटा के आस-पास ही है।

परंतु इस योजना में कुंजरसिंह के बचे-खुचे सरदार ऊपर से ही सहमत हुए, भीतर से उन्हें इस योजना की अंतिम सफलता पर कोई विश्वास न था। दो-तीन दिन बाद ये लोग भी अपने घरों को चले गए, और समय आने पर सहायता करने का वचन दे गए।

अलीमर्दान को इस तरह की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा। पालरवाले दस्ते को उसने झाँसी के उत्तर में, १०-१५ कोस के फ़ासले पर, पहूज के किनारों पर पा लिया। वहाँ से वह भांडेर चला गया। कालेख़ाँ भी उसे भांडेर में आकर मिल गया। वहीं से अलीमर्दान आगे की कतर-ब्योंत का हिसाब लगाने लगा।

(४२)

कुंजरसिंह मुसावली में एक अहीर के घर ठहर गया था। घर से लगा हुआ, कांटों की बिरवाई से घिरा, एक बेड़ा था। उसमें कुंजरसिंह घोड़ा बँधाकर स्वयं घर के एक कोने में अकेला जा बसा।

बिरवाई से लगे हुए ३-४ महुए के पेड़ थे। महुओं के पीछे से एक चक्करदार नाला निकला था। दूसरी ओर वह पहाड़ी थी, जो मुसावली-पाठा कहलाती है। एक ओर बीहड़ जंगल। कुंजरसिंह महुओं के नीचे गया। अहीर की कुछ भैंसें नाले के पास चर रही थीं, कुछ महुए के नीचे ऊँघ रही थीं। एक लड़का कुछ धूप कुछ छाया में सोता हुआ जानवरों की देख-भाल कर रहा था।

घास आधी हरी, आधी सूखी थी। करधई के पत्ते पीले पड़-पड़कर गिरने लगे थे। नाले का पानी अभी नहीं सूखा था—कुछ भैंसें उसमें लोट-लोटकर शब्द कर रही थीं! चिड़ियाँ इधर-से-उधर उड़कर शोर कर रही थीं। सूर्य की किरणों में कुछ तेज़ी और हवा में थोड़ी उष्णता आ गई थी। कुंजरसिंह अपने घोड़े के सामने घास डालकर महुए के नीचे आया। जो भैंसें दूर पर बैठी ऊँघ रही थीं, एकाएक उठ खड़ी हुईं। चरवाहे की आँख खुल गई। पास में कुजरसिंह को देखकर लड़के ने अपनी उठाई हुई लाठी को नीचा कर लिया। बोला—"दाउजू, सीताराम।" प्रणाम का उत्तर देकर कुंजरसिंह पेड़ की जड़ से टिक्कर बैठ गया। लड़का विना किसी संकोच के एकटक कुंजरसिंह की ओर देखने लगा। उस चरवाहे के शरीर पर एक फटी हुई अँगरखी थी। घुटना चढ़ाए, मैला अँगौछा पहने था; आँखों में एक निर्मल, निर्भय दृढ़ता थी।

कुछ देर टकटकी लगाने के बाद बोला—"दाउजू, अबै दर्सन नईं भए का?"

लड़के की सहज, सरल निर्भयता और प्रश्न की विचित्रता से ज़रा आकृष्ट होकर कुंजरसिंह ने प्रश्न किया—"किसके दर्शन भाई ?"

"एल्लो ! हमईं तों टिटकरी करन आए ! दर्सन खों नइं आए, इतै तौ कायके लानै आए इत्ती दूर सें ? संसार-भर के राजा-राव नित्त आउत रहत ।"

लड़के के बेधड़क संबोधन से कुंजरसिंह ज़रा चकराया, क्योंकि महल और क़िले के वातावरण में इस तरह की स्वच्छंदता उसने नहीं देखी थी। उसकी समझ में प्रश्न नहीं आया था, परंतु उस प्रश्न ने किसी गुप्त कौतूहल को जाग्रत् किया। कुंजरसिंह उपेक्षा के भाव को छोड़कर बोला—"हम कितनी दूर से आए हैं, तुम्हें मालूम है ?"

"पालर सें ।"

"अच्छा, बतलाओ, हम किसके दर्शन के लिये आए हैं ?"

"जीके दर्सन खों हमाओ दद्दा कभउँ-कभउँ जात। का ओ दाउजू, हमने जान लई कै नईं ? हमखों कौन काऊ ने बताई, पै हम तो जान गए ।"

कुंजरसिंह चौंक पड़ा। पालर से आना तो उसने ही चरवाहे के पिता को बतलाया था, परंतु आने का प्रयोजन उसने कुछ और ही ज़ाहिर किया था। कुंजरसिंह को अनुमान करने में विलंब नहीं हुआ कि किसके दर्शन की ओर लड़के का भोला संकेत था। उससे कहा—"तुम्हारे साथ चलेंगे, कब जाओगे ?"

लड़के ने उत्तर दिया—"जब चाए, तब। कौन दूर है ? इतै सें दो कोस तो हैई। हमाई एक भैंस कें दूध नइं निकरत, सो बिनती के लानें कालई-परौं जैहैं ? तुम जौ कुछू माँगो, सो तुमें सोऊ मिल जैय ।"

कुंजरसिंह के हृदय में गुदगुदी पैदा हुई। उसने कल्पना की कि पूजा और वरदान का स्थान एक कोस पर बिराटा ही है। पूरा

पता लगाने के प्रयोजन से पूछा—"रास्ता क्या बहुत बीहड़ में होकर है ? यहाँ से तो मंदिर दिखाई नहीं देता।"

"पाठे पै होकें सब दिखात," लड़का बोला—"बिराटा की गढ़ी दिखात और देवी कौ मंदिर दिखात। ठीक नदी के बीच में बिराजमान हैं। ए दाउजू, हमने जब पैलउँपैल देखौ, तब आँखें मिच गईं हतीं। उनके नेत्रन में से झार-सी निकर रईं हती।"

कुंजरसिंह को विश्वास हो गया कि यह वर्णन कुमुद का है। तो भी और अधिक जानकारी पाने की ग़रज़ से कहा—"कब से आई हैं यह देवी ?"

"सदा सें।" लड़के ने चकित होकर जवाब दिया—"उनकौ कछू आद-अंत थोरक सौ है।"

इसके बाद उस सीधे लड़के ने देवी की करामातों की गिनती का ताँता बाँध दिया।

वह कहता गया। कुंजरसिंह कुछ और सोचने लगा—"सदा से ही यहाँ पर हैं ? यह असंभव है। यदि वही हैं, तो कुछ ही दिन आए हुए होंगे। परंतु यदि वही होतीं, तो लड़का सदा से यहीं रहने की बात न कहता। शायद कोई और हो। शायद यह और ही कोई अवतार हो। जो कुछ भी हो। एक बार दर्शन अवश्य करूँगा।"

कुंजरसिंह ने लड़के से उक्त देवी के विषय में और भी अनेक प्रश्न किए, परंतु उसे कोई अभीष्ट उत्तर न मिला।

निदान उसने लड़के के पिता से पूछ-ताछ करने का निश्चय किया। चिड़ियों की विभिन्न चहचहाहट और अपनी दुर्दशाओं की विशृंखल गणना में कुंजरसिंह ने संध्या तक का समय किसी तरह व्यतीत किया। सूर्यास्त के पहले, दूर के खेत पर से, गृह-स्वामी जब आया, तब कुंजरसिंह ने अवसर प्राप्त होते ही उससे कहा—"देवी के दर्शन करके मैं यहाँ से दो-चार दिन में चला जाऊँगा।"

कृषक बोला—"सो काए? ऐसी का जल्दी परी दाउजी? जो कछू लटौ-दूबरौ कनूका हमाए गाँठ में हैं, सो नजर है। हमसें ऐसी का बिगरी कि अबई जावौ हो जैय?"

कृषक के इस सरल और सच्चे आतिथ्य-हठ से कुंजरसिंह का जी भर आया। घर पर चढ़ी हुई कदुए की बेलों को देखते हुए कुंजरसिंह ने कहा—"माते, हम तो सिपाही हैं, न-जाने अभी कहाँ-कहाँ भटकना पड़े। देवी के दर्शन करके कार्य-सिद्धि के पीछे यदि बचे रहे, तो फिर तुमसे आकर मिलेंगे।"

"जैसी मर्जी।" अहीर ने कुछ उदास होकर कहा। एक क्षण के बाद बोला—"मैं परौ दर्सन करबे जैहों, तबई चलवौ होवै। आज-काल बड़ौ हूला-चालौ मचौ है। कछू दिना इतै बनौ रैवौ हुइए, तौ मोरी मड़ैया बची रैय।"

किसान के इस प्रकट स्वार्थ पर कुंजरसिंह क्षुब्ध नहीं हुआ। उसने विश्वास दिलाते हुए कहा—"अच्छा।"

---

(४३)

छोटी रानी की वाग्मिता बड़ी रानी को अधिक आकृष्ट करने लगी, और दोनो एक दूसरे से बहुधा मिलने-जुलने लगीं। थोड़े ही दिनों में दोनो के बीच का बहुत दिनों से चला आनेवाला अंतर कम हो गया। राजा को इस मेल-जोल पर संतोष हुआ, परंतु जनार्दन को इसमें श्रद्धा के योग्य कुछ न दिखलाई दिया।

एक दिन बहुत लगन के साथ छोटी रानी बड़ी रानी से बातें कर रही थीं। बातचीत के सिलसिले में छोटी रानी ने कहा—"जब तक हम लोग इस बंदी-गृह में बैठी-बठी दूसरों का मुँह ताकती रहेंगी, तब तक कोई सरदार मैदान में नहीं आवेगा। बाहर निकलते ही बहुत-से सरदार साथ हो जायँगे।"

बड़ी रानी थोड़ी देर पहले कही हुई एक बात को दुहराते हुए बोलीं—"इसमें कोई संदेह नहीं कि इस राज्य के असली अधिकारी क़ैद में हैं, और जिसे क़ैद में होना चाहिए, वह राजदंड हाथ में लिए है।"

"परंतु उसके छीनने की शक्ति अब भी हमारे हाथ में है।" छोटी रानी ने उत्तर दिया।

बड़ी रानी ने पूछा—"मुझे केवल एक बात का भय है कि यदि तुम्हारी योजना असफल हुई, तो रक्षा का यह एक स्थान भी पास न रहेगा।"

"रक्षा का! इस बंदी-गृह को आप रक्षा का स्थान बतलाती हैं! मेरे लिये तो सबसे बड़ी रक्षा का साधन घोड़ा, तलवार और रण-क्षेत्र हैं।"

"मैं भी मानती हूँ, और यदि काफ़ी तादाद में सरदार लोग सहायता के लिये आ गए, तो सब काम बन जायगा। परंतु यदि ऐसा न हुआ, तो प्रलय की आशंका है।"

"ज़रा भी नहीं। दृढ़ निश्चय के साथ जो काम किया जाता है, वह कभी असफल नहीं होता, थोड़ी देर के लिये मान लीजिए, असफल भी हो गए, तो इस अवस्था की अपेक्षा स्वतंत्र विचरण फिर भी बहुत अच्छा होगा।"

"तो यहाँ लौटकर नहीं आवेंगी, यह निश्चित है।"

"असफलता का कोई कारण नहीं मालूम होता। असफलता ही हुई, तो इस जीवन से मरण अच्छा। आप किस बात से डरती हैं?"

बड़ी रानी ने निश्चय-पूर्ण स्वर में कहा—"मुझे कोई डर नहीं, मैं डरती किसी को भी नहीं। परंतु यह कहती हूँ कि जो कुछ करो, सोच-समझकर।"

छोटी रानी अधिकतर निश्चय-पूर्ण स्वर में बोलीं—"बिलकुल सोच-समझ लिया है।"

"रामदयाल अपने पक्ष के कुछ सरदारों से मिल चुका है। वे लोग नए राजा से असंतुष्ट हैं, परंतु जब तक हम लोग महलों में बंद हैं, तब तक वे लोग अपनी निज की प्रेरणा से कुछ नहीं कर सकते। बाहर निकल पड़ते ही ठठ-के-ठठ सरदार आ पहुँचेंगे।"

"यहाँ से चलकर ठहरोगी कहाँ?" बड़ी रानी ने ज़रा संकोच के साथ पूछा।

"कहीं भी, दलीपनगर के बाहर कहीं भी। सिंह की गुफा में, नदी की तली में, पहाड़ के शिखर पर, कहीं भी।" छोटी रानी ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया—"हमारे स्वामिधर्मी सरदार कहीं भी हमारी सहायता के लिये आ सकते हैं।"

बड़ी रानी ने प्रतिवाद करते हुए, कुछ रुखाई के साथ कहा—"मैं इस तरह की यात्रा के प्रस्ताव से सहमत नहीं हो सकती। व्यर्थ मारे-मारे फिरने से तो यहीं अच्छा।"

छोटी रानी तुरंत रुख बदलकर बोलीं—"रामनगर के राव के यहाँ ठिकाना रहेगा। वहाँ से अलीमर्दान की भी सहायता सहज हो जायगी। सिंहगढ़ पर चढ़ाई उसी ओर से अच्छी तरह हो सकती है।"

छोटी रानी के ढले हुए स्वर ने बड़ी रानी को नरम कर दिया। कहा—"रामनगर के राव के पास बड़ा बल तो नहीं, परंतु स्थान-रक्षा के विचार से अच्छा है। अलीमर्दान की सहायता बिना काम न चलेगा?"

"वह हमारा राखीबंद भाई है।" छोटी रानी ने उत्तर दिया—"उसकी ओर से जी में कोई खटका मत कीजिए। किसी भी मंदिर के विध्वंस करने की कोई इच्छा उसके मन में नहीं है।"

इसी समय एक दासी ने बड़ी रानी को ख़बर दी कि दीवान जनार्दन आशीर्वाद देने के लिये आना चाहते हैं।

बड़ी रानी उसका नाम सुनते ही चौंक पड़ीं! छोटी रानी से कहा—"इस समय इसका यहाँ आना बुरा हुआ। न-मालूम किस टोह को लगाकर आया है।"

छोटी ने आश्चर्य प्रकट किया—"बुरा हुआ! क्या वह इस क़ैदख़ाने का दरोग़ा है, जो आप भयभीत-सी मालूम पड़ती हैं? क्या बुरा हुआ?"

बड़ी रानी को चोट-सी लगी। उन्होंने दासी से पूछा—"और क्या कहते थे?"

छोटी रानी की ओर देखकर दासी ने जवाब दिया—"और तो कुछ नहीं कहते थे, महाराज!"

छोटी रानी ने कड़ाई के साथ पूछा—"क्यों डरती है? बोल, क्या कहते थे?"

बड़ी रानी ने समाधान के स्वर में कहा—"डर मत। कह, क्या कहते थे?"

उसने उत्तर दिया—"केवल यह पूछते थे कि छोटी महारानी भी यहाँ हैं, या नहीं?"

"तूने क्या कहा?" बड़ी रानी ने पूछा।

छोटी रानी विना उत्तर की प्रतीक्षा किए हुए बोलीं—"इसने कह दिया होगा कि हैं। मैं कोई बाघिनी या तेंदुनी तो हूँ नहीं, जो इसी समय दीवानजी को फाड़ डालूँगी?"

दासी ने उत्तर दिया—"नहीं महाराज, मैंने कहा था कि नहीं हैं।" छोटी रानी ने कड़ककर प्रश्न किया—"क्यों? तूने क्यों यह झूठ बोला?"

दासी काँपने लगी।

बड़ी रानी ने शांति स्थापित करने के प्रयोजन से कहा—"यह बेचारी साधारण स्त्री है। मुँह से निकल गया होगा। कोई बुराई मत मानो। वह मुझे चाहती है, और मेरा इस पर स्नेह है। यहाँ की और स्त्रियाँ तो दुष्ट हैं।"

छोटी रानी कुछ नहीं बोलीं। कुछ सोचती रहीं। बड़ी रानी ने कहा—"तुम ज़रा छिपकर देखो न, जनार्दन क्या कहता है, किस प्रयोजन से आया है?"

"व्यर्थ है।" छोटी रानी ने उत्तर दिया—'वह इस बात को जानता है कि आप मेरे ऊपर कृपा करती हैं, इसलिये मेरे छिपकर सुनने लायक़ कोई बात न कहेगा।"

"तो भी क्या हर्ज है," बड़ी रानी ने कहा—"सुन लो। तमाशा ही सही।"

छोटी रानी बड़ी को प्रसन्न करने की नियत से बोलीं—"छिपने की क्या ज़रूरत है। मैं एक कोने में बैठी जाती हूँ। ड्योढ़ी के बाहर से वह बातचीत करेगा। मैं अपने को प्रकट न होने दूँगी। आप उसे बुलवा लें।"

बड़ी रानी ने जनार्दन को लिवा लाने के लिये संकेत किया, और छोटी रानी से कहा—"यह उन स्त्रियों में से है, जो मेरे लिये अपना सिर कटाने को तैयार रहती है।" इस पर छोटी रानी केवल मुस्किराईं। कोई मंतव्य प्रकट नहीं किया।

थोड़ी देर में जनार्दन आ गया। आशीर्वाद और कुशल-मंगल पूछने के पश्चात् उस दासी द्वारा जनार्दन और बड़ी रानी का वार्तालाप होने लगा।

जनार्दन ने पूछा—"छोटी महरानी न-मालूम मुझसे क्यों रुष्ट हैं? महाराज इस बात को जानती हैं कि मैं उनका कोई अहित-चिंतन नहीं करता।"

बड़ी रानी ने जवाब दिलवाया—"इस बात से मेरा कोई संबंध नहीं। आप इस विषय पर उन्हीं से कहें-सुनें।"

"मैं आपकी सहायता चाहता हूँ। उन्हें इस राज्य में जो स्थान पसंद हो, उसमें आनंद-पूर्वक रहें, जिससे मैं इस लांछन से बचूँ कि दलीपनगर में मैंने उन्हें बरबस रोक रक्खा है।"

"इसे तो वह अवश्य पसंद करेंगी, और—"जवाब देनेवाली ने रानी की ओर से कहा—"बड़ी महारानी भी कुछ दिनों के लिये बाहर यात्रा कर आवेंगी।"

जनार्दन को यह प्रस्ताव पसंद न आया। बोला—"आजकल अवस्था ज़रा ख़राब हो रही है, और वैसे भी यह स्थान तो आपको बहुत प्यारा रहा है। आपने कभी शिकायत नहीं की कि —"

बीच में टोक दिया गया। बड़ी रानी की तरफ़ से कहा गया—"ज़रूर जायँगी।"

"क़ैदी नहीं हैं, जो उन्हें तो जाने दिया जाय, और इन्हें रोक रक्खा जाय।"

जनार्दन बोला—"मैं महाराज से अनुमति के लिये कहूँगा। परंतु जिस काम से मैं आया था, वह यदि यहाँ नहीं हो सकता, तो छोटी रानी के ही पास जाकर अपने अपराधों की क्षमा माँगूँगा।"

"वहाँ आने की कोई आवश्यकता नहीं।" छोटी रानी ने दासी का आश्रय लिए बिना ही पर्दे के भीतर से कहा—"हम दोनो अत्याचार-पीड़ित स्त्रियाँ एक स्थान में शांति के साथ रहना चाहती हैं, वह भी तुम्हें सहन नहीं। हमारा राज्य-पाट ले लिया, और दोनो को एक दूसरे से अलग करके क्या किसी एकांत गढ़ी में हमारा सिर कटवाओगे?"

जनार्दन चौंका नहीं। थोड़ी देर तक स्तब्ध, निश्चल बना रहा।

कुछ ही क्षण पश्चात् बोला — "मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं कही, जिससे आपके इस निष्कर्ष की पुष्टि होती हो। आपसे क्षमा-प्रार्थना करने की ही बात कह रहा था। वह न रुची। जाता हूँ।"

यदि वह ठहरता, तो उसे और प्रलाप भी सुनना पड़ता।

छोटी रानी ने सन्नाटे में आई हुई बड़ी रानी से कहा—"देख ली इसकी चाल! हम लोगों को अलग करना चाहता है, और अलग करके हमारा नाश। हम लोग अलग नहीं हो सकतीं।"

बड़ी रानी ने जोश के साथ कहा – ' कभी नहीं। मैं तुम्हें कदापि न छोड़ूँगी।"

(४४)

जनार्दन दोनो रानियों को एक दूसरे से अलहदा करना चाहता था। इसी प्रयोजन से वहाँ गया भी था, परंतु अपनी साधारण सावधानी से काम न लेने के कारण और छोटी रानी के ताड़ लेने से उसका मनोरथ निष्फल हो गया। छोटी रानी के कुवाक्य का उसे बहुत थोड़ी देर ध्यान रहा होगा। उसके मन में इस बात पर बहुत ग्लानि थी कि चतुराई के साथ बातचीत नहीं की।

राजा के पास गया। चतुर मंत्री के लिये समय से बढ़कर मूल्यवान् और कोई चीज़ नहीं हो सकती थी। इसलिये उसने राजा से तुरंत भेंट की। दोनो रानियों की परस्पर बढ़ती हुई घनिष्ठता में किसी भयंकर विपद् की विभीषिका, किसी विकट षड्यंत्र की जननशक्ति की आशंका का चित्र जनार्दन ने खींचा।

राजा ने ज़रा खीझकर कहा—"तब क्या करूँ? जब तक कोई बड़ा अपराध सिद्ध न हो जाय, दंड तो दिया नहीं जा सकता।"

राजा की खिझलाहट से ज़रा भी न घबराकर जनार्दन बोला—"न तो किसी अपराध के सिद्ध करने की ज़रूरत है, और न किसी

दंड के विधान की। इन्हें तो अन्नदाता दो अलग-अलग स्थानों में, सम्मान-पूर्वक, रख दें।"

इससे वैमनस्य और बढ़ेगा। जो सरदार अभी पीठ-पीछे और शायद दबी ज़बान से यह कहते हैं कि हम लोगों ने रानियों को महल में क़ैद कर रक्खा है, वे भड़ककर खुल्लमखुल्ला बुराई करेंगे। रानियों को यहाँ से हटाकर मैं अपने लिये व्यर्थ का विरोध नहीं खड़ा करना चाहता।"

"अन्नदाता, वे यहाँ बैठी-बैठी सम्मिलित शक्ति से राज्य को उलटने-पलटने की तरकीबें सोचा करती हैं, सरदारों को अराजकता के लिये उभाड़ा करती हैं। एक दूसरे से दूर रहने पर दोनो निर्बल हो जायँगी।"

"मैं इस बात को नहीं मानता।"

"जैसी महाराज की मर्ज़ी हो, परंतु छोटी रानी की हरकतों के मारे मेरी तो नाकों दम आ गई है। यह तो अन्नदाता को मालूम ही है कि मेरा सिर काटने या कटा लेने का रानी ने प्रण ठान रक्खा है—"

राजा ने हँसकर जनार्दन की बात काट दी। कहा—"डरो मत। तुम्हारी उम्र अभी बहुत है। चाहे ज्योतिषियों से पूछ लेना।" फिर एक क्षण बाद गंभीर होकर राजा बोला—"शर्माजी, तुम्हें तलवार चलाना भी सीखना चाहिए था। राजनीति के गणित लगाते-लगाते बहुत-से व्यर्थ भय के भूत तुम्हें सताने लगे हैं। स्त्रियाँ बात काटती हैं, सिर नहीं काटतीं। अपना काम-काज देखो। राज्य की बहुत-सी समस्याएँ तुम्हें उलझाने के लिये यों ही बहुत काफ़ी हैं। इधर का ख़याल ज़रा कम कर दो। कुछ मेरा भी भरोसा करो।"

विनीत भाव से दीवान ने कहा—"महाराज का भरोसा न होता, तो एक घड़ी भी बचना क़रीब-क़रीब असंभव था, परंतु—"

"किंतु, परंतु कुछ नहीं।" राजा ने कहा। फिर हँसकर बोला—"तुम्हारा सिर सही-सलामत है, घबराओ नहीं, मौज करो।"

जनार्दन चला आया। अकेले में एक आह भरकर मन में बोला—"अब तो मेरा सिर राजा को इतना सस्ता मालूम पड़ना ही चाहिए।"

---

(४९)

अलीमर्दान अपनी फ़ौज लिए भांडेर में पड़ा था। दलीपनगर-दमन की प्रबल आकांक्षा उसके मन में थी। परंतु दिल्ली की अस्थिर अवस्था और इलाहाबाद के सैयद भाइयों की प्रबल हलचल उसे उग्र रूप धारण करने से वर्जित कर रही थी। कालेख़ाँ पालर की पुजारिन की बीच-बीच में काफ़ी याद दिला देता था। उस विषय के लिये भी अलीमर्दान के हृदय में एक बड़ा-सा लालसा-युक्त स्थान था। परतु इस प्रबंध में भी उसकी इच्छाओं पर एक बड़ा बंधन कसा हुआ था। वह यह था कि अलीमर्दान और उस-सरीखे अन्य मन-चले सूबेदार, जो सिर से दिल्ली का बोझ हल्का होते ही स्वतंत्र हो जाने के मनोहर स्वप्नों में डूबे रहते थे, अपने सूबे की और पड़ोस की हिंदू जनता पर साधनों और सैनिकों के लिये बहुत निर्भर रहते थे, इसलिये यथासंभव उसे व्यर्थ नहीं चिढ़ाते-छेड़ते थे। जिस समय दिल्ली में कमज़ोर नरेश और प्रांतों में महत्त्वाकांक्षी सूबेदार होते थे, उस समय यह बात बहुत स्पष्ट रूप में दिखलाई पड़ती थी।

धीरे-धीरे भांडेर में भी यह ख़बर पहुँच गई कि बिराटा में एक देह-धारिणी देवी है, जो अपने वरदानों से निस्सहायों को समर्थ कर देती है। यदि अलीमर्दान कड़ाई के साथ अनुसंधान कराता, तो पालर और बिराटा की देवी की समानता उसे कदाचित् शीघ्र मालूम

हो जाती। उसने इस विषय को किसी शीघ्र आनेवाले अनुकूल समय की आशा से प्रेरित होकर स्थगित कर दिया, और केवल ऐसी साधारण ढूँढ़-खोज को, जो आसानी से दूसरों पर प्रकट न हो जाय, जारी रक्खा। इस साधारण ढूँढ़-खोज से शीघ्र पता इसलिये और न लगा कि लोग सहज और स्पष्ट का शीघ्र विश्वास नहीं करते ; दूर के कारणों का आविष्कार करने में निकट की वस्तु-स्थिति दृष्टि से लोप होने लगती है। बिराटा में पालर की सुंदरी भांडेर के इतने नज़दीक! असंभव अनुसंधानकर्ता उस देवी की उपस्थिति को भांडेर के इतने पास भान नहीं कर सकते थे। इसके सिवा अलीमर्दान की इस विषय की ओर कोई प्रबल रुचि प्रकट होती न देखकर भी उन लोगों ने ढूँढ़-खोज का सिलसिला ढीला रक्खा।

भांडेर के आस-पास के राजा और राव अलीमर्दान की भांडेर में उपस्थिति देखकर ज़रा चौकन्ने थे, किसी भी प्रबल व्यक्ति का अपने पड़ोस में ज़रा देर तक टिका रहना देखकर उन्हें मन-ही-मन अखरता था। उनका अपना स्वच्छंद वन-पर्वत किसी अस्पष्ट आतंक से विरुद्ध-सा दिखाई पड़ता था, और वे उससे शीघ्र छुटकारा पाने के लिये व्याकुल-से थे। उदाहरणों की उनके सामने कमी न थी।

रामनगर का राव पतराखन इस बीच में कई बार भांडेर गया-आया। वह यह बात जानना चाहता था कि अलीमर्दान क्यों यहाँ पड़ा हुआ है, और कब तक इस तरह पड़ा रहेगा। साथ ही वह अलीमर्दान को मौक़ा मिलने पर यह विश्वास दिलाना चाहता था कि भांडेर में और अधिक ठहरना बेकार है। एक दिन अलीमर्दान से अकेले में बातचीत हुई। अलीमर्दान ने पूछा—"सुना है राव साहब, आपके पड़ोस में देवी का कोई अवतार हुआ है।"

"जी हाँ। कोई नई बात नहीं है। हमारे धर्म में ऐसा होता रहता है।"

"कब हुआ था ?"

"बरसें हो गई हैं। हमेशा से उसकी बाबत सुनता हूँ।"

"हाँ साहब, अपने-अपने मज़हब की बात है। मुझे उसमें दख़ल देने की कोई ज़रूरत नहीं है। वैसे ही पूछा है।"

परंतु बिराटा लौट आने के कई रोज़ पीछे भी पतराखन ने सुना कि अलीमर्दान भांडेर में ही है।

---

(४६)

संध्या हो चुकी थी। रामनगर की गढ़ी के फाटक बंद होने में अधिक विलंब न था। पहरेवालों ने फाटकों को अधमुँदा रख छोड़ा था। उनका कोई साथी गाँव में तंबाकू लेने गया था। इतने में गढ़ी के नीचे, जो बेतवा-किनारे एक ऊँची टौरिया पर बनी थी, दस-बारह घुड़सवार आकर रुक गए। और सवार तो वहीं रहे, एक उनमें से फाटक पर आया। पहरेवाले ने फाटक को ज़रा और खोलकर पूछा—"आप कौन हैं ?"

"दलीपनगर से आ रहा हूँ। महारानी और कुछ सरदार नीचे खड़े हैं, बहुत शीघ्र और आवश्यक काम से मिलना है।" आगंतुक ने उत्तर दिया।

पहरेवाले ने नम्रता-पूर्वक कहा—"आपका नाम ?"

"राव साहब को मेरा नाम रामदयाल बतला देना।" उत्तर मिला।

पहरेवाला भीतर गया। राव पतराखन आ गया। अँधेरा था, नहीं तो रामदयाल ने देख लिया होता कि पतराखन के चेहरे पर इस आगमन के कारण प्रसन्नता के कोई चिह्न न थे। रामदयाल से प्रयास-पूर्वक मीठे स्वर में बोला—"महारानी को ऐसे समय यहाँ आने की क्या आवश्यकता पड़ी ?"

रामदयाल ने कहा—"कालपी के नवाब अलीमर्दान को कर्तव्य-

पथ पर सजग करने के लिये आई हैं। दलीपनगर की दूरी से यह काम नहीं बन सकता था। इस समय नवाब साहब भांडेर में हैं। यहाँ से सब काम ठीक हो जायगा।"

पतराखन ने पूछा—"महारानी कहाँ हैं?"

रामदयाल ने इशारे से बतला दिया।

कुछ सोचता-विचारता पतराखन गढ़ी से उतरा, और नीचे से दलीपनगर के सवारों को गढ़ी पर लिवा लाया। कुसल-मंगल के बाद जब सब लोगों को डेरा दे दिया, तब रामदयाल से बातचीत हुई।

पतराखन ने कहा—"अब की बार बड़ी रानी ने भी छोटी रानी का साथ दे दिया!"

रामदयाल ने जवाब दिया—"साथ तो वह सदा से हैं, परंतु कुछ लोगों ने बीच में मनमुटाव खड़ा कर दिया था।"

"परंतु बड़ी रानी के साथ हो जाने पर भी फ़ौज-भीड़ तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ती। इतने आदमियों से देवीसिंह का क्या बिगड़ेगा?"

"ये सब सरदार हैं। इनके साथ की सेना पीछे है, और फिर नवाब साहब की मदद होगी। आप भी सहायता करेंगे?"

"सो तो है ही। इसमें संदेह ही क्या है। यदि नवाब साहब ने सहायता कर दी, तो बहुत काम बनने की आशा है। मैं भी जो कुछ सहायता बनेगी, करूँगा ही। बिराटा का दाँगी भी अपने भाईबंदों को लाएगा। आजकल उसे ज़रा घमंड हो गया है।"

"किस बात का?"

"अपनी संख्या का। उसके गाँव में देवी का अवतार हुआ है। उसका भी उसे बहुत भरोसा है।"

"देवी का अवतार! हाँ, हो सकता है। होता ही रहता है। एक अवतार पालर में हुआ था, परंतु—"

"परंतु क्या ? सुनते हैं, वही यहाँ चली आई हैं। एक दिन अलीमर्दान ने मुझसे पूछा था। लोग कहते थे, उसके कारण ही देवी को पालर से भागना पड़ा। यह सब ग़लत है। नवाब कहता था कि अवतार सब क़ौमों में होते हैं, और उसे किसी के धर्म में दख़ल देने की ज़रूरत नहीं है। और, मैं इन विषयों पर बहुत कम बहस करता हूँ।"

"नवाब साहब कहते थे !" रामदयाल ने प्रकट होते हुए आश्चर्य को रोककर कहा—"ज़रूर कहते होंगे। वह तो बड़े उदार पुरुष हैं। उन्होंने पालर में जाकर देवी की पूजा की थी। मूर्तियों को छुआ तक नहीं, तोड़ने की तो बात क्या।"

किसी कल्पना से विकल पतराखन बोला—"हमारी गढ़ी की बहुत दिनों से मरम्मत नहीं हुई है। दीवारें गोला-बारी नहीं सह सकतीं। फाटक भी नए चढ़वाने हैं, गोला-बारूद की भी कमी है। इस गढ़ी में होकर युद्ध करना बिलकुल व्यर्थ होगा। वैसे मैं और मेरे सिपाही सेवा के लिये तैयार हैं।"

रामदयाल समझ गया। बोला—"यहाँ से युद्ध कदापि न होगा। आप गढ़ी की मरम्मत चाहे कल करा लें, चाहे दस वर्ष बाद। यह स्थान छिपा हुआ है, और सुरक्षित है, इसलिये महारानी को पसंद आया—"

पतराखन ने रोककर कहा—"सो तो उनका घर है। चंपतराय कई बार इसमें ठहरे हैं, परंतु ठहरे वह थोड़े-थोड़े दिन ही हैं। ख़ैर, उसकी कोई बात नहीं है। बिराटा की गढ़ी देखी है ?"

"नहीं तो।"

"बहुत सुरक्षित है। दाँगी को उसी का तो बड़ा गर्व है।"

"मैं कल ही जाकर देखूँगा।"

"परंतु मेरी ओर से वहाँ कुछ मत कहना।"

"नहीं, मैं तो क़िला देखने और देवी के दर्शनों को जाऊँगा, किसी से वहाँ बातचीत करने का क्या काम ? इसके पश्चात, परसों, नवाब साहब के पास जाऊँगा। देवीसिंह से जो लड़ाई होगी, उसमें महारानी आपसे बहुत आशा करती हैं, और आपको पुरस्कार भी बहुत देंगी।"

पतराखन ने उत्तर दिया—"वैसे तो मैं किसी का दबा हुआ नहीं हूँ। दलीपनगर के राजा से कोई संबंध नहीं। कालपी के नवाब और दिल्ली के बादशाह से हमारा ताल्लुक़ है, इसलिये जिस पक्ष में नवाब साहब होंगे, उसी का समर्थन मैं भी करूँगा।"

"ठीक है।" रामदयाल ने कहा—"एक क्षण के लिये महारानी के पास चले चलिए।"

पतराखन को रामदयाल रानियों के डेरे पर ले गया। दोनो आड़-ओट से वार्तालाप करने लगीं।

छोटी रानी ने कहा—"बड़ी महारानी ने भी अब की बार हम लोगों का साथ दिया है। चोर-डाकू एक अधर्मी ब्राह्मण की सहायता से हमारे पुरखों के सिंहासन पर जा बैठा है। कुछ दिनों तो वह बड़ी महारानी और क्षत्रिय सरदारों को भुलावे में डाले रहा, परंतु अंत में भंडाफोड़ हो गया। अब की बार बहुत-से सामंत हमारे साथ हैं। आशा है, विजय प्राप्त होगी। आपको हम धन-धान्य और जागीर से संतुष्ट करेंगे। टेढ़े समय में जो हमारी सहायता करेगा, उसे सीधे समय में हम कभी नहीं भुला सकेंगी।"

पतराखन ने बड़ी रानी के सिसकने का शब्द सुना।

बोला—"मुझसे शक्ति-भर जितनी सहायता बनेगी, करूँगा। यह टूटी-फूटी छोटी-सी गढ़ी आप अपनी समझें।"

बड़ी रानी ने करुण कंठ से कहा—"राव साहब, हम आपको इसका पुरस्कार देंगे ?"

राव पतराखन ने अदृष्ट को, अनिवार्य को सिर-माथे लेकर सोचा—"यदि इन दो निस्सहाय स्त्रियों की रक्षा में इस गढ़ी को धूल में मिलाना पड़ा, तो कुछ हर्ज नहीं। किसी और गढ़ी को ढूँढ़ लूँगा।"

(४७)

कुंजरसिंह मुसावलीवाले कृषक और चरवाहे के साथ बिराटा की ओर पैदल गया। वह अपने को प्रकट नहीं करना चाहता था। मार्ग के भरकों और वृक्षों के समूहों में होकर जाते हुए उसने सोचा—"यदि वही हैं, तो शायद पहचान लें। न पहचानें, तो बुराई ही क्या है? जिसे संसार ने क़रीब-क़रीब त्याग दिया है, उसे देवता क्यों उपकृत करने चला? न पहचाने जाने में एक सुख भी है। खोद-खोदकर लोग कुशल-वार्ता न पूछेंगे, और उन्हें व्यथा न होगी। शांति-पूर्वक उनके दर्शन कर लूँगा। परंतु यदि उन्होंने पहचान भी लिया, तो उन्हें व्यथा क्यों होने लगी? मैं उनका कौन हूँ। केवल भक्त और फिर थोड़े-से पलों का परिचय।"

कृषक और चरवाहे ने बातचीत करना चाही। कुंजरसिंह अन्य-मनस्क था। प्रोत्साहन न पाकर वे लोग आपस में ही बातचीत करते चले।

थोड़ी देर में नदी पार करके टापू के सिरे पर स्थित मंदिर में पहुँच गए। वह देवी के दर्शनों का ख़ास समय न था। कृषक और उसके साथी को घर लौटना था, परंतु कुंजर ने कहा—"क्यों जल्दी करते हो? यदि किसी ने मना कर दिया, तो अपना-सा मुँह लेकर रह जायँगे, और ठहरना तो पड़ेगा ही।"

कृषक बोला—"कए सैं का बिगरत? जो दर्शन हो जैएँ, तो अच्छोई है, और न हूँ हैं, तो आप ठैर जइयो, हम भोर फिर आ

जैएँ।'' कुंजर के निषेध की परवा न करके कृषक आगे बढ़ा। गोमती दिखलाई पड़ी। कृषक ने विनय के साथ कहा—''पालर सें जे कोऊ ठाकुर आए हैं, दर्शन करन चाउत हैं। का अबै दर्सन न हुइएँ? कोऊ बहुत बड़े आदमी हैं।''

गोमती पालर का नाम सुनकर ज़रा पास आई। कुंजरसिंह को पहचानने की चेष्टा की, न पहचान पाया।

कृषक से बोली—''यह तो पालर के नहीं जान पड़ते। किसी और स्थान के हैं। मैं तो पालर के हरएक व्यक्ति को पहचानती हूँ।''

''परंतु वे तो अपुन खों पालर को बताउत्ते।''

चरवाहे बालक ने कहा—''पालर के तो आहैं ईं। झूठीं थोरक सी बोलत। हमसें कहीं, हमाए दाऊ सें कही।''

इस चर्चा ने कुमुद को भी उस स्थान पर आकृष्ट कर लिया। एक ओर से उसने आगंतुकों को बारी-बारी से देखा। कुंजरसिंह को उसने कई बार बारीकी से देखा। वहाँ से हटकर चली गई। नरपतिसिंह को भीतर से भेजा।

उसने आकर अधिकार के स्वर में कहा—''क्या है? आप लोग क्या चाहते हैं?''

''दर्शन!'' क्षीण स्वर में कुंजर ने उत्तर दिया।

''हो जायँगे।''

नरपति ने उसी स्वर में कहा—''ज़रा ठहरिए। हाथ-पैर धो लीजिए। आप पालर से आए हैं?''

''जी हाँ।'' कुंजर ने बहुत क्षीण स्वर में उत्तर दिया।

नरपति—''आपको पालर में तो मैंने कभी नहीं देखा। आप वहाँ के रहनेवाले नहीं हैं।''

कुंजर—''रहनेवाला तो वहाँ का नहीं हूँ, परंतु इस समय—अर्थात् कुछ दिन हुए, तब—आया वहीं से था।''

नरपति ने पास आकर कुंजरसिंह को घूरा। कुछ सोचकर बोला–"आपको कभी कहीं देखा अवश्य है, परंतु याद नहीं पड़ता। पालर के ऊपर कालपी के नवाब के आक्रमण के समय आप दलीपनगर की सेना में या ऐसे ही किसी मेले में उससे भी पहले कभी आए हैं।"

"आप ठीक कहते हैं।" कुंजर ने ज़रा सँभलकर कहा 'मैं एक मेले में पालर गया था।"

नरपति ने अपनी स्मरण-शक्ति को ज़रा और दबाकर पूछा—"आप कालपी के सैनिकों के उपद्रव के समय पालर में नहीं थे? मुझे आपकी आकृति ख़ब याद आ रही है।"

कुंजरसिंह ने टौरिया से नीचे बहती हुई बेतवा की धारा और उस पार के जंगलों की हरियाली को देखते हुए कहा—"मुझे याद नहीं पड़ता। शायद आया होऊँ।"

कुमुद ने भी यह वार्तालाप सुना। गोमती ज़रा उत्सुकता के साथ बोली-—"आप दलीपनगर के रहनेवाले होंगे।"

"हाँ।" कहकर कुंजर ने सोचा, प्रश्नों की समाप्ति हो जायगी। और, हाथ-पाँव धोने के लिये नदी की ओर, टौरिया से नीचे, उतर गया। नरपतिसिंह सिर खुजलाता हुआ भीतर चला गया। गोमती कृषक से बातचीत करने लगी। बोली—"तुम इन ठाकुर को पहचानते हो?"

उसने उत्तर दिया—"मैं तो नईं चीनत। मौसैं तो कहते कै पालर के आहैं।"

"तुमसे इनसे क्या संबंध है?"

"मोरे इतै डेरा डारो है।"

"तब तुम्हें इससे ज़्यादा जानने की अटक ही क्या पड़ी? पालर से आए, इसलिये पालर का बतलाया, परंतु हैं यह असल में

दलीपनगर के रहनेवाले। दलीपनगर का कुछ हाल इन्होंने बतलाया था?"

"हमैं तो अपने काम से उकासई नईं मिलत।"

और अधिक बातचीत करना उचित न समझकर गोमती कुमुद के पास चली गई। कुमुद कुछ व्यग्रता के साथ मंदिर को साफ़ कर रही थी।

पहले की अपेक्षा दोनो में अब संबंध कुछ अधिक घनिष्ठ हो गया था।

बोली—दलीपनगर से एक ठाकुर आए हैं।"

किसी भाव से दीप्त होकर कुमुद का चेहरा एक क्षण के लिये रंजित हो गया। गोमती की ओर विना देखे ही उसने कहा—"हाँ, आए होंगे। नित्य ही लोग आया करते हैं।"

"इनसे वहाँ का कुछ हाल पूछूँ?"

"पूछने में तुम्हें लाज नहीं आवेगी? और फिर इसका क्या निश्चय कि यह ठाकुर कोई संतोष-प्रद वृत्तांत भी तुम्हें सुना सकेंगे या नहीं।"

"तब क्या करूँ? दलीपनगर का तो बहुत दिनों से कोई यहाँ आया ही नहीं. यह एक आए हैं, सो प्रश्न करने में मुझे भी संकोच मालूम होता है। इसलिये आपसे पूछा।"

"मैं क्या कह सकती हूँ?"

"पूछूँ कुछ हाल?"

"तुम्हारा मन न मानता हो, तो पूछ देखो; परंतु मुझे विश्वास है, तुम्हें कोई संतोष-जनक उत्तर न मिलेगा। इस समय वह हारे-थके भी होंगे। यदि आज यहाँ बस जायँ, तो सबेरे निश्चित होकर पूछ लेना; नहीं तो पिताजी द्वारा कहो, तो मैं बहुत-सा हाल पुछवा लूँ?"

गोमती सहमत हो गई।

थोड़े समय के पीछे हाथ-पाँव धोकर कुंजरसिंह नदी से आ गया। उसने नरपतिसिंह से दर्शनों की इच्छा प्रकट की।

नरपतिसिंह ने एकाएक कहा—"मैंने पहचान लिया।"

कुंजरसिंह का बेतवा के जल से धुला हुआ मुँह ज़रा धूमरा पड़ गया। नरपति के मुँह की ओर देखने लगा।

नरपति ने कहा—"आप उस दिन पालर के दंगा करनेवालों में थे। अवश्य थे। वह दिन भुलाए नहीं भूलता। न वह दंगा होता, और न हमें इतनी विपद् झेलनी पड़ती। परंतु, परंतु—"

नरपति सोचने लगा। एक क्षण बाद बोला—"परंतु एक लंबा दुष्ट और था, सफ़ेद दाढ़ी-मूछवाला उसी ने सब गोल-माल किया था।"

कुमुद और इस वार्तालाप के बीच में केवल एक छोटी-सी दीवार थी। कुमुद ने तुरंत पुकारकर कहा—"यहाँ आइए।"

कुमुद की पुकार के उत्तर में नरपति "हाँ" कहते हुए कुंजर से बोला—"आप शायद नहीं थे, शायद कोई और रहा हो; परंतु वह बूढ़ा अवश्य था।"

कुंजरसिंह कुछ उत्तर देना चाहता था, परंतु नरपति के संदेह का निवारण करना इस समय उसका उद्देश न था, इसलिये ज़रा-सा ख़ाँसकर चुप रहा।

नरपति भीतर से लौटकर तुरंत आ गया। बोला—"चलिए, दर्शन कर लीजिए।"

कृषक और चरवाहा भी हाथ-पैर धोकर आ गए थे, परंतु उन्हें नरपति ने टोका। कहा—"तुम लोग फिर दर्शन कर लेना। यह समय तुम्हारे लिये नहीं है।"

कुंजर लौट पड़ा। बोला—"उन्हें भी आने दीजिए। इन बेचारों

को इसी समय लौटकर जाना है। मैं तो दर्शनों के लिये रुक भी सकता हूँ ”

कुंजर का प्रतिवाद शायद बेकार जाता, परंतु कृषक और चरवाहा मंदिर में धँस पड़े। नरपति ने उन्हें रोक न पाया।

देवी की मूर्ति के पास, एक किनारे पर, कुमुद बैठी थी। वही मुख, वही रूप। आज केवल कुछ अधिक आतंकमय दिखलाई पड़ा। भौंहों के बीच में सिंदूर और भस्म का टीका अधिक गहरा था।

पुजारिन को एक बार चंचल दृष्टि से कुंजर ने देखा, फिर देवी को साष्टांग प्रणाम करके मन-ही-मन कुछ कहता रहा।

जब विभूति-प्रसाद की बारी आई, तब फिर कुमुद की ओर देखा। वह पीली पड़ गई थी।

काँपते हुए हाथ से कुमुद ने फूल और भस्म कुंजर को दी। वह अँगूठी उसकी उँगली में अब भी थी। कुंजर ने नीची दृष्टि किए हुए ही, काँपते कंठ से, कहा—“वरदान मिले। बहुत दुर्गति हो चुका है।”

कुमुद देवी की ओर देखने लगी, कुछ न बोली।

कुंजर ने फिर कहा—“देवी के वरदान के विना मेरा जीवन असंभव है।”

कुंजर का गला और अधिक काँपा।

“देवी जो कुछ करेंगी, सब शुभ करेंगी।” कुमुद ने कुंजर की ओर दृष्टिपात करने का प्रयत्न करते हुए उत्तर दिया।

इतने में नरपति बोला—“आप पालर क्या अभी चले जायँगे?” कुंजर के मन में कोई जल्दी न थी। बोला—“अभी तो न जाऊँगा। और, कुछ ठीक नहीं, कहाँ जाऊँ।”

“तो क्या आप दलीपनगर जायँगे?” नरपति से पूछा।

"वहाँ का भी कुछ ठीक नहीं।" कुंजर ने संयत निःश्वास के साथ उत्तर दिया।

कुमुद अपने सहज स्वाभाविक धैर्य को पुनः प्राप्त-सा करके भर्राए हुए कंठ से बोली—"इनके भोजनों का प्रबंध कर दीजिए।"

गोमती ने एक कोने से कहा "और विश्राम का भी, क्योंकि लौटकर कल जायँगे, संध्या होनेवाली है।"

---

(४८)

मंदिर का विस्तार थोड़े-से स्थान में था। उसकी कोठरियाँ भी छोटी-छोटी थीं। नरपति ने अपनी कोठरी में कुंजरसिंह को स्थान दिया। भोजन के उपरांत नरपति कुंजर के पास बैठ गया। दोनो एक दूसरे के साथ बातचीत करने के इच्छुक थे, परंतु नरपति दिमाग़ के किसी दोष के कारण और कुंजर किसी संकोच के वश यह निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि चर्चा का आरंभ किया किस तरह जाय।

इतने में पास ही कोठरी में गोमती ने ज़रा आह खींचकर कुमुद से कहा—"काकाजू को आज जल्दी नींद आ गई!"

नरपति ने सुन लिया। किसी कर्तव्य का स्मरण करके कुंजर से बोला—"मैं बड़ी देर से सोच रहा हूँ कि आपको उस दंगे के अवसर पर पालर में देखा था या नहीं। आप थे या आपके साथ कोई राजकुमार था। था कोई अवश्य। बहुमूल्य वस्तु देवी को भेंट की थी, परंतु और याद नहीं पड़ता। दिन बहुत हो गए हैं। बूढ़ा हूँ, और देवी की रट के सिवा मन में अब और कुछ उठता भी नहीं।"

"मैं क्या हूँ," कुंजर ने कहा—"इसे जानकर आप क्या करेंगे? किसी दिन मालूम हो जायगा। आपके लिये इतना ही जान लेना बहुत होगा कि आफ़तों का मारा हुआ हूँ।"

"क्या आप राजकुमार हैं ?" कुछ ज़ोर से और एकाएक नरपति ने पूछा ।

कुंजर ने बहुत धीरे से जवाब दिया—"सैनिक हूँ । संसार का ठुकराया हुआ दरिद्र मनुष्य हूँ । और अधिक मत पूछिए ।"

पास की कोठरी में लेटी या बैठी हुई उन दोनो स्त्रियों ने नरपति का प्रश्न तो सुन लिया, परंतु शायद उत्तर न सुन पाया ।

नरपति ने पूछा—"आप दलीपनगर के रहनेवाले हैं ?"

"जी हाँ ।"

"वहाँ का राजा कौन है ? सुनते हैं, कोई देवीसिंह राज्य करते हैं ।"

"आपको मालूम तो है ।"

"कैसा राजा है ?"

कुंजर चुप रहा ।

नरपति ने ज़िद करके पूछा—"कैसा राजा है ? प्रजा को कोई कष्ट तो नहीं देता ?"

"अभी तो सिंहासन को अपने पैरों के नीचे बनाए रखने के लिये ख़ून-ख़राबी करता रहता है ।"

"यह राज्य तो उन्हें महाराज नायकसिंह ने दिया था ?"

"बिलकुल झूठ बात है ।"

नरपतिसिंह ने पांडित्य प्रदर्शित करते हुए कहा—"हमें भी ख़याल होता है कि महाराज ने राज्य न दिया होगा, क्योंकि उनके एक कुमार थे । उनका क्या हुआ ? आप क्या वह राजकुमार नहीं हैं ? सच-सच बतलाइए । आपको क़सम है ।"

कुंजरसिंह ने एक क्षण सोचकर कहा—"नहीं, मैं इस समय वह नहीं हूँ, परंतु जो राजकुमार है, वह किसी समय प्रकट अवश्य होगा ।"

नरपतिसिंह अपनी उसी धुन को जारी रखते हुए बोला— राज-कुमार बड़ा सुशील और होनहार था। मैंने उसके लिये देवी से प्रार्थना की थी। उस बेचारे को राज्य तब नहीं मिला, तो कभी-न-कभी मिलेगा।"

"स्वार्थियों की नीचता के कारण" कुंजर ने उत्तर दिया —"दलीप-नगर में जनार्दन शर्मा एक पापी है। उसके षड्यंत्रों से देवीसिंह राजा बन बैठा है। वास्तविक राजकुमार वंचित हो गया है, और रानियों की मूर्खता के कारण भी उसे नुकसान पहुँचा है—"

"नरपति ने टोककर कहा "देवी की कृपा हुई, तो असली हक़दार को फिर राज्य मिलेगा, और नीच, स्वार्थी, पापी लोग अपने किए का फल पावेंगे।"

गोमती की दूसरी कोठरी में बड़ी ज़ोर की खाँसी आई।

उसकी खाँसी के समाप्त होने पर कुंजर ने पूछा—"बिराटा के राजा के पास फ़ौज-फाटा कैसा है?"

"अच्छा है।" नरपति ने उत्तर दिया—"रामनगर के राव साहब की अपेक्षा यह बहुत जन और धन-संपन्न हैं। वह अपने को छिपाते बहुत हैं, नहीं तो उनमें इतनी शक्ति है कि किसी भी राजा या नवाब का मुक़ाबला कर सकते हैं। हमारी जाति के वह गौरव हैं।"

कुंजर ने नरपति के जाति-गर्व को मन-ही-मन क्षमा करते हुए कहा—"यदि किसी समय दलीपनगर के राजकुमार उनसे मिलने आवें, तो अच्छी तरह मिलेंगे या नहीं?"

"अवश्य।" नरपति ने उत्तर दिया—"राजा राजों के साथ बराबरी का ही बर्ताव करते हैं। आपसे उस राजकुमार से कोई संबंध है?"

"जी हाँ।"

"क्या?"

"मैं उनकी सेना का सेनापति रहा हूँ।"

"वही तो, वही तो।" नरपति ने दंभ के साथ कहा—"मेरी स्मरण-शक्ति ने धोका नहीं खाया था। मुझे देखते ही विश्वास हो गया था कि आप राजकुमार या राजकुमार के साथी या दलीप-नगर के कोई व्यक्ति अवश्य हैं।"

स्मरण-शक्ति का यह प्रमाण पाकर कुंजरसिंह को अपनी उस दशा में भी मन में हँसी आ गई। बोला—"राजकुमार आपके राजा से पीछे मिलेंगे, मैं उनसे पहले मिल लूँगा। आप कुछ सहायता करेंगे ?"

नरपति ने पूछा—"उस दगे के दिन राजकुमार के साथ आप किस समय आए थे ? या शुरू से ही साथ थे ?"

कुंजर ने अँधेरी कोठरी में दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—"मैं शुरू से ही साथ था। आपको अवश्य याद होगा।"

"अवश्य याद है।" नरपति ने कहा।

कुंजरसिंह ने अपने पहले प्रश्न को फिर दुहराया—"आप राज-कुमार की कुछ सहायता कर सकेंगे ?"

नरपति बोला—"अवश्य। मैं आपके कुमार के लिये देवी से प्रार्थना करूँगा, और राजा सबदलसिंह से भी कहूँगा। अपने साथ आपको ले चलूँगा।"

---

(४६)

नरपति और कुंजर शायद जल्दी सो गए होंगे, परंतु उन दोनो युवतियों को देर तक नींद नहीं आई। धीरे-धीरे बातें करती रहीं। गोमती ने कहा—"यह तो उनके वैरी का आदमी निकला। क्या इसका यहाँ अधिक टिकना अच्छा होगा ?"

"यह मंदिर है।" कुमुद ने उत्तर दिया—"यहाँ कोई भी ठहर सकता है। किसी को मनाही नहीं।"

"चाहे जितने दिन ?"

"इसके विषय में मैं कुछ नहीं कह सकती। काकाजू जानें।"

"काकाजू ने तो उसे वचन-सा दिया है। यहाँ के राजा यदि महाराज के विरुद्ध हथियार उठावें भी, तो उनका कुछ बिगड़ेगा नहीं। देवी का वरदान उनके लिये है। परंतु काकाजू का साथ देना मुझे भयभीत करता है।"

"अपनी-अपनी-सी सभी करते हैं। काकाजू ने इस सैनिक को यहाँ के राजा के पास पहुँचा देने का और सहायता के लिये अनुरोध-मात्र का वचन दिया है; इससे आगे और किसी बात से उन्हें प्रयोजन ही क्या है ?"

गोमती की घबराहट इससे शांत न हुई। विनय-पूर्वक बोली—"परंतु वह देवी से भी प्रार्थना करेंगे। इससे उन्हें क्या कोई रोक सकेगा ?"

"देवी से प्रार्थना वह नहीं करते," कुमुद ने रूखेपन के साथ कहा—"जो कुछ कहना होता है, मेरे द्वारा कहा जाता है।"

गोमती चुप हो गई। थोड़ी देर सन्नाटा रहा। फिर बोली—"क्या सो गईं ?"

"अभी नहीं।" उत्तर मिला।

"अपराध क्षमा हो, तो एक बात कहूँ ?"

"कहो।"

"न-मालूम क्यों मेरे मन में रह-रहकर यह खटका उत्पन्न हो रहा है कि यह मनुष्य मेरे अनिष्ट का कारण होगा।"

"तुम्हारा भय भ्रम से उत्पन्न हुआ है, जैसे सब तरह के भयों का मूल-कारण किसी-न-किसी प्रकार का भ्रम होता है।"

"तो आप एक बार फिर कह दें कि महाराज का इस व्यक्ति के द्वारा कोई अनिष्ट न होगा।"

"उस दिन सब कुछ कह दिया था। अब और कुछ नहीं कहूँगी।"

(४०)

सबेरे कुंजरसिंह नरपति के साथ बिराटा के राजा सबदलसिंह के पास गया। राजा ने स्पष्ट इनकार तो नहीं किया, परंतु नरपति के बहुत हठ करने पर कहा—"देवीजी की कृपा से काम बनने की आशा करनी चाहिए, परंतु भरोसा पक्का उस समय दिला सकूँगा, जब यह निश्चय हो जाय कि कालपी के नवाब की सहायता बिना भी आपके कुमार दलीपनगर के राजा की शक्ति का सफलता-पूर्वक सामना कर सकते हैं। यदि दिल्ली का पाया लौट गया, और कालपी की नवाबी ख़तम हो गई, तो मुझे आपके राजा का साथ देने में बिलकुल संकोच न होगा। अथवा यदि आप लोग किसी तरह कालपी के नवाब को अपने पक्ष में कर लें, तो भी कदाचित् मुझे अपना सिर खपाने में ऊँच-नीच का विचार न करना पड़ेगा।"

कुंजरसिंह बोला—"कालपी का नवाब दलीपनगर पर धावा अवश्य करेगा; परंतु वह अपने स्वार्थ के लिये करेगा।"

तब ऐसी दशा में आपको कुछ दिन बल एकत्र करने और चुपचाप अवस्था देखने में बिताने पड़ेंगे। अनुकूल स्थिति होने पर हम और आप दोनों मिल-जुलकर काम कर सकते हैं।"

नरपति बोला—"हाँ, ठीक है। ज़रा देश-काल को परखकर काम करने में ही लाभ है। फिर दुर्गा सहायता करेगी। आप तब तक रहेंगे कहाँ?"

"कुछ निश्चय नहीं।" कुंजर ने सोचकर कहा—"चाहे कुमार कुंजरसिंह के पास चला जाऊँ, चाहे इधर-उधर सैन्य-संग्रह के लिये

दौड़-धूप करता फिरूँ। आजकल हम लोगों के ठौर का कुछ ठिकाना नहीं।"

नरपति ने आग्रह-पूर्वक कहा—"तब आप हमारे राजा के यहाँ ठहर जायँ।" और, ज़रा निहोरे के साथ सबदलसिंह की ओर देखने लगा।

सबदल ने पूछा—"आपका नाम ?"

विना किसी हिचकिचाहट के कुंजर ने उत्तर दिया—"अतबलसिंह।"

सबदल ने कहा—"आप यहाँ ठहर सकते हैं, यदि आपकी इच्छा हो तो। परंतु आपको रहना इस तरह पड़ेगा कि आपका पता किसी को न लगे, अर्थात् जब तक आपका अभिप्राय सिद्ध न हो जाय।"

कुंजर बोला—"यह ज़रा मुश्किल है। ऐसा स्थान कहाँ है, जहाँ मैं विना टोका-टाकी के बना रहूँ; स्वेच्छा-पूर्वक जब चाहे जहाँ आ-जा सकूँ।"

"ऐसा स्थान है।" नरपति ने बात काटकर कहा—"ऐसा स्थान देवी का मंदिर है। एक तरफ़ कहीं, जब तक चाहे तब तक, पड़े रहो। तैरना जानते हो ?"

"हाँ।" कुंजर ने उत्तर दिया।

"तब" नरपति बोला—"तब डोंगी की सहायता विना भी, स्वेच्छा-पूर्वक चाहे जहाँ आ-जा सकते हो।"

"परंतु", सबदलसिंह ने ज़रा जल्दी से कहा—"डोंगी मिलने में अधिक अड़चन न हुआ करेगी। हाँ, किसी समय उसका प्रबंध न हो सके, तो आप यों भी तैरकर पार जा सकते हैं। इस ओर की धार भी छोटी-सी ही है। मंदिर में आने-जानेवाले लोग आपकी रोक-टोक भी न करेंगे।"

एक धीमी, अस्पष्ट आह भरकर कुंजर बोला—"देखें, कब तक वहाँ इस तरह टिका रहना पड़ेगा।" फिर तुरंत भाव बदलकर उसने कहा—"सैन्य-संग्रह शीघ्र हो जायगा, और देवीजी की कृपा होगी, तो बहुत शीघ्र सफलता भी प्राप्त हो जायगी।"

---

(४१)

गोमती को मालूम हो गया कि दाँगी राजा ने सहायता-प्रदान का पक्का वचन न देकर भी अपने को कुंजरसिंह का सेनापति बतलाने-वाले व्यक्ति को आश्रय-दान दिया है। गोमती को अखरा। यद्यपि वह स्वयं दूसरों के आश्रित थी, परंतु अपने को धीरे-धीरे दलीप-नगर की रानी समझने लगी थी, और राजा देवीसिंह के सब प्रकार के शत्रुओं के प्रति उसके जी में घृणा उत्पन्न हो गई थी। यदि दाँगी राजा ने बिलकुल 'नाहीं' कर दी होती, अथवा स्पष्ट रूप से पूरी सहायता देने का वचन दिया होता, तो वह भयभीत भले ही बनी रहती, किंतु उस अवस्था में घृणा के भयंकर भाव उदय न होते।

सबदलसिंह के यहाँ से लौट आने पर गोमती की इच्छा कुंजर को दो खोटी बातें सुनाने की हुई, परंतु मन में उनके यथेष्ट रूप को निश्चित और परिमित न कर पाया। नरपतिसिंह साफ़ तौर पर उस देवीसिंह के द्रोही का पक्षपाती जान पड़ता था। कुमुद देवी का अवतार या देवी की अद्वितीय पुजारिन होने पर भी लड़की तो नरपति की थी। गोमती को रोष हुआ, कष्ट हुआ, परंतु उसने नरपति के उस अनधिकार कृत्य पर उत्पन्न हुए अपने उद्दंड रोष को कुमुद के सामने प्रकट न करने का निश्चय कर लिया। भीतर-ही-भीतर असंतोष और ग्लानि बढ़ने लगी, और किसी सुपात्र के सम्मुख प्रकट न कर पाने के निषेध और बंधन के कारण हृदय जलने लगा।

इसी समय उस मंदिर में एक व्यक्ति और आया। गोमती को उसके पुष्ट, भरे हुए चेहरे पर सतर्कता के चिह्न मालूम हुए, परंतु इससे अधिक वह उस समय और कुछ न देख सकी, क्योंकि उसने ज़रा आँख गड़ाकर गोमती की ओर देखा था। यह व्यक्ति रामदयाल था।

रामदयाल ने बहुत थोड़ी देर के लिये कुमुद को पालर में देखा था, गोमती को उसने देखा न था। इसलिये पहले उसकी धारणा हुई कि यही पुजारिन कुमुद है। गोमती भी सौंदर्य-पूर्ण युवती थी। रामदयाल को उसके नेत्र अवश्य बहुत मादक जान पड़े।

ज़रा सिर झुकाकर गोमती से नीची आँखें किए हुए ही बोला—"दूर से दर्शन करने आया हूँ।"

"कहाँ से?" गोमती ने विना कुछ सोचे-समझे पूछा।

"दलीपनगर से।" तुरंत उत्तर मिला।

गोमती के मन में कुछ और पूछने की प्रबल इच्छा हुई, परंतु उसने एक ओर कुमुद को देखा। संकोच हुआ। दूसरी ओर जाने लगी। सोचा—"यह आदमी शीघ्र यहाँ से नहीं जायगा। यदि यह कुंजरसिंह के पक्ष का या राजा के किसी वैरी का आदमी नहीं है, तो अवश्य इससे कुछ पता लगेगा।"

रामदयाल ने कुमुद को न देखा था। गोमती को हाथ के संकेत से रोकता हुआ-सा बोला—"मैं दूर से दर्शन करने आया हूँ, क्या इस समय दर्शन हो जायँगे?"

"मैं पूछकर बतलाती हूँ।" गोमती ने उत्तर दिया।

रामदयाल ने प्रश्न किया—"किससे?"

गोमती बोली—"यदि तुम्हें इस समय दर्शन न हों, तो सबेरे तो हो ही जायँगे।"

उसने कहा—"मैं तो दर्शनों के लिये चार दिन तक पड़ा रह

सकता हूँ। आप—"बड़ी नम्रता और विनय का नाट्य करता हुआ रामदयाल रुक गया।

"क्या कहना चाहते हो, कहो?" गोमती ने वार्तालाप करने की इच्छा से पूछा।

"आप ही तो हम भूले-भटकों और भवसागर के कष्ट पीड़ितों की बात को दूर तक पहुँचाती हैं। आपको किससे पूछना पड़ेगा?"

गोमती ने कहा—"मैं वह नहीं हूँ।"

रामदयाल ने सिर ज़रा ऊँचा करके पूछा—"तब वह कहाँ हैं? आप कौन हैं?"

"वह यहीं पर हैं, और मैं दलीपनगर के...की..." आगे गोमती से कुछ कहते न बन पड़ा। मुख पर लज्जा का रंग दौड़ आया। द्रुत गति से वह जहाँ कुमुद थी, वहाँ चली गई। रामदयाल उस ओर देखने लगा।

कुमुद कोठरी से निकलकर एक-दो क़दम आँगन में आई। पीछे-पीछे गोमती थी।

कुमुद के दिव्य सौंदर्य की एक झलक रामदयाल ने पालर में देखी थी। यद्यपि उसके स्मृति-पटल पर उस सौंदर्य के यथार्थ रूप की रेखाएँ अंकित न थीं, परंतु यह धुँधला स्मरण था कि विचित्र सौंदर्य है। देखते ही पालर का स्मरण जाग पड़ा, और उसने समझ लिया कि जिस युवती से पहले-पहले संभाषण हुआ था, वह कुमुद नहीं है।

तब वह कौन थी?

रामदयाल के मन में यह प्रश्न उठा, परंतु उस समय इसकी विवेचना के लिये रामदयाल को आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। वह कुछ स्त्रियों के स्वभाव से परिचित था। उसने सोचा, थोड़ी देर में उसका परिचय भी मिल जायगा।

कुमुद से विनय-पूर्वक कहा—"दूर से आया हूँ। क्या इस समय दर्शन हो जायँगे? यदि न हो सकें, तो सबेरे तक के लिये ठहर जाऊँगा। और, फिर कदाचित् एक अनुष्ठान के लिये यहाँ कई रोज़ ठहरना पड़ेगा।"

कुमुद बोली—"दर्शन इस समय भी हो सकते हैं, परंतु यदि तुम सबेरे तक के लिये ठहर सकते हो, तो प्रातःकाल का समय सबसे अच्छा है।"

"बहुत अच्छा।" रामदयाल ने कहा—"मैं तब तक यहीं कहीं या किसी पेड़ के नीचे ठहर जाऊँगा।" उसने अंतिम बात को प्रस्ताव के रूप में कहा।

"हमारी कोई हानि नहीं," कुमुद बोली—"चाहे जहाँ ठहर जाओ, मंदिर है। तुम कौन हो?"

उसने उत्तर दिया—"मैं दलीपनगर का रहनेवाला हूँ। महलों से मेरा संबंध रहा है। तीर्थ-यात्रा और एक विशेष अनुष्ठान के लिये यहाँ आया हूँ।"

गोमती ने कुमुद के कान में पीछे से कुछ कहा। उस पर विशेष ध्यान न देकर कुमुद बोली—"मंदिर में तो कोई ख़ास स्थान ठहरने के लिये है नहीं। यह दालान ख़ाली है। चाहो, तो इसमें पड़ रहना। यदि बाहर ठहरने की इच्छा हो, तो वैसा कर सकते हो।"

गोमती किसी आग्रह की दृष्टि से रामदयाल की ओर, कुमुद के पीछे से, देख रही थी। रामदयाल ने कहा—"मैं दालान में ही ठहर जाऊँगा। बाहर अकेले ज़रा बुरा मालूम पड़ेगा।"

इसके बाद वे दोनो लड़कियाँ मंदिर के एक दूसरे भाग में चली गईं।

वहाँ जाकर कुमुद ने गोमती से कहा—"तुम्हें कभी-कभी बड़ी उतावली हो जाती है। इस समय उस हारे-थके आदमी से

दलीपनगर के विषय में कुछ नहीं पूछना चाहिए। फिर किसी समय देख लेना।"

"मैं पूछ लूँ उससे किसी समय ?"

"पूछ लेना। मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं।"

उधर रामदयाल ने दालान के एक अँधेरे-से कोने में अपना डेरा लगा लिया।

उस समय मंदिर में नरपतिसिंह नहीं था। परंतु कुंजरसिंह अपनी कोठरी में था।

उसने रामदयाल के कंठ को पहचान लिया। सन्नाटे में आकर अपनी कोठरी में ;ही बैठा रहा। थोड़ी देर में अपने को सँभालकर बाहर निकला। उस समय रामदयाल दालान के उस कोने में अपना डेरा लगा रहा था। पहचान लिया। रामदयाल ने नहीं देख पाया। कुंजर अपनी कोठरी में लौट आया।

---

(४२)

संध्या के उपरांत—जब बेतवा की अस्पष्ट कल्लोल के साथ-साथ पश्चिम तटवर्ती बिराटा-ग्राम से लोगों की आहट आ रही थी, और देवी के मंदिर में कुंजर और नरपति देवी की आरती की तैयारी में लगे हुए थे—गोमती किसी काम के करने की इच्छा से आँगन में आई, परंतु किसी काम को सामने न पाकर वहाँ बैठ गई, जहाँ से रामदयाल का डेरा पास पड़ता था। रामदयाल की ओर न देखती हुई बोली—"दलीपनगर का कोई और विशेष समाचार नहीं है ?" बात कोमलता का प्रयत्न करके कही गई थी, और रामदयाल को कोमल जान भी पड़ी, परंतु उस पर अधिकार की भी छाप थी। यह रामदयाल की परख में न आई। उसने अपने आसन से ज़रा-सा खिसककर उत्तर दिया—"विशेष समाचार तो

कुछ नहीं है। राजा सैन्य-संग्रह में लगे हुए हैं। उन्हें और किसी बात की धुन नहीं है।"

"सुना है, पालर की किसी लड़ाई में बहुत घायल हो गए थे?"

"हाँ, बहुत। बाल-बाल बचे।"

"अब अच्छी तरह हैं?"

"हाँ, अच्छी तरह हैं। बहुत दिन हुए, तब चोट लगी थी। तब से तो वह कई लड़ाइयाँ लड़ चुके हैं, उस चोट की अब उन्हें याद भी न होगी।"

"दलीपनगर की सेना में एक लंबा, कठोर, कठिन आदमी था। वह मर गया या महाराज की सेवा में है?"

"उन्हीं की सेवा में है। आपको पालर की घटना कैसे मालूम है?"

ज़रा अधिकार-व्यंजक स्वर में गोमती बोली—"मैंने पालर में उस व्यक्ति को देखा था। राजा ने उस पाषाण-हृदय को कैसे अपनी सेवा में फिर रख लिया?"

रामदयाल के मन में गोमती का कुछ अधिक परिचय प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई।

बोला—"आप दलीपनगर में किसकी बेटी हैं?"

"मैं दलीपनगर में किसी की बेटी नहीं हूँ।"

"परंतु दलीपनगर में आपका कोई-न-कोई तो अवश्य है। आपने ही थोड़ी देर पहले बतलाया था।"

गोमती ज़रा गर्व-पूर्ण स्वर में बोली—"पहले तुम यह बतलाओ कि राजा से तुम्हारा कोई संबंध है या नहीं?"

"है, और नहीं है।" रामदयाल ने उत्तर दिया।

"राजा अपने सेवकों को सेवाओं का कैसा पुरस्कार देते हैं?"

"जैसा उनके मन में आता है। दानी हैं।"

गोमती ने धीरे से, परंतु स्पष्ट कोमलता के साथ, किंतु अधिकार-युक्त स्वर में, कहा—"तुम्हें मुँह-माँगा पुरस्कार मिलेगा।"

रामदयाल सावधान हुआ। ज़रा और आगे खिसका।

धीरे से बोला—"मेरे योग्य जो सेवा होगी, उसे अवश्य करूँगा।"

"यहाँ कुंजरसिंह का सेनापति ठहरा हुआ है।" गोमती ने भी धीरे से कहा—"वह राजा के विरुद्ध कुछ कार्य कर रहा है। तुम पता लगाकर राजा की सहायता करो।"

"कहाँ ठहरा हुआ है?"

"इसी मंदिर में।"

"कब से?"

"हाल ही में आया है।"

"किस प्रयोजन से?"

"बिराटा के राजा से महाराज के विरुद्ध सहायता की याचना करने के लिये। इससे अधिक मुझसे कुछ मत पूछो, क्योंकि मैं नहीं जानती। तुम्हें राजा का सेवक समझकर मैंने बतलाया है।"

रामदयाल कुछ क्षण तक सोचता रहा।

"आप कौन हैं?" रामदयाल ने एकाएक पूछा।

"मैं दलीपनगर के राजा की" गोमती ने शीघ्र उत्तर दिया—"रानी हूँ।"

"रामदयाल ने तुरंत खड़े होकर मुजरा किया। खड़ा रहा।"

गोमती मन-ही-मन प्रसन्न हुई। बैठने का संकेत किया। वह बैठ गया।

रामदयाल ने विनीत भाव से कहा—"उस दिन महाराज की जो बरात पालर को आ रही थी, परंतु बीच में ही युद्ध हो पड़ा। क्या—?"

गोमती ने अभिमान के साथ उत्तर दिया—"हाँ, मैं वही हूँ। मुझे इस बात का बड़ा दुःख रहा करता है कि इस चिंता-पूर्ण समय में महाराज का कुशल-समाचार मुझे बहुत कम मिल पाता है।"

"वह समाचार मैं कभी-कभी आपको दिया करूँगा।" रामदयाल ने प्रस्ताव किया।

गोमती बोली—"महाराज के स्वामिभक्त सेवक का नाम तो मुझे मालूम हो।"

"मेरा नाम" रामदयाल ने बतलाया—'रामदयाल है। मैं बड़ी कठिनाइयों में हूँ, और बड़े कठिन कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ। आपने शायद सुना होगा कि मृत राजा की दो रानियाँ थीं। मैं उनकी सेवा में था। वे बाग़ी हो गईं। जासूस बनकर मुझे कभी एक के पास, कभी दूसरी के पास और कभी दोनो के पास रहना पड़ा। बड़ा नाज़ुक काम है। भेद खुलने पर पूरी विपद् की आशंका है। इस समय भी उन रानियों की जासूसी के लिये दलीपनगर के बाहर हुआ हूँ।"

"रानियाँ कहाँ हैं?"

"वे दलीपनगर के बाहर हैं, तभी तो मैं बाहर हूँ। उनका ठीक-ठीक पता मालूम होने पर बतलाऊँगा। एक प्रार्थना है।"

"क्या?"

"कोई बात कहीं प्रकट न हो, अन्यथा महाराज के हित की हानि होगी।"

"कभी किसी प्रकार प्रकट न हो सकेगी।"

"इस मंदिर में मैं कभी कभी आना-जाना चाहता हूँ। आपकी बात से मुझे एक और काम का पता लग गया।"

गोमती बोली—"ठहर तो यहाँ सकोगे, परंतु शायद बाहर रहना पड़ेगा। पुजारिन के पिता नरपति कुंजरसिंह के पक्ष में

मालूम होते हैं। उन्हें तुम्हें अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करना चाहिए।"

"वह सब मैं धीरे-धीरे देखूँगा।" रामदयाल बोला—"चढ़ौती के विषय में यहाँ क्या नियम है?"

"कोई विशेष नियम नहीं है। परंतु कुंजरसिंह ने उस बार पालर में एक बहुमूल्य आभूषण नरपति को भेंट किया था। इसलिये शायद वह कुंजरसिंह के नाम का पक्ष करते हैं। कुमुद अवश्य बहुत धीर, शांत और तेजस्विनी हैं। उनमें अवश्य देवी का अंश है।"

"मेरे लिये तो" रामदयाल ने स्वर में सचाई की खनक पैदा करके कहा—"संसार-भर की सब स्त्रियों में सबसे अधिक मान्य आप हैं।" अंधकार में रामदयाल ने नहीं देखा। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि उसके गालों पर मंतव्य के प्रकट होने पर गहरी लाली छा गई थी। इतने में देवी की आरती के लिये गोमती को कुमुद ने पुकार लिया।

---

(४३)

दूसरे दिन सबेरे रामदयाल दर्शनों के लिये मूर्ति के सामने पहुँचा। कुमुद मूर्ति के पास बैठी हुई थी, और नरपति उससे ज़रा हटकर। रामदयाल ने बड़ी श्रद्धा दिखलाते हुए मूर्ति पर जल चढ़ाया, और बेले के फूल अर्पण किए। उसने अपने कपड़े की ओर कुछ निकालने के लिये हाथ बढ़ाया। नरपति ने एक बार उस ओर देखकर दूसरी ओर मुँह कर लिया। इतने में कुंजरसिंह भी आ गया। कुमुद की आँखें मूर्ति की ओर देखने लगीं। रामदयाल ने बग़ल से कुंजरसिंह को देखा, फिर मुड़कर। पहचान में संदेह न रहा। एक क्षण के लिये सकपका-सा गया। गोमती पास थी। उसने रामदयाल का यह शारीरिक व्यापार ताड़ लिया। उसे वह बहुत स्वाभाविक जान पड़ा, और रामदयाल के प्रति सहानुभूति और कुंजरसिंह के प्रति

घृणा का भाव कुछ और गहरा हो गया। रामदयाल ने अपने को संयत कर लिया। कपड़ों में से सोने का एक बहुमूल्य गहना निकालकर मूर्ति के चरणों में चढ़ा दिया।

नरपति विस्फारित लोचनों से इस व्यापार को देखने लगा।

गहना अपने हाथ में उठाकर नरपति ने कहा—"आप कहाँ के कौन हैं ?"

"मैं दलीपनगर का हूँ।" रामदयाल ने उत्तर दिया—"इससे अधिक कुछ और बतलाना मेरे लिये इस समय असंभव है। आफ़त में हूँ। दुर्गा के दर्शनों से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये आया हूँ। मेरी प्रार्थना है कि मेरे स्वामी का भला हो।"

गोमती ने उसी समय आँखें मूँदकर रामदयाल की प्रार्थना स्वीकार की जाने के लिये देवी से प्रार्थना की, और बड़े अनुनय की दृष्टि से कुमुद की ओर देखा।

नरपति बोला—"आपके स्वामी का कल्याण होगा।"

गोमती किसी उमड़े हुए भाव के वेग को सहन न कर सकने के कारण बोली—"जीजी के मुख से यह आशीर्वाद और अच्छा मालूम होगा।"

कुमुद कुछ नहीं बोली।

नरपति ने तुरंत कहा—"दुर्गा का प्रसाद इन्हें दिया जाय—फूल और भस्म।"

कुमुद ने भस्म उठाकर रामदयाल को दे दी। पुष्प नहीं दिया।

गोमती के हृदय को बड़ी पीड़ा हुई। नरपति बोला—"यदि उचित समझा जाय, तो पुष्प भी दे दिया जाय। यह दुर्गा के अच्छे सेवक जान पड़ते हैं।"

कुमुद मूर्ति को प्रणाम करके वहाँ से मंदिर के दूसरे भाग में

धीरे से चली गई। गोमती ने कुमुद के नेत्रों में इतनी अवज्ञा पहले कभी नहीं देखी थी।

बड़ी कठिनाई से गोमती ने नरपति से कहा—"इन्होंने क्या कोई अपराध किया है ?"

उदास स्वर में नरपति बोला—"कोई अपराध नहीं किया, और न देवी इनसे रुष्ट हैं। रुष्ट होतीं, तो भस्म का प्रसाद क्यों देतीं ? जान पड़ता है, अभी इनके कार्य में कुछ विलंब है, इसलिये पुष्प का प्रसाद नहीं मिला।"

"तब इनके यहाँ थोड़े दिनों ठहरे रहने में आपकी कोई हानि तो होनी नहीं ?" गोमती ने कहा।

नरपति ने उत्तर दिया—"ज़रा भी नहीं। चैन से ठहरे रहें। एक दिन ऐसा अवसर अवश्य आएगा, जब देवी प्रसन्न होकर मनचाहा वरदान भी देंगी।"

रामदयाल कुंजरसिंह को देखकर सकपकाया था, परंतु इस घटना से विचलित नहीं जान पड़ा।

मुस्किराकर बोला—"एक दिन उनकी कृपा अवश्य होगी, और मेरा तथा मेरे स्वामी का अवश्य कल्याण होगा।"

' अवश्य।" नरपति बोला।

"अवश्य।" रामदयाल ने कहा।

नरपति ने रामदयाल से कहा—"आप यहाँ जब तक मन चाहे, बने रहिए, अर्थात् जब तक आपको अभीष्ट आशीर्वाद न मिल जाय।"

इसके बाद रामदयाल वहाँ से उठकर मंदिर के बाहर गया। कुंजरसिंह उसके पीछे-पीछे।

जब दोनो अकेले रह गए, कुंजरसिंह ने धीमे स्वर में, परंतु तीखेपन के साथ, कहा—"यहाँ किसलिये आए हो ?"

"दर्शनों के लिये।"

"तुम्हें ये लोग जानते नहीं हैं।"

"जानते हैं।"

"ये लोग यह जानते हैं कि तुम्हारा नाम रामदयाल है, और किस तरह के मनुष्य हो।"

"मैंने उन्हें स्वयं बतला दिया है।"

"तुम यहाँ से चले जाओ।"

क्रोध के मारे कुंजरसिंह काँपने लगा।

रामदयाल ठंडक के साथ बोला—"राजा, ग़ुस्से से काम न चलेगा। मैंने अपना परिचय इन लोगों को दे दिया है, परंतु आप यहाँ नाम और काम दोनो की दृष्टि से छिपे हुए हैं। आपका भेद खुलने से मेरी कोई हानि न होगी।"

"राजा देवीसिंह के आदमी आपके लिये घूम रहे हैं। कालपी का नवाब, जो भांडेर में यहाँ से पास ही ठहरा हुआ है, आपसे शायद बहुत संतुष्ट नहीं है। रानियों से आपकी पटती नहीं। रियासत के सरदार आप लोगों के झगड़ों से अपने को बचाए हुए हैं। लोचनसिंह अभी जीवित है। और, मैंने कभी आपका कोई बिगाड़ नहीं किया, फिर न-जाने राजा मुझसे क्यों रुष्ट हैं।"

कुंजरसिंह ने एक क्षण के लिये कुछ सोचा। बोला—"मैं जानता हूँ, तुम घोर नास्तिक हो। तुम केवल दर्शनों के लिये यहाँ कदापि नहीं आए हो। बोलो, काहे के लिये आए हो?"

"आप जानते हैं," रामदयाल ने बनावटी विनय के साथ उत्तर दिया—"मैं और कुछ नहीं, तो स्वामिधर्मी तो अवश्य हूँ। मेरे स्वामी का विश्वास इस स्थान पर है। इसीलिये आया हूँ।"

कुंजरसिंह जिस बात का संदेह रामदयाल पर कर रहा था, उसे प्रकट करना उसने उचित नहीं समझा, परंतु भर्त्सना करने की प्रबल

इच्छा जाग पड़ी थी, और भर्त्सना नहीं करवाई थी, इसलिये रामदयाल का गला घोट डालने का भाव तो मन में उठा, परंतु जीभ या हाथ ने कोई तैयारी नहीं दिखलाई।

रामदयाल कनखियों से देखकर धीरे से बोला—"यदि राजा क्षमा करें, तो एक बात कहूँ?"

कुंजरसिंह ने मुँह से कुछ न कहकर सिर से हाँ का संकेत किया।

रामदयाल ने कहा—"इस बार दोनो रानियाँ देवीसिंह के विरुद्ध हैं। दोनो दलीपनगर छोड़कर चली आई हैं। आप उनके साथ अपनी शक्ति सम्मिलित कर दें, और कालपी के नवाब के साथ घृणा न करें, तो दलीपनगर का सिंहासन आपके पाँव-तले शीघ्र आ जायगा।"

"मैं सदा रानियों के सम्मान का ध्यान रखता आया हूँ, परंतु अनुचित कार्यों का सहायक नहीं हो सका। कालपी के नवाब के ऊपर भी कोई है, जानते हो?"

"हाँ, राजा। दिल्ली है। परंतु वहाँ किसी की कोई कुछ भी सुननेवाला नहीं मालूम पड़ता, ऐसा मैं आप ही लोगों से सुना करता हूँ।"

"ख़ैर, देखा जायगा; परंतु मैं एक बात से तुम्हें सावधान करना चाहता हूँ।"

"वह क्या है राजा?"

"तुमने जिसके प्रति अपना अशुद्ध प्रयत्न पालर में किया था, उससे दूर रहना—बहुत दूर, नहीं तो मैं सिंहासन-प्राप्ति की अभिलाषा को एक ओर रख दूँगा, और तुम्हें उस प्रयत्न के किए पर पछताने का भी समय न मिलने दूँगा।"

कुंजरसिंह ने अंतिम बात बड़े जोश के साथ कही थी।

रामदयाल हँसा। वह हँसी कुंजर के मन में छुरी की तरह चुभ गई।

रामदयाल बोला—"राजा, यदि मैंने कुछ किया था, तो अपने मालिक की आज्ञा से। जो कुछ करूँगा, अब भी अपने स्वामी की भलाई के लिये। परंतु यह मैं वचन देता हूँ कि आपका मार्ग लाँघने की चेष्टा न करूँगा। यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें, तो मैं तो यही बिनती करूँगा कि यहाँ न पड़े रहकर आप राज्य-प्राप्ति का कुछ और भी उपाय करें। पूजार्चा तो उन लोगों के लिये है, जो हथियार का भरोसा कम करते हैं, और अन्य बातों का अधिक।"

सुनकर कुंजर विकल हो गया। बोला— 'मैं तुम्हें स्वामिद्रोही नहीं कहता। परंतु तुम नीच अवश्य हो।"

"यह तो राजा लोगों का क़ायदा ही है।" रामदयाल ने कुटिल मुस्किराहट के साथ कहा—"काम निकल जाने पर नौकरों को धता बता देते हैं। ग़रीब तो सदा से ही दोषी होता चला आया है, और चाकर अनंत काल से नीच।"

"मैं पूछता हूँ, तुम उस लड़की से कल शाम को क्या घुल-घुलकर बातें कर रहे थे?" कुंजर ने एकाएक पूछा।

प्रश्न के आकस्मिक वेग से बिलकुल विचलित न होकर रामदयाल ने उत्तर दिया "पुजारिन से तो मेरी कोई बातचीत नहीं हुई।"

"वह नहीं", कुंजर जी कड़ा करके बोला—"तुम उस दूसरी लड़की से घुल-घुलकर क्या बातें करते थे?"

"वह कौन है, आप जानते हैं?" रामदयाल ने दृढ़ता-पूर्वक पूछा।

कुंजरसिंह ने अवहेलना की दृष्टि से उसकी ओर देखा।

रामदयाल ने कहा—"वह राजा देवीसिंह की रानी है।"

कुंजरसिंह सन्नाटे में आ गया। एक क़दम पीछे हट गया। बोला—"झूठ, असंभव !"

कोई उत्तर न देकर रामदयाल फिर मंदिर में चला गया।

---

(५४)

रामदयाल को मंदिर में धँसते हुए नरपति मिला। वह कहीं बाहर जा रहा था। कुंजरसिंह रामदयाल के पीछे-पीछे नहीं आया था। कानाफूसी-सी करते हुए नरपति बोला—"यहाँ के राजा से कुछ काम हो, तो मेरे साथ चलो।"

रामदयाल बोला—"अभी तो नहीं, किसी और समय चलूँगा। एकआध दिन यहाँ रहकर मैं काम से बाहर जाऊँगा। लौटकर फिर बिनती करूँगा।"

नरपति चला गया।

कुमुद वहाँ दिखलाई नहीं पड़ी। गोमती को एकांत में देखकर रामदयाल ने एक ओर बुलाने का सम्मान-पूर्वक संकेत किया। वह आ गई।

रामदयाल ने कहा—"जिसे आपने कुंजरसिंह का सेनापति समझ रक्खा था, यह सेनापति नहीं है।"

"तब कौन है ?" गोमती ने ज़रा चिंतित होकर पूछा।

"स्वयं कुंजरसिंह।"

गोमती चौंकी। रामदयाल ने निवारण करते हुए कहा—"आप आश्चर्य न करें, वह महाराज को हानि पहुँचाने के लिये तरह-तरह के उपायों की रचना में सदा व्यस्त रहते हैं। परंतु मैं इसका उपाय करूँगा, आप चिंतित न हों। केवल एक भीख माँगता हूँ।"

"स्नेह-पूर्वक गोमती बोली—"क्या चाहते हो रामदयाल ?"

"आप इस भेद को कदापि किसी के सामने प्रकट न करें।"

रामदयाल ने प्रस्ताव किया—"मेरी अनुपस्थिति में यहाँ जो कुछ हो, उसपर अपनी दृष्टि रक्खें, और मेरे ऊपर विश्वास। मैं एक-आध रोज़ के लिये बाहर जाऊँगा। वहाँ से लौटकर अपनी और योजनाएँ बतलाऊँगा। जैसा कुछ उस समय निश्चय हो, उसके अनुसार फिर काम करें।"

गोमती ने सरलता-पूर्वक कहा—"मैं तो कुछ-न-कुछ करने के लिये बहुत दिनों से बेचैन हो रही हूँ, परंतु यह ठीक-ठीक समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ। महाराज के पास शीघ्र जाओगे न?"

"अवश्य।"

"उन्हें हमारा यहाँ का रहना मालूम है?"

"नहीं मालूम है, परंतु अब मालूम हो जायगा। मेरी अभिलाषा है, अभी वह यहाँ न आवें, और न आप वहाँ जायँ।"

अभिमान-पूर्वक गोमती बोली—"जब तक वह स्वयं यहाँ नहीं आएँगे, मैं दलीपनगर नहीं जाऊँगी।"

रामदयाल नम्रता-पूर्ण स्वर में बोला—"यह तो उचित ही है, परंतु इस समय सरकार यह आशा न करें, और न मुझे ही आज्ञा दें कि महाराज यहाँ आवें।"

"नहीं, मैं ऐसा क्यों करने चली? क्या यहाँ आने से उनके किसी अनिष्ट की संभावना है?"

"बहुत बड़ी, कालपी का नवाब उनका परम शत्रु है। कुंजरसिंह उनका प्रतिद्वंद्वी इसी मंदिर में है। मृत राजा की रानियाँ उनके विरुद्ध खड्गहस्त होकर विचरण कर रही हैं। ऐसी हालत में उनका अकेले-दुकेले इस स्थान में आना बड़ा संकट-पूर्ण होगा। और, ससैन्य वह अभी आ नहीं सकते। मैं स्वयं रानियों का आदमी बनकर घूम रहा हूँ। मुझे लोग महाराज का सेवक नहीं समझते।"

गोमती ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम बड़े चतुर मनुष्य जान पड़ते

हो, रामदयाल। धन्य हैं महाराज, जिनका ऐसा दक्ष और पुरुषार्थी सेवक हो। तुम कब यहाँ रहोगे?"

रामदयाल ने उत्तर दिया—"एकआध दिन और हूँ। ज़रा यहाँ के राजा को कुंजरसिंह के पक्ष से विमुख कर लूँ, या कम-से-कम उत्साह-रहित कर दूँ, तब दूसरा काम देखूँ।"

यह कहकर रामदयाल एकटक गोमती की ओर देखने लगा, मानो कुछ कहना चाहता हो, और कहने के लिये या तो शब्द न मिलते हों, अथवा हिम्मत न पड़ती हो।

गोमती बोली—"क्या कहते हो, कहो।"

"कहते डर लगता है।" रामदयाल बोला।

"कहो, कहो।" गोमती प्रोत्साहन देते हुए बोली।

"आपका इन पुजारिन के विषय में क्या विश्वास है?" उसने पूछा।

गोमती ने उत्तर दिया—"बहुत शुद्ध हैं। दुर्गा से उनका संपर्क है। लोग उन्हें देवी का अवतार समझते हैं।"

"यह सब ठीक है," रामदयाल आँखें नीची करके बोला—"परंतु मेरी यह प्रार्थना है कि आप ज़रा यह अच्छी तरह से देखती रहें कि कुंजरसिंह का वह कितना पक्ष करती हैं, और क्यों करती हैं? आपको स्मरण होगा कि उन्होंने मुझे स्वामी की सफलता के लिये पूरा आशीर्वाद नहीं दिया।"

कुछ सोचकर गोमती ने कहा—"मुझे ख़ूब याद है। उन्होंने एक बार आशीर्वाद दे दिया है। दूसरी बार आशीर्वाद फिर भी दे देंगी। क्या वह तुम्हें पहचानती हैं?"

"नहीं, वह मुझे नहीं जानतीं," रामदयाल ने उत्तर दिया—"परंतु मुझे विश्वास है कि वह कुंजरसिंह को पहचानती हैं। उन्होंने यह समझकर मुझे पूरा आशीर्वाद नहीं दिया कि कहीं कुंजरसिंह के विरुद्ध न जा पड़े।"

गोमती गंभीर चिंतन करने लगी। रामदयाल बोला—"मैं केवल यह बिनती करता हूँ कि आप सावधानी के साथ वस्तुस्थिति का निरीक्षण करती रहें। इस बात का भय न करें कि यह देवी का अवतार हैं—"

"कहो, कहो, और क्या कहते हो, मैं भय किसी का नहीं करती।" गोमती ने आग्रह-पूर्वक कहा।

वह बोला—"मेरा यह विश्वास है कि इस कलियुग में अवतार नहीं होता। मैं आपसे केवल इतना अनुरोध करता हूँ कि आप ख़ूब देख-भाल करती रहें।"

इसी समय बाहर से कुंजर आकर अपनी कोठरी में चला गया।

---

(४४)

कुंजरसिंह को जितनी बेचैनी उस दिन हुई, उतनी लोचनसिंह के मुक़ाबले में सिंहगढ़ छोड़ने के लिये विवश होने पर भी नहीं हुई थी। उसे भय हुआ कि रामदयाल कुमुद को किसी षड्यंत्र में फँसाने और स्वयं उसे किसी विपद् के कुचक्र में डालने की चिंता में है। उसने कुमुद से उसी दिन अकेले में कुछ कहने का निश्चय किया।

कई बार निराला पाने की कोशिश की, परंतु कभी गोमती को उसके पास पाया, और कभी किसी दर्शन करनेवाले को। कुमुद ने भी उसकी विचलित अवस्था को एकआध बार देखा, और उसने यह भी देखा कि उसकी दृष्टि में कुछ अधिक तत्परता, कुछ अधिक आग्रह है। गोमती ने भी उसे विना किसी उद्देश्य के इधर-उधर भटकते हुए देखा, और वह सावधानी के साथ उसके विषय में विचार करने लगी। कुंजर ने सोचा—"यह स्त्री मेरी ओर आँख गड़ाकर क्यों देखती है? क्या रामदयाल ने अपने कुचक्र में इसे भी शामिल किया है?"

अंत में कुंजरसिंह को दोपहर के लगभग एक अवसर हाथ लगा। गोमती रसोई बनाने के लिये एक कोठरी में चली गई। दूसरी में नरपति को कुमुद भोजन कराने लगी। रामदयाल मंदिर के एक कोने में मुँह पर चादर ढाँपे पड़ा था। कुंजर मंदिर के आँगन में जाकर ऐसी जगह खड़ा हो गया, जहाँ से नरपति उसे नहीं देख सकता था, केवल कुमुद देख सकती थी। परंतु कुमुद ने उसकी ओर देखा नहीं। जब धूप में खड़े-खड़े कुमुद की ओर टकटकी लगाए कुंजर को कई पल बीत गए, तब उसने धीरे से पैर की आहट की।

कुमुद ने देखा। उधर रामदयाल ने भी चादर को ज़रा-सा खिसका कर देखा। कुंजर ने कुमुद को हाथ जोड़कर सिर से बुलाने का संकेत किया। देखकर भी वह कुछ समय तक वहीं बैठी रही। जलती धूप में कुंजर वहीं खड़ा रहा।

यथेष्ट से कुछ अधिक भोजन-सामग्री नरपति के सामने रखकर कुमुद ने अपने पिता से कहा—"मैं अभी आती हूँ।"

कभी-कभी सनक के साथ काम करने का कुमुद को अभ्यास पड़ गया था। उसका पिता इस गुण में किसी दैवी व्यापार का लक्षण समझा करता था। इसीलिये उसने कुमुद से कोई पूछ-ताछ नहीं की।

आँगन में प्रवेश करते ही कुमुद ने चारो ओर आँख डाली। गोमती वहाँ न थी, मंदिर की बग़लवाली छोटी-सी दालान में रामदयाल चादर से मुँह ढके पड़ा था। वहाँ और कोई न था।

कुंजरसिंह ने मंदिर के बाहर चलने का इशारा करते हुए दरवाज़े की ओर क़दम बढ़ाया। कुमुद भीतर जाकर देवालय की चौखट पर जा बैठी। कुंजर लौटकर वहीं जा पहुँचा। नीचे बैठ गया। कुमुद भी चौखट से उतरकर नीचे बैठने को ज़रा हिली, परंतु फिर जहाँ-की-तहाँ बैठी रही। उस स्थान से, जहाँ रामदयाल लेटा था ओट थी।

"क्या है ?" बहुत बारीक स्वर में, निस्संकोच भाव से, कुमुद ने पूछा।

"क्या कहूँ, बहुत दिनों से—बड़ी देर से कहना चाहता था।" कुंजर बोला—"आप मेरी ढिठाई क्षमा करेंगी ?"

"कहिए।" कुमुद ने कहा—"ऐसी क्या बात है, जो आप अकेले में कहना चाहते हैं ?"

प्रश्न की हिम-तुल्य ठंडक से कुंजर सिकुड़-सा गया।

बोला—"आप मुझे नहीं जानती हैं, न जानने की आवश्यकता है, और न कभी जान सकेंगी, क्योंकि कभी फिर इस जीवन में आपके दर्शन होंगे या नहीं, इसमें पूर्ण संदेह है।"

कुमुद का होंठ कुछ कहने के लिये ज़रा-सा हिला, परंतु बोली नहीं। उत्सुकता के साथ कुंजर की ओर देखने लगी।

उसने कहा—"मैं दलीपनगर का एक अभागा हूँ। एक दिन— उस दिन, जब संक्रांति का स्नान करने दलीपनगर के महाराज पालर आए थे, मैंने मंदिर में दर्शन किए थे। उस समय यह लड़की आपके साथ न थी।"

"मैं आपको जानती हूँ।" आँखें बिना नीची किए हुए कुमुद ने कहा।

"मुझे !" कुंजर ने आश्चर्य प्रकट किया—"मुझे आप जानती हैं !" फिर आश्चर्य को संयत करके बोला—"हाँ, किसी-किसी भक्त का कुछ स्मरण आपको रह सकता है, परंतु मैं कौन हूँ, यह आप न जानती होंगी।"

"जानती हूँ, अथवा न भी जानती होऊँ, तो भी कोई हानि नहीं।" कुमुद ने अपनी साधारण मिठास के साथ कहा—"आप अपनी बात तो कहिए।"

कुमुद की उँगली में अपनी हीरे की अँगूठी देखते हुए कुंजरसिंह

बोला—"इस अँगूठी ने मेरा नाम बतलाया होगा। एक दिन वह था, और एक दिन आज है। यदि आपकी कृपा हुई, तो दिन फिर फिरेंगे। न भी फिरें, परंतु आपकी कृपा बनी रहे।"

कुमुद ने अँगूठीवाले हाथ को ज़रा पीछे खींचकर कहा—"मुझे पिताजी को परोसने के लिये जाना है। आपने किसलिये बुलाया था?"

"यहाँ कोई संकट उपस्थित होनेवाला है।" कुंजरसिंह बोला—"षड्यंत्र रचे जा रहे हैं। यह जो पुरुष कल यहाँ आया है, बड़ा भयंकर और नीच है। उस लड़की के साथ कुछ सलाह कर रहा था। आपकी रक्षा का कुछ उपाय होना चाहिए।"

नेत्र स्थिर करके कुमुद ने कहा—"मेरे लिये किसी को चिंता न करनी चाहिए। दुर्गाजी की कृपा से मेरे ऊपर कोई संकट कभी नहीं आ सकता। यह लड़की मेरे गाँव की ही है। उस दिन जब पालर में युद्ध हुआ, इस लड़की का विवाह उस पुरुष के साथ होने जा रहा था, जो अब दलीपनगर का राजा है। वह अपने पति के लिये चिंतित रहा करती है, और कोई बात नहीं है।"

आनेवाले संकट के विस्तार को छोटा समझे जाने के कारण कुंजरसिंह अधिक आग्रह के स्वर में बोला "मैंने दलीपनगर के सिंहासन की रक्षा में प्राणों के अतिरिक्त लगभग सभी कुछ त्यागा है। आशीर्वाद दिया जाय कि इन चरणों की रक्षा में उनका भी उत्सर्ग कर दूँ।"

किसी अन्य को दूसरे समय दिए गए एक वरदान का स्मरण करके कुमुद ने कहा—"आपको ऐसी कोई चिंता न करनी चाहिए।"

कुमुद ने विश्वास-पूर्ण स्वर में बात कही, परंतु उसमें किसी तरह की अवहेलना न थी।

कुंजरसिंह ने हाथ जोड़कर कहा—"अशीर्वाद दीजिए कि इन चरणों के लिये ही जीवन धारण करूँ।"

कुमुद के मुख पर लालिमा छा गई। नेत्रों में निस्संकोचता का वह भाव न रहा। एक ओर आँखें करके बोली—"आपकी बात मुझे विचित्र-सी जान पड़ती है। किसी तरह के कष्ट की कोई आशंका मुझे इस समय नहीं भास रही है। यदि कोई होगी, तो मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि रक्षा का उचित उपाय किया जायगा।"

"मेरी यह अभिलाषा है कि उस उपाय में मैं भी हाथ बँटाऊँ।"

"जब आवश्यकता होगी, आपसे कहने में निषेध न होगा।"

"मुझे मंत्र-दीक्षा दे दी जाय, तो मैं भी पूजार्चा में ही अपना संपूर्ण समय व्यतीत किया करूँ।"

"आप क्षत्रिय हैं, और मैं ब्राह्मण नहीं हूँ।"

"परंतु आप देवी हैं, और मैं देवी का उपासक।"

"आपको और कुछ नहीं कहना है? पिताजी के पास जाती हूँ।"

उत्तर की प्रतीक्षा विना किए ही कुमुद वहाँ से चली गई। जब तक वह रसोईघर में नहीं पहुँच गई, कुंजरसिंह सोने को लजानेवाले उसके पैरों को देखता रहा। उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे उसकी नाड़ी में बिजली कौंध गई हो। जब वहाँ से चला, तब उसकी आँखों में तारे-से छिटक रहे थे। उस समय उसने यह नहीं देखा कि दालान में रामदयाल अपने स्थान पर न था।

---

(४६)

उसी दिन रामदयाल ने अपनी गठरी-मुठरी बाँधकर जाने की तैयारी की।

नरपति से कहा—"कुछ दिनों के लिये बिदा माँगता हूँ।"

परंतु लौटकर जल्द आना, दुर्गा का स्मरण करना।" नरपति ने अनुरोध किया।

कुंजरसिंह ने अपनी कोठरी से रामदयाल की बात सुनकर ज़रा चैन की साँस ली।

रामदयाल ने जाने के पहले गोमती को अकेले में ले जाकर बात-चीत की। बोला—"आप एक बार कुमुद के सामने कुंजरसिंह का तो नाम लीजिएगा?"

"क्यों? वह तो उसे पहचानती हैं न?" गोमती ने पूछा।

"जान-पहचान से भी कुछ अधिक गहरा रंग है। मुझे भय है, शायद महाराज के ख़िलाफ़ वह भी कुंजरसिंह को कुछ मंत्रणा दें।"

महाराज के ख़िलाफ़! मैं इस बात से बहुत डरती हूँ। उनके पास दुर्गा की शक्ति है। इसमें तो रामदयाल, महाराज का बड़ा अनिष्ट होगा।"

"ज़रा भी न होगा।" रामदयाल ढिठाई के साथ बोला—"मैंने आज कुंजरसिंह और कुमुद का संभाषण सुना है। दोनो पहले से एक दूसरे को जानते हैं। आप महाराज की हित-कामना और कुंजरसिंह के अहित-चिंतन की बात कहें, तब आपको मालूम हो जायगा कि वास्तव में इन दोनो में क्या संबंध है, और तब आपको विश्वास हो जायगा कि कुमुद देवी का अवतार-ववतार कुछ नहीं है।"

गोमती ने बात काटकर कहा—"ओह! अधिक कुछ मत कहो इस विषय पर, मैं जाँच-पड़ताल में लग रही हूँ।" फिर एक क्षण बाद बोली—"यह संभाषण किस समय हुआ था?" उत्तर मिला—"आज जब आप रसोई बना रही थीं। ये हाथ और रसोई बनाने का वह कष्ट! हे भगवान्!"

गोमती ने कहा—"यह सब कुछ नहीं है रामदयाल। जब जैसा

समय आवे, तब वैसा भुगत लेना चाहिए। तुम महाराज के पास जा रहे हो?"

"हाँ, अभी जा रहा हूँ।"

"महाराज तो दलीपनगर में ही होंगे?"

"वहाँ पहुँचकर ठीक-ठीक मालूम होगा। उन्हें संसार भर के तो झंझट घेरे रहते हैं।"

"उनकी सेना तो बड़ी अच्छी होगी? कालपी के नवाब का सामना अब की बार भी ख़ूब अच्छी तरह करेंगे?"

"इसमें संदेह को कोई स्थान नहीं है।"

"महाराज का स्वभाव तो बहुत दयालु है?"

"अपने लोगों पर बड़ी दया करते हैं। बड़े वीर और दानी हैं।"

"तुम उनके पास सदा रहते हो?"

"जब कभी दलीपनगर में होता हूँ, तब।"

"वह और किस-किस विषय में प्रीति रखते हैं? अर्थात् शास्त्र-चर्चा, विद्वानों का संग इत्यादि भी होता है?"

"मैं स्वयं इन बातों को कम समझता हूँ, परंतु महाराज हैं बड़े रसिक।"

"रसिक!" आश्चर्य के साथ गोमती ने कहा—"रसिक से तुम्हारा क्या प्रयोजन?"

रामदयाल ने चतुरता प्रकट न करते हुए उत्तर दिया—"जब कभी महीने-पखवारे में एकआध घड़ी का अवकाश मिल जाता है, कुछ गाना-वाना सुन लेते हैं, और कुछ नहीं।"

गोमती बोली—"हाँ, राजा हैं।"

फिर एक क्षण बाद पूछा—"कुमुद और उस व्यक्ति में, जिसे तुमने बतलाया कि कुंजरसिंह है, कोई विशेष बातचीत हुई है?"

उसने उत्तर दिया—"ऐसे किसी विशेष वाक्य को संपर्ण

प्रसंग से निकालकर बतलाने से तो मेरी बात की पूरी पुष्टि न होगी, परंतु सारे वार्तालाप का प्रयोजन स्नेह या प्रेम को व्यक्त करनेवाला अवश्य था।"

गोमती ने अवहेलना के साथ कहा—"उँह, मुझे क्या करना है? देखा जायगा। रामदयाल, तुम महाराज से यह मत कहना कि मैं अपनी रसोई अपने हाथ से बनाती हूँ।"

रामदयाल बोला—"आपने अच्छा किया, जो मना कर दिया, नहीं तो मैं अवश्य कह देता। महाराज को अब तक अवश्य कुछ ख़बर लेनी थी, परंतु उन्हें मालूम न था कि आप यहाँ हैं।"

"अब भी" गोमती ने कहा—"वह मेरी चिंता न करें। पहले अपने राज्य को सँभाल लें। जब शांति स्थापित हो ले, और वह बेखटके हो जायँ, तब इधर का ध्यान करें, और कभी-कभी गाना-बजाना अवश्य सुन लिया करें।"

रामदयाल बोला—"सो तो मैं उनके स्वभाव को ख़ूब जानता हूँ। वह अभी न आवेंगे।"

रामदयाल जाने को उद्यत हुआ। गोमती ने कहा—"रामदयाल, तुम भूल मत जाना। जल्दी-से-जल्दी यहाँ की ख़बर लेना। एक बात का स्मरण रखना कि महाराज यहाँ छिप-लुककर न आवें। शत्रु बहुत पास है। पता लगने पर भारी अनिष्ट होगा।"

रामदयाल जुहार करके चला गया।

(४७)

रानियों के विद्रोह का पता राजा देवीसिंह को शीघ्र लग गया। जनार्दन को बहुत खेद और क्षोभ हुआ। खोज लगाने पर उसे मालूम हो गया कि रानियाँ रामनगर की गढ़ी में पहुँच गई हैं। रामनगर का राव पतराखन दलीपनगर का जागीरदार न था, और

अपेक्षा-कृत भांडेर के अधिक निकट होने के कारण उसके ऊपर कुछ ज़ोर नहीं चल सकता था। एक निश्चय करके जनार्दन राजा के पास गया।

राजा ने कहा—"तुम्हारा कहना न माना, इसलिये यह एक नई समस्या और कष्ट देने को खड़ी हो गई है।" और मुस्किराए।

जनार्दन ने देखा, शब्द जिस कष्ट को व्यक्त करने के लिये कहे गए थे, वह उसकी मुस्किराहट में न-जाने कहाँ विलीन हो गया।

जनार्दन उसके स्वभाव से परिचित हो गया था। बोला—"अब जैसे बनेगा, वैसे इस समस्या को भी देखना है। एक उपाय सोचा है।"

"वह क्या?" राजा ने सतर्क होकर पूछा।

मंत्री ने उत्तर दिया—"मैं एक विश्वस्त दूत दिल्ली को रवाना करता हूँ। वह सैयदों की चिट्ठी कालपी के नवाब के नाम लाएगा।"

राजा बोले—"उस चिट्ठी का असर एक वर्ष पीछे दिखलाई पड़ेगा। कौन पूछता है, उस अँधेरे गड्ढे में कि उस चिट्ठी का क्या होना चाहिए?"

"वह ऐसी चिट्ठी न होगी।" जनार्दन ने कहा—"कालपी के नवाब की सेना के लिये उस चिट्ठी में काफ़ी काम पाया जायगा, अर्थात् नवाब अलीमर्दान को दिल्ली से बुलावा आवेगा।"

"दूत कौन है आपका?" राजा ने पूछा।

"हकीमजी।" मंत्री ने उत्तर दिया—"वह स्वयं सैयद हैं, और राजनीति में भी निपुण हैं।"

"और, वह हमारे राज्य से कुछ विरक्त-से भी रहते हैं।" राजा ने मुस्किराकर कहा।

"नहीं महाराज," जनार्दन बोला—"आपके उदार और विश्वास-पूर्ण बर्ताव के कारण वह बहुत संतुष्ट हैं। मुझसे भी मित्रता का कुछ नाता मानते हैं। उनके बाल-बच्चे यहीं हैं, और वह कृतज्ञ-

हृदय पुरुष हैं। दलीपनगर दिल्ली के मुग़ल-सम्राटों का सहायक रहता चला आया है। हकीमजी की बात मानी जायगी, और अलीमर्दान को अपना हठ छोड़ना पड़ेगा। इधर-उधर कहीं थोड़े दिन के लिये चला जाय, फिर रानियों के विद्रोह का दमन बहुत सहज हो जायगा। अवस्था शीघ्र कुछ ऐसी आती जा रही है कि थोड़े दिनों बाद हमारा कोई कुछ न बिगाड़ सकेगा।"

राजा ने कहा—'मुठभेड़ बच जाय, तो अच्छा है, नहीं तो हमें एक ज़ोर का हल्ला कालपी के नवाब पर भांडेर में ही शायद करना पड़ेगा। विलंब होने से रानियाँ बाहर के कुछ सरदारों को अपनी ओर कर लेंगी, और हमारे यहाँ के भी कुछ मनमुटाव रखने-वाले जागीरदार उभड़ खड़े होंगे।"

"उधर कुंजरसिंह भी अभी बने हुए हैं।" जनार्दन बोला— "उनकी ओर से मुझे बहुत कम खटका है। किसी भी बात पर बहुत दिन जमे रहना उनके स्वभाव में नहीं है। आजकल वह बिराटा की ओर हैं। यदि उन्होंने अलीमर्दान के साथ संधि कर ली, तब अवश्य अवस्था कुछ कष्ट-साध्य हो जायगी। उनका छोटी रानी के साथ मेल शायद हो जाय, परंतु अलीमर्दान के साथ न होगा। मैंने उनकी गति की परख के लिये जासूस छोड़ रक्खे हैं। ठीक बात मालूम होने पर निवेदन करूँगा। तब तक मैं हकीमजी को दिल्ली भेजकर अलीमर्दान का प्रबंध करता हूँ।"

जनार्दन ने इस निर्णय के अनुसार हकीम को दिल्ली भेजा।

(४८)

भांडेर का पुराना नाम लोग भद्रावती बतलाते हैं। पहूज-नदी के पश्चिमीय किनारे पर बसा हुआ है। खँडहरों पर खँडहर हो गए हैं। किसी समय बड़ा भारी नगर रहा होगा। अब कुछ

मस्जिदों और सोन तलैया के मंदिर के सिवा और ख़ास इमारत नहीं बची है। पहूज के पूर्वीय किनारे पर जंगल से दबा और भरकों से कटा हुआ एक विशाल प्राचीन नगर है। नदी के दोनो ओर भरकों, मैदानों, टीलों और पहाड़ियों के विशृंखल क्रम हैं। पहूज छोटी-सी, परंतु पानीवाली नदी है, और बड़ी सुहावनी है। भांडेर से दो ढाई कोस दक्षिण-पूर्व की ओर—जहाँ से कुछ अंतर पर लहराती हुई पहूज-नदी उत्तर पश्चिम की ओर आई है—सालोन भरौली की पहाड़ियाँ हैं। इनके बीच में पत्थर का एक विशाल तथा बहुत प्राचीन मंदिर है। मंदिर में महादेवजी की मूर्ति प्रतिष्ठित है। यहाँ से बिराटा पश्चिम की ओर, क़रीब छ कोस, है। यहीं अलीमर्दान अपनी सेना लिए पड़ा था।

एक दिन रामदयाल अँधेरे में अलीमर्दान की छावनी में आया। ज़रा दिक़्क़त के बाद अलीमर्दान के डेरे पर पहुँचा। कालेख़ाँ उसके पास मौजूद था।

रामदयाल को अलीमर्दान ने पहचान लिया। पूछा—"तुम यहाँ कैसे आ गए? सुना था, क़ैद में हो।"

"क़ैद में अवश्य था, परंतु छूटकर आ गया हूँ। महारानी भी क़ैद कर ली गई थीं, वह भी स्वतंत्र हो गई हैं।"

"अब वह कहाँ हैं?"

"रामनगर में राव पतराखन की गढ़ी में।"

अलीमर्दान ने आश्चर्य प्रकट किया—"उन-जैसी वीर स्त्री शायद ही कहीं हो। कैसी जवाँमर्द और दिलेर हैं! मुझे उनके राखीबंद भाई होने का अभिमान है।"

रामदयाल बोला—"प्रण के निभाने का ठीक समय अब आ गया है। दलीपनगर पर चढ़ाई करने के लिये प्रार्थना करने को यहाँ भेजा गया हूँ।"

अलीमर्दान ने कहा—"मैं दिल्ली के समाचारों के लिये ठहरा हुआ हूँ। इस लड़ाई में उलझ जाने के बाद यदि दिल्ली का ऐसा समाचार मिला, जिससे किसी दूसरी जगह जाने का निश्चय करना पड़ा, तो बुरा होगा।"

"परंतु" रामदयाल ने बिनती की—"आप हम लोगों को मझ-धार में नहीं छोड़ सकते। महारानी आपके भरोसे क़ैद से स्वतंत्र हुई हैं। बड़ी रानी ने भी अब की बार उनका साथ दिया है।"

"तब तो राज्य के कुछ अधिक सरदार भी उनके साथ होंगे।" अलीमर्दान ने सम्मति प्रकट की—"सरदार महारानी के साथ हैं, या उन्होंने साथ देने का वचन दिया है?"

रामदयाल ने उत्तर दिया—"वचन दिया है। अवसर आते ही रणस्थल में पहुँच जायँगे।"

"कुंजरसिंह कहाँ है?"

"उनके विषय में भी निवेदन करने के लिये आया हूँ।"

यह कहकर, रामदयाल ऊपर की ओर एक क्षण के लिये देखकर सिर नीचा कर लिया। कालेख़ाँ के प्रति इस संकेत को समझकर अलीमर्दान ने कहा "तुम्हें जो कुछ कहना हो, बेधड़क होकर कहो।"

एक बार कालेख़ाँ और फिर अलमर्दान की ओर देखकर रामदयाल बोला—"मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। आप कुंजरसिंह से भली भाँति परिचित हैं। वह इस समय अकेले बिराटा की गढ़ी में हैं। राजा देवीसिंह से शायद अकेले ही लड़ने की चिंता कर रहे हैं।"

अलीमर्दान ने कहा—"बिराटा का सबदलसिंह क्या कुंजरसिंह का तरफ़दार है?"

"नहीं सरकार, उन्होंने कोई वचन नहीं दिया है।" रामदयाल

ने उत्तर दिया—"सच्ची बात कहूँगा। बिराटा के राजा को अभी पता भी नहीं है कि कुंजरसिंह गढ़ी में हैं।"

"यह कैसे!" अलीमर्दान ने अचंभा किया।

रामदयाल बोला—"गढ़ी में देवी का मंदिर है। पालर की वही पुजारिन लड़की उस मंदिर में छिपी हुई है, और वहीं पर कुंजरसिंह हैं।"

"एँ!" कालेख़ाँ ने कहा।

"हैं!" अलीमर्दान को ताज्जुब हुआ।

"हाँ सरकार," रामदयाल बोला—"मैं अपनी आँखों से देख आया हूँ।"

अलीमर्दान ने कुछ सोचकर कहा—"मैं कुछ दिनों से पता लगा रहा था, परंतु मुझे सफलता नहीं मिली।"

कालेख़ाँ बोला—"अब तो हुज़ूर को पक्का पता लग गया। कोई शक नहीं रहा।"

"यह सब ठीक है," अलीमर्दान ने कहा—"परंतु मैं मंदिर या मंदिर की पुजारिन, किसी के साथ कोई ज़्यादती नहीं करना चाहता।"

कालेख़ाँ ने आग्रह किया—"मंदिर या मूर्ति के साथ ज़्यादती करने का हुज़ूर ने कभी इरादा ज़ाहिर नहीं किया, परंतु मेरी बिनती है कि वह पुजारिन तो देवी या मंदिर है नहीं।"

"नहीं कालेख़ाँ," अलीमर्दान ने दृढ़ता के साथ कहा—"हिंदू लोग उस पर विश्वास करते हैं। वह अवतार हो या न हो, मैं हिंदुओं के जी दुखानेवाले किसी काम को न करूँगा।"

रामदयाल हाथ जोड़कर बोला—"दीनबंधु, वह न तो अवतार है, और न कुछ और। मैं अपनी आँखों से सब बातें अच्छी तरह देख

आया हूँ। उसका बाप हद दर्जे का लालची है, और वह स्वयं कुंजरसिंह के पंजे में शीघ्र आनेवाली है।"

"क्या?" अलीमर्दान ने आश्चर्य-सूचक प्रश्न किया।

"हाँ सरकार," रामदयाल ने उत्तर दिया—"मैंने अपने कानों कुंजरसिंह की बातचीत सुनी है। अभी वह उनके हाथों नहीं चढ़ी है, परंतु औरत है, उसका कुछ ठीक नहीं, कब कुंजरसिंह के साथ कहाँ भाग जाय।"

हुज़ूर को रामदयाल की साख का यक़ीन करना पड़ेगा।" कालेख़ाँ ने कहा।

अलीमर्दान थोड़ी देर तक चुप रहा। सन्नाटा छाया रहा।

रामदयाल ने स्तब्धता भंग की। बोला—"सरकार मेरे साथ वेश बदलकर चलें, तो अपनी आँखों सब देख लें।"

अलीमर्दान ने कालेख़ाँ की ओर गुप्त रीति से देखा। एक क्षण बाद बोला—"मुझे महारानी साहबा से बातचीत करने के लिये एक दिन जाना है। वेश बदलकर बिराटा भी हो आऊँगा। परंतु मैं यह चाहता हूँ रामदयाल कि महारानी के पास का जाना अभी किसी को मालूम न हो। मैं कालेख़ाँ को भी साथ ले चलूँगा।"

---

(५६)

कुंजरसिंह को दलीपनगर का मुकुट प्राप्त करने की पूरी आशा न थी, परंतु वह सोचता था कि देवीसिंह बिना अधिकार के सत्ता धारण किए हुए हैं, इसलिये जी में कड़ी ठेस-सी लगी रहती थी। इसके सिवा सिंहगढ़-पराजय का जब वह कारण ढूँढ़ता था, तब उसका मन यही उत्तर देता था कि यदि रानी ने गड़बड़ न की होती, तो पराजय न होती। परंतु क्या इससे दलीपनगर का राज्य हाथ में

आ जाता ? अपनी आशाओं या दुराग्रहों के अनुकूल ही कुंजरसिंह ने अपने तर्क और युक्ति के सूत काते।

कुंजरसिंह के पास न सेना थी, न सरदार थे, और न था उसके पास धन, परंतु उसके पास निराशाओं की आशा थी। देवीसिंह और जनार्दन के प्रति हृदय में थी कुढ़न, और थी रक्त में शूरता जो असंभव की प्राप्ति के लिये भी उद्योग करने की कभी-कभी प्रेरणा कर देती थी।

उसने बिराटा का पड़ोस स्वच्छंद गढ़पतियों को एकत्र करने के लिये ढूँढ़ा था। पूर्व उदाहरण से उसे उत्साह मिला था। परंतु बिराटा में आने पर उसने अपने मन को टटोला, तो देखा कि वहाँ अब अपने प्रयोजन पर आरूढ़ करनेवाली वह निरंतर लगन नहीं है, जो पहले कभी थी। रामदयाल के चले जाने पर उसे कुमुद से फिर एक बार बातचीत करने की अभिलाषा हुई। कोई विशेष विषय न था, कोई अर्थमूलक प्रश्न भी न था, परंतु बात चीत करने की लालसा प्रबल थी। कुमुद नहीं मिली। प्रयत्न करने पर भी वह उससे न मिल पाया।

तब कुंजर अपने दूसरे ध्येय की प्राप्ति या खोज में बिराटा से निकल पड़ा। मुसावली से अपना घोड़ा लेकर और शीघ्र लौटने का वचन देकर वह अपने मित्रों की टोह में चल दिया।

उधर रामदयाल अलीमर्दान और कालेख़ाँ को छद्म-वेष में बिराटा लिवा लाया। वहाँ से उसे शीघ्र जाना पड़ा। जीवन में पहले कभी उसने हिंदुओं के रीति-रिवाज का अभ्यास न किया था, इसलिये बदली हुई वेश-भूषा का निर्वाह करना उसे लगभग असंभव प्रतीत हुआ। कालेख़ाँ को अपने बदले हुए वेश से घृणा थी, और वह उसके निर्वाह करने का उपाय भी बहुत लापरवाही और भद्दे-पन से कर रहा था। अलीमर्दान इसलिये, इच्छा न होते हुए

भी, शीघ्र लौटा, और रामदयाल के साथ रामनगर चला गया। अभ्यास न होने के कारण उन दोनो को नयावेश भारी आफ़त मालूम हो रहा था, इसलिये पूर्व-निश्चय के प्रतिकूल उन दोनों ने रामनगर पहुँचते-पहुँचते वह वेश क़रीब-क़रीब आधा त्याग दिया।

राव पतराखन ने गढ़ी में प्रवेश के पश्चात् उन दोनो के विषय में रामदयाल से पूछा, उसने उत्तर दिया—"महारानी के सरदार हैं। वेश बदले हुए हैं। कुछ सलाह करके अभी भांडेर की ओर कालपी के नवाब से बात करने के लिये लौट जायँगे। मैं नवाब साहब के पास हो आया हूँ। सहायता का वचन पक्का हो गया है।"

इससे पतराखन को बहुत शांति नहीं मिली। बोला—सलाह-सम्मति यदि शीघ्र स्थिर हो जाय, तो बड़ा सुभीता रहे। लड़ने-भिड़ने का काम पड़े, तब मेरे सिर को आगे देखना, परंतु अपरिचित आदमियों को इस तरह बेखटके अपने घर में देखकर मुझे परेशानी होती है।"

रामदयाल ने कहा—"आप घबराइए नहीं, अब और कोई अपरिचित यहाँ न आएगा। बिराटा के राजा ने सहायता का वचन नहीं दिया है; इसलिये शीघ्र वहाँ भांडेर से धावा होगा, और हम लोग उस गढ़ी में चले जायँगे। तब तक तो आपको हमारे आतिथ्य का कष्ट सहन करना ही पड़ेगा।"

राव पतराखन तुरंत नरम पड़ गया। बोला—नहीं, मेरा यह मतलब न था। आप लोगों का घर है। जब तक जी चाहे, रहें। मैंने केवल अपरिचित लोगों के विषय में कहा था। समय बुरा है, नहीं तो कोई बात न थी। अवश्यकता पड़ने पर बिराटा के ऊपर चढ़ाई आप यहीं से बैठे-बैठे कर सकते हैं।"

रामदयाल रानियों के पास चला गया। वह अलीमर्दान और कालेख़ाँ को पहले ही एक ओर बिठला आया था।

राव पतराखन उस दिन बिराटा के ध्वस्त होने की कल्पना पर अपने मन को भुलाता रहा।

कभी-कभी जी में संदेह उठता था—"क्या कालपी का फ़ौजदार सचमुच रानियों की सहायता करेगा?"

---

(६०)

रामदयाल राव पतराखन से बातचीत करने के उपरांत रानियों के पास गया।

छोटी रानी से बोला—"नवाब साहब आए हैं।"

उन्होंने पूछा "सेना लेकर या अकेले ही?"

रामदयाल ने जवाब दिया—"अपने सेनापति के साथ अकेले आए हैं। आपका आशीर्वाद लेकर इसी समय भांडेर चले जायँगे।"

"अभी क्या सीधे भांडेर से आ रहे हैं?" बड़ी रानी ने प्रश्न किया।

"नहीं महाराज," उसने विना कुछ सोचे-समझे उत्तर दिया—"बिराटा होकर आए हैं।"

छोटी रानी बोलीं—"बिराटा के राजा से कोई बातचीत हो आई है?"

रामदयाल ने कहा—"वहाँ वह देवी का दर्शन करने गए थे।"

यह बात कहने के बाद रामदयाल मन में पछताया।

बड़ी रानी बोलीं—"दर्शन करने गए थे! वहाँ मंदिर के भीतर कैसे जाने पाए होंगे?"

रामदयाल ने बात बनाई—"उन्होंने दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की, तो मैं उन्हें वेश बदलवाकर लिवा गया था, चढ़ौती चढ़ाकर वह तुरंत वहाँ से चले आए।"

बड़ी रानी ने कहा—"पालर की वह देव-कन्या कहाँ है?"

रामदयाल झूठ न बोल सका। बोला—"हाँ महाराज, वह वहीं है।" फिर तुरंत एक क्षण बाद उसने कहा—"परंतु जैसा कुंजरसिंह राजा और देवीसिंह राजा ने झूठमूठ उड़ा रक्खा है, नवाब वैसा आदमी नहीं है। वह हमारे लोगों की तरह ही देवी-देवतों को मानता है।" बड़ी रानी चुप हो गईं।

छोटी रानी ने कहा—"बिराटा के राजा से कोई बातचीत हुई या नहीं?"

"अवसर नहीं मिला महाराज," रामदयाल ने उत्तर दिया—"उन्हें भांडेर लौटने की जल्दी पड़ रही है। यदि बिराटा का राजा हमारा साथ देने से नाहीं भी करेगा, तो इसमें हमारी कुछ हानि नहीं हो सकती। अपना बल बहुत अधिक है। मैं नवाब की पूरी सेना देखकर चकित हो गया हूँ।"

छोटी रानी ने कहा—"नवाब को बुला ला। जल्दी बातचीत करके लौट जायँ, और तुरंत कार्य-क्रम का निर्णय करके दलीपनगर से उस डाकू को भगा दें।"

रामदयाल पर्दे का प्रबंध करके अलीमर्दान और कालेख़ाँ को लिवा लाया। वे दोनो अपने उसी अधूरे वेश में थे। दोनो रानियों ने ओट से उन दोनो को देखा। छोटी रानी को हँसी आई। बड़ी रानी के मन में संदेह जगा।

रामदयाल के मार्फ़त बातचीत होने लगी। छोटी रानी—"अब क्या किया जाय? आप ही के भरोसे इतनी हिम्मत करके और कष्ट उठाकर दलीपनगर को छोड़ा।"

अलीमर्दान—"मैं तुरंत हमला करने के लिये तैयार हूँ। दिल्ली से एक संदेशा आनेवाला है। उसी की बाट देख रहा हूँ। केवल आठ-दस दिन का विलंब है। तब तक आप अपने सरदार भी इकट्ठे कर लें।

छोटी रानी—"यह हो रहा है। बिराटा का राजा किस ओर रहेगा?"

अलीमर्दान—"वह यदि आपके पक्ष में न होगा, तो मैंने उसे चकनाचूर करने की ठान ली है।"

छोटी रानी—"आप पहले दलीपनगर या सिंहगढ़ पर आक्रमण करेंगे?"

अलीमर्दान—"दोनो ठिकानों पर एक साथ धावा बोला जायगा। आप क्या बात पसंद करती हैं?"

छोटी रानी—"ठीक है। मैं स्वयं दलीपनगर पर चढ़ाई करूँगी। आप हमारी सेना के साथ रहें। अपने सेनापति को सिंहगढ़ की ओर भेजें।"

अलीमर्दान—"यही मैंने सोचा है। यदि इस कार्य-विधि में कोई तब्दीली हुई, तो आपको मालूम हो जायगा।"

छोटी रानी—"अब की बार तोपों की संख्या बढ़ा दी गई है या नहीं?"

अलीमर्दान—"पहले से कहीं अधिक, कई गुनी।"

छोटी रानी—"और सैनिक?"

अलीमर्दान—"सैनिक भी बढ़ा दिए गए हैं।"

बड़ी रानी ने धीरे से छोटी रानी के कान में कहा—"बदले में नवाब क्या लेंगे?"

"कुछ नहीं।" छोटी रानी ने कान ही में उत्तर दिया—"वह मेरे राखीबंद भाई हैं।"

बड़ी रानी ने कहा—"पहले तय कर लेना चाहिए। पीछे पैर फैलावेंगे, तो बहुत गड़बड़ होगा।"

"क्या गड़बड़ होगा?" छोटी रानी ने पूछा।

बड़ी रानी ने उत्तर दिया—"दलीपनगर को अपने अधिकार में कर लेंगे।"

"कर लें", छोटी रानी ने तीव्रता के साथ, परंतु बहुत धीरे से कहा—"देवीसिंह डाकू से तो दलीपनगर का छुटकारा हो जायगा। चाहे प्रलय हो जाय, परंतु देवीसिंह को दलीपनगर से निकालना और जनार्दन को प्राण-दंड देना है।"

छोटी रानी ने अलीमर्दान को कहला भेजा—"बड़ी महारानी आशीर्वाद देती हैं कि आपको विजय-लाभ हो।"

अलीमर्दान ने चरण छूना कहा।

इसके बाद थोड़ा-सा खा-पीकर वे दोनो वहाँ से चले गए।

---

(६१)

रामनगर से लौटकर एक दिन कालेख़ाँ बिराटा में सबदलसिंह के पास आया। राजा ने उसका आगत-स्वागत किया। जितनी देर वह ठहरा, राजा देवीसिंह के विरुद्ध बातें कहता रहा, परंतु जाते समय तक अपने आने का तात्पर्य नहीं बतलाया। सबदलसिंह ने सोचा, युद्धों का समय है, कुंजरसिंह की सहायता का वचन नहीं, तो भरोसा दे ही दिया है, नवाब भी शायद उसका पक्षपाती हो; न भी हो, तो शत्रु का शत्रु मित्र के समान होता है। यह कल्पना करके उसने निष्कर्ष निकाला कि देवीसिंह से जो आगामी युद्ध होने-वाला है, उसमें नवाब की यथाशक्ति सहायता करने के लिये कहने को आया है। स्पष्ट न कहने पर भी भाव वही था। कालपी के साथ बिराटा का क़रीब-क़रीब मातहती का संबंध था, इसीलिये स्पष्ट कथन की ज़रूरत सबदलसिंह ने नहीं समझी। कालेख़ाँ से जाने के पहले वह बोला—"हमारे पास आदमी रामनगर के राव साहब से तो अधिक नहीं हैं, परंतु हृदय हमारा वैसा लोभी नहीं है। नवाब साहब के लिये हम लोग अपना सिर देने को तैयार हैं।"

"यह तो उम्मीद ही है," कालेख़ाँ ने कहा—"जिस समय ज़रूरत पड़ेगी, आपसे देवीसिंह को ललकारने के लिये कहा जायगा।"

"आपने बड़ी कृपा की, जो हमारी कुटी पर आए।" राजा ने विनय-पूर्वक कहा—"इतनी-सी बात के लिये कष्ट उठाने की ज़रूरत न थी।"

"पुराने रिश्तों को ताज़ा करने के लिये कभी-कभी मिलने की ज़रूरत पड़ती है।" कालेख़ाँ बोला—"एक और भी छोटा-सा काम था, परंतु उसके बारे में अभी तक इसीलिये अर्ज़ नहीं किया था कि और महत्त्व की बातों के कारण उसका ख़याल ही न रहा था। अब याद आ गई।"

विनीत सबदलसिंह ने और भी नम्र होकर पूछा—'मेरे लायक़ और जो कुछ आज्ञा हो, कहिए।"

कालेख़ाँ ने एक-एक शब्द को तौलकर कहा—"नहीं, ऐसी कोई बड़ी बात नहीं है। वह जो आपके यहाँ देवीजी के मंदिर में पालर से एक लड़की भागकर आई है—"

कालेख़ाँ रुक गया। सबदलसिंह ने भयभीत होकर प्रश्न किया—"क्या उस बेचारी से कोई अपराध हो गया है? देखने में तो बड़ी भोली-भाली, दीन कन्या है।"

"अपराध नहीं बना है," कालेख़ाँ ने नम्रता का आवरण दूर फेककर कहा—"उसके सौभाग्य में रानी बनना लिखा है। नवाब साहब को उसके सौंदर्य के मारे खाना-पीना हराम है।"

सबदलसिंह का कलेजा धक्-धक् करने लगा। कोई शब्द मुँह से न निकला।

कालेख़ाँ ने उसी स्वर में कहा—"आपके लिये कोई संकट की समस्या नहीं है। आपके धर्म पर कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा

रहा है। नवाब साहब आप लोगों के मूर्ति-पूजन और लाखों देवी-देवतों के पूजन में कभी ख़लल नहीं डालते। वह लड़की आपके गाँव की भी नहीं है। आपको कुछ करना नहीं होगा। हम सब ठीक-ठाक कर लेंगे। यह हम क़ुरान शरीफ़ की क़सम पर आपको यक़ीन दिलाते हैं कि आपके मंदिर या देवता का किसी तरह का अपमान न किया जायगा, और वह लड़की नवाब साहब के महल में रहते हुए भी शौक़ से अपनी पूजा-पत्री करती रह सकती है।"

सबदलसिंह बोला—"मैं इसमें अपने लिये बड़ी भारी आफ़त देख रहा हूँ। उस लड़की को लोग देवी का अवतार मानते हैं, और वह मेरी जाति की है। मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।"

कालेख़ाँ ने कहा—"आपको कुछ करने की ज़रूरत नहीं। आप चुपचाप अपने घर में बैठे रहिए। हम दोनो आदमी यानी मैं और नवाब साहब उसे एक दिन चुपके से आकर लिवा जायँगे। वह हँसती-खेलती यहाँ से चली जायगी। ऐसा हो जाने देने में आपका फ़ायदा है। लड़ाई में आपको आदमी या रुपया-पैसा न देना पड़ेगा, और मौक़ा आने पर आपके पुराने दुश्मन रामनगर के राव को नष्ट करके वह गढ़ी भी आपको दिला दी जायगी।"

सबदलसिंह ने उस समय कोई और उपाय न सोचकर कहा—"हमें थोड़ा-सा समय दीजिए। भाई-बंदों से बात करके बहुत शीघ्र कहला भेजूँगा।"

"कहला भेजिएगा," कालेख़ाँ रुखाई के साथ बोला—"आपके या आपकी जागीर के साथ कोई ज़ुल्म नहीं किया जा रहा है। यदि ज़रा-सी बात के लिये आपने नवाब साहब का अपमान किया, तो नाहक़ आप सब लोग तकलीफ़ पावेंगे।" फिर जाते जाते उसने कहा—"यदि उस लड़की को आपने कहीं छिपा दिया या भाग

जाने दिया, तो अंत में जो कुछ होगा, उसका दोष मेरे मत्थे न दीजिएगा।"

कालेख़ाँ यह धमकी देकर चला गया। सबदलसिंह बहुत खिन्न-मन होकर एक कोने में बैठा-बैठा सोच विचार में डूबता-उतराता रहा। जब मन कुछ स्वस्थ हुआ, तब जो-जो बातें कालेख़ाँ के साथ हुई थीं, उनकी एक-एक करके, बार-बार कल्पना करके कुढ़ने लगा।

वह नम्र-प्रकृति का मनुष्य था, परंतु ऐसी प्रकृति के मनुष्यों की तरह जब उनकी नम्रता की अवहेलना होती है, या उनकी विनय को पद-दलित किया जाता है, वह संभव और असंभव प्रयत्नों को सोचने लगा।

उसने सबसे पहले अपने चुने हुए भाई-बंदों को इस पीड़ा-पूर्ण रहस्य के प्रकट करने और उनसे सलाह करके आगे का कार्य-क्रम निर्णय करने का निश्चय किया।

उसने उसी दिन उन लोगों के साथ बातचीत की। नरपतिसिंह बहुत उत्तेजित और भयभीत था। आशा, विश्वास और सौगंदें दिलाकर उसे कुछ शांत किया। परतु इन दाँगियों के निश्चय का कुछ समय तक किसी को पता न लगा। केवल यह देखा गया कि गढ़ी की मरम्मत शीघ्रता के साथ हो रही है, और तोपें मार्के के स्थानों पर लगाई जा रही हैं।

---

(६२)

"अभी दिल्ली दूर है।" एक पुरानी कहावत चली आती है। परंतु जनार्दन के प्रयत्न से हकीम आग़ाहैदर को दिल्ली की दूरी बहुत कम अखरी। वह ख़ुशी-ख़ुशी जल्दी लौट भी आया, और उसे अपनी आशातीत सफलता पर गर्व था। उसने जनार्दन को दिल्ली के प्रधान

मंत्री की चिट्ठी दी, जिसके तीन चौथाई से अधिक भाग में आदाबों और अलकाबों की धूम थी, और थोड़ी-सी जगह में लिखा था कि आप और कालपी का नवाब बादशाह दाम इक़बालहू की दो आँखें हैं, किसी को भी कष्ट होने से उन्हें दुःख होगा ; अलबत्ता इस समय नवाब अलीमर्दान की दिल्ली में बहुत ज़रूरत है, इसलिये वह फ़ौरन् दिल्ली बुलाए जानेवाले हैं।

जनार्दन ने बड़े हर्ष के साथ यह चिट्ठी राजा देवीसिंह को सुनवाई। उन्हें कोई हर्ष नहीं हुआ।

बोले– "यह सब अपार पाखंड मुझे धोके में नहीं डाल सकता। पहले मारे सो ठाकुर, पीछे मारे सो फिसड्डी, मैं तो यह जानता हूँ। बहुत होगा, तो दिल्लीवाले अपने नवाब की मदद कर देंगे, बस। परंतु मैं भी बुंदेलखंड में वह आग सुलगाऊँगा, जो चंपत महाराज ने भी न सुलगाई होगी, और फिर बहुत गिरती हालत में मराठों को तो बुलाया ही जा सकता है।"

"मैं नाहक युद्ध करने के पक्ष में नहीं हूँ।"

मुदित-हर्षित जनार्दन बोला– "मराठे सेत-मेंत सहायता किसी की नहीं करते। उन्हें बुलाइएगा, तो वे यहाँ से कुछ-न-कुछ लेकर ही जायँगे।"

"पंडितजी," देवीसिंह ने उत्तेजित होकर कहा– "मराठे अगर कुछ लेंगे, तो उन्हें मैं दे दूँगा, परंतु जीते-जी नवाबों और सूबेदारों को सिर नहीं झुकाऊँगा। क्या आप भूल गए कि अलीमर्दान बिराटा के मंदिर को नष्ट करनेवाला है?"

"नहीं महाराज, मैं नहीं भूला हूँ," जनार्दन बोला—"परंतु मेरा एक निवेदन है।"

"कहिए।" राजा ने कहा।

जनार्दन बोला "थोड़े दिन युद्ध स्थगित रखिए। यदि नवाब

दिल्ली चला गया, तो ठीक ही है, और यदि न गया, तो रण-भेरी बजवा दीजिए।"

राजा बोले—"मैं ठहरा हूँ, युद्ध न करूँगा, परंतु तैयारी में कोई कसर नहीं लगाऊँगा। मेरी इच्छा है कि वैरी के घर पर धावा करूँ। उसे यहाँ आने देना और पीछे सँभाल करना बुरी नीति होगी। मैं लोचनसिंह दाऊजू को सिंहगढ़ से बुलाकर ऐसे स्थान पर भेजना चाहता हूँ, जहाँ से वह वैरी के घर में घुसकर छापा डाल सकें।"

जनार्दन ने विरोध की इच्छा रखते हुए भी प्रतिवाद नहीं किया। केवल यह कहा—"सिंहगढ़ बहुत महत्त्व-पूर्ण स्थान है, वहाँ किसे भेजिएगा?"

"और सरदार हैं, जो अपने जौहर दिखलाने की आकांक्षा रखते हैं।" राजा बोला—"अब की बार आपकी भी रण-कुशलता की परीक्षा ली जायगी।"

जनार्दन ने सच्चे हर्ष के साथ कहा—"मैं दयावंत, लड़ना तो नहीं जानता, परंतु लड़ाई से भागना भी नहीं जानता।"

राजा बोला—"आप दलीपनगर को अपने किसी विश्वस्त सेवक या मित्र की निगरानी में छोड़ देना। अब की बार हम सब लोग अपने समग्र बल से इस धर्म-द्रोही को ठीक कर दें।"

कृतज्ञता-सूचक स्वर में जनार्दन बोला-"मेरा शरीर यदि अन्नदाता की सेवा में नष्ट हो जाय, तो इससे बढ़कर और किसी बात में मुझे सुख नहीं होगा।"

फिर राजा से पूछा—"यदि आज्ञा हो, तो मैं स्वयं बिराटा की ओर की वास्तविक स्थिति की खोज कर आऊँ? बहुत शीघ्र लौटकर आ जाऊँगा। जासूस लोग बात का बिलकुल ठीक-ठीक पता नहीं लगा पा रहे हैं।"

"आपको यदि किसी ने पहचानकर पकड़ लिया।" राजा ने उत्तर दिया—"तो मैं यह समझूँगा कि दलीपनगर की आधी से अधिक हार हो गई, और मेरा दायाँ हाथ टूट गया।"

"और अन्नदाता," जनार्दन बोला—"संसार में दलीपनगर के नरेश के लिये लोग यह भी कहेंगे कि न-मालूम उनके पास अभी कितने और ऐसे स्वामिधर्मी आदमी होंगे।" इस प्रच्छन्न आत्म-श्लाघा पर जनार्दन ज़रा लज्जित हुआ।

परंतु राजा ने उसे कुछ और बोलने देने के पूर्व ही कहा—"मैं तुम्हारी इच्छा का अवरोध न करूँगा।"

जनार्दन बोला—"महाराजा, यदि मैं अपने इस नए काम में सफल हुआ, तो भविष्य में मेरे जासूस बहुत अच्छा काम करेंगे।"

---

(६३)

जिस दिन से कालेख़ाँ बिराटा से गया, वहाँ के वातावरण में सन्नाटा-सा छा गया। एक भीति-सी फैली हुई थी, जिसके विषय में खुलकर चर्चा करने में भी लोगों का मन नहीं जमता था। आनेवाले संकट का साफ़ रूप बहुत कम लोगों की समझ में आ रहा था, परंतु यह स्पष्ट था कि बिराटा निरापद् स्थान नहीं है। ख़तरे के समय बिराटा-निवासियों का ग्राम त्यागकर उस पार जंगल और भरकों में महीनों छिपे रहना कोई असाधारण स्थिति न थी। परंतु इस समय तक विपद् के ठीक-ठीक रूप का कल्पना को आभास न मिला था, इसलिये घबराहट थी।

नरपतिसिंह को उसका यथासंभव यथावत् रूप बतलाया गया था। उसे देवी का भरोसा था, परंतु वह बाहर के भी किसी आश्रय के लिये उद्योग करने की जी में ठान चुका था।

कुमुद से उसने ध्वनि में और अस्पष्टताओं के आवरण में ढककर

बात कही। बोला—"दुर्गा ने ही पालर में रक्षा की थी। यहाँ पर भी वही रक्षा करेंगी। मैं एक दिन के लिये दलीपनगर जाऊँगा।" कुमुद से और कुछ न कहकर वह मूर्ति के सामने प्रार्थना करने लगा।

स्पष्ट तौर पर बतलाए विना भी कुमुद ने बात समझ ली।

गोमती ने मंदिर के अन्य आने-जानेवालों से, जो विराटा में रहते थे, पूछा। उन्हें ठीक-ठीक कुछ नहीं मालूम था।

एक बोला—"राजा देवीसिंह यहाँ आकर युद्ध करनेवाले हैं, उधर अलीमर्दान की तोपें हमारी गढ़ी पर गोले बरसाएँगी।"

सबदलसिंह ने अपने चुने हुए भाई-बंदों को छोड़कर ठीक बात किसी को नहीं बतलाई थी। इस कारण गोलमाल फैला हुआ था। इसी विषय को लेकर गोमती और कुमुद में बातचीत होने लगी। नरपतिसिंह ज़रा फ़ासले पर प्रार्थना कर रहा था।

कुमुद ने कहा—"विपद् में धीरज रखना चाहिए। दुर्गाजी का भरोसा सबसे बड़ा बल है। दूसरे आश्रय छूँछे हैं।"

गोमती ने पूछा—"अलीमर्दान यहीं से क्यों युद्ध करेगा?"

"उसकी मति फिर गई है, वह बावला है। वह मंदिर के ऊपर उत्पात किया चाहता है।"

"तभी दलीपनगर के महाराज यहीं आकर युद्ध करना चाहते हैं।"

"तुम्हें कैसे मालूम?"

"मैंने एक गाँववाले से सुना है।"

"यह ग़लत है।"

गोमती ने हाथ जोड़कर कहा—"मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए; ठीक बात क्या है, मैं जानना चाहती हूँ। जो कुछ मुझसे बनेगा, मैं भी करूँगी।"

कुमुद ने आकाश की ओर नेत्र करके उत्तर दिया—"एक बादल उठनेवाला है। मंदिर के ऊपर उपल-वर्षा होगी। परंतु उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा। देवी का सार्वभौम राज्य है।"

"यह तो निस्संदेह है।" गोमती बोली—"अलीमर्दान का आक्रमण कब तक होगा?"

"यह मैं क्या कह सकती हूँ?" कुमुद ने उत्तर दिया। फिर एक क्षण ठहरकर बोली—"वह शीघ्र ही अपने ऊपर दुर्गा के क्रोध को बुलावेगा।"

"और, महाराज यहाँ आकर युद्ध करेंगे? वह बड़े धर्म-परायण और दुर्गा के भक्त हैं।"

करें. परंतु मैं यह नहीं चाहती। इसमें अनर्थ होगा; अनिष्ट होगा।"

गोमती घबराकर बोली—"सो क्यों? धर्म की रक्षा करने में अनर्थ और अनिष्ट कैसा?"

कुमुद ने कहा—"मैं यहाँ ख़ून-ख़राबी नहीं देखना चाहती। बेतवा का यह शुद्ध सलिल देखो। वह देखो, कैसी शुभ्र धारा है। दोनो ओर कैसा हरा-भरा जंगल है। चारो ओर कैसा आनंदमय सुनसान है। कैसी एकांत शांति है। इस मनोहर एकांतता की गोद में मुस्किराते हुए शिशु-जैसा यह मंदिर है। उसके ऊपर रक्त-स्राव! कल्पना करने से कलेजा काँपता है।"

कष्ट की इस कल्पना से गोमती का एक रोयाँ भी न काँपा। अविचलित भाव से बोली—"दुर्गा अपने भक्तों के हृदय में बल और उल्लास भरें। इस मनोहर स्थान की अवश्य रक्षा होगी। यदि महाराज आ गए, तो रक्त-पात कम होगा; यदि न आए, तो न-जाने कितने लोग भेड़-बकरी की तरह यों ही काट डाले जायँगे।"

इतने में नरपतिसिंह प्रार्थना करके उन लड़कियों के पास आ

पहुँचा। बोला—"इस समय देवी के भक्तों में सबसे अधिक प्रबल राजा देवीसिंह जान पड़ते हैं। उन्हें दुर्गा का आदेश सुनाने के लिये जा रहा हूँ। अब की बार उन्हें अपने सर्वस्व का बलिदान करके दुष्टों का दमन करना होगा।"

"यह आपसे किसने कहा कि आप राजा देवीसिंह के पास इस याचना के लिये जायँ ?" कुमुद ने सिर ऊँचा करके प्रश्न किया।

नरपतिसिंह के उत्तर देने के पूर्व ही गोमती बोली—"न तो इसमें किसी के कहने-सुनने की कोई बात है, और न यह याचना है। यह दुर्गा की आज्ञा है।"

"नहीं है," कुमुद ने गंभीर होकर कहा—"देवी की यह आज्ञा नहीं है। देवीसिंह इसके अधिकारी नहीं हैं। वह यदि रक्षा करने आएगा, तो निश्चय जानों की हानि होगी, लाभ न होगा।"

नरपतिसिंह सकपकाया।

गोमती दृढ़ता के साथ बोली—"इसमें देवी का अनिष्ट नहीं हो सकता। राजा का अमंगल हो, तो हो। परंतु क्षत्रिय को अपने कर्तव्य-पालन में मंगल-अमंगल का विचार नहीं करना पड़ता। उसे तो प्रयत्न करने-भर से सरोकार है। आप काकाजू राजा के पास अवश्य जायँ; उन्हें लिवा लाएँ, और उनसे कहें कि—"

यहाँ गोमती अपने आवेश के द्रुतवेग के कारण स्वयं रुक गई।

कुमुद की क्षणिक उत्तेजना शांत हो गई थी। बहुत मीठे स्वर में बोली—"गोमती, तुम्हें व्यर्थ ही कष्ट झेलना पड़ रहा है। मैं नवाब की आँखों में मार डालने योग्य भले ही समझी जाऊँ, क्योंकि दुर्गा की पूजा करती हूँ, परंतु तुमने किसी का क्या बिगाड़ा है ? तुम क्यों यहाँ वन के क्लेशों को नाहक़ भुगत रही हो ? मेरी एक सम्मति है।"

"क्या आदेश है ?" गोमती ने भोलेपन के साथ, परंतु काँपते हुए स्वर में, पूछा।

"तुम दलीपनगर राजा के पास चली जाओ।" कुमुद ने कहा।

"क्यों ?" नरपति ने पूछा।

"क्यों ?" क्षीण स्वर में गोमती ने प्रश्न किया।

कुमुद ने उत्तर दिया "तुम रानी हो। वह राजा हैं। तुम्हारे हाथ में उस रात का कंकण अब भी बँधा हुआ है। भाँवर पड़ना-भर रह गई थी। वह दलीपनगर में हो जायगा। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आगामी युद्ध, जो राजा और नवाब के बीच में यहाँ होनेवाला है, कुशल-पूर्वक समाप्त न होगा। इसलिये मैं चाहती हूँ कि गोमती, तुम दलीपनगर चली जाओ। देवी सर्वव्यापिनी हैं। हम लोग किसी जंगल में भजन करेंगे।"

नरपति तुरंत बोला—"चाहे जो कुछ हो, अब की बार नवाब के साथ उनका रण मचेगा। राजा सबदलसिंह ने भी निश्चय कर लिया है। मैं रण-निमंत्रण देने राजा देवीसिंह के पास जा रहा हूँ। मुझे यह कार्य सौंपा गया है। वहाँ से लौटकर हम लोग भले ही जंगल में चले जायँगे, परंतु अभी हाल में उसके लिये कोई काफ़ी कारण नहीं समझ में आता। गोमती हमारे साथ चलना चाहे, तो हम बेखटके उसे महलों में पहुँचा देंगे। मैं अकेला नहीं जाऊँगा, और भी कई लोग जायँगे।"

तिरस्कार-पूर्ण स्वर में गोमती ने कहा—"मैं स्वयं वहाँ जाऊँगी। मेरी बोटी-बोटी चाहे कोई काट डाले, परंतु मैं ऐसे तो कदापि नहीं जाऊँगी। मैं भी इनके साथ जंगल में भजन करने को तैयार हूँ।"

कुमुद ने कहा—"तब आप यों ही बहुत-सी ख़ून-ख़राबी कराने के लिये क्यों दलीपनगर जाते हैं ? यदि नवाब इस बात को सुनेगा, और भी चिढ़ जायगा।"

"बात तो बिलकुल ठीक है," नरपति बोला—"परंतु राजा सबदलसिंह ने निश्चय कर लिया है, और मुझे अपने लोगों का अगुआ बनाया है। यदि मैं न जाऊँगा, तो और लोग अवश्य जायँगे। न जाने से मेरी बड़ी निंदा होगी। राजा देवीसिंह सबदलसिंह के अन्य भाई-बंदों द्वारा न्योता भी पाकर लड़ाई के लिये आवेंगे, परंतु मुझे इसलिये चुना गया है कि वह आने में किसी प्रकार का विलंब या संकोच न करेंगे।"

गोमती ने जोश के साथ कहा—"आपको अवश्य जाना चाहिए।"

ऊपर की ओर देखकर कुमुद बोली—"अच्छी बात है, जाइए। जो कुछ होना होगा, वह विना हुए नहीं रुकेगा।"

नरपति बोला—"मैं वहाँ गोमती की बात अवश्य कहूँगा।"

"आवश्यकता नहीं है।" गोमती बोली।

नरपति ने कहा—"केवल इतना कि तुम यहाँ कुशल-पूर्वक हो।"

(६५)

कुमुद की इच्छा न थी कि नरपति दलीपनगर के राजा को आमंत्रित करने जाय, परंतु वह उसे दृढ़ता और स्पष्टता के साथ न रोक सकी। शायद कुमुद को स्पष्टता या दृढ़ता उस समय कुछ भी पसंद नहीं आई। भीतरी इच्छा के इस तरह अवरुद्ध रह जाने के कारण उसका मन चंचल हो उठा। किसी से बातचीत करने की इच्छा न हुई। मन में आया कि इस स्थान को छोड़कर कहीं दूर चले जायँ। यह असंभव था। कुमुद उस स्थान को छोड़कर अपनी कोठरी में चली गई, और भीतर से उसने किवाड़ बंद कर लिए। गोमती ने समझ लिया कि उसके लिये भीतर जाने के विषय में निमंत्रण नहीं है।

गोमती अकेली मंदिर की ड्योढ़ी में बैठ गई। दलीपनगर और उसके राजा से घनिष्ठ संबंध रखनेवाली घटनाओं की कल्पनाएँ मन में उठने लगीं। उन सब कल्पनाओं के ऊपर रह-रहकर उठनेवाली अभिलाषा यह थी कि नरपति राजा से यह न कहें कि गोमती बिराटा के बीहड़ में अकेली पड़ी है, उसे लिवा लाओ। इसी समय रामदयाल मंदिर में आया।

उसे देखकर गोमती को हर्ष हुआ। मुस्किराती हुई उसके पास उठ आई। आतुरता और उत्सुकता के साथ उसने कुशल-मंगल का प्रश्न किया।

इस स्वागत से रामदयाल के मन में भीतर-ही-भीतर एक स्फूर्ति-सी, एक उमंग-सी उमड़ी।

उसने कहा—"मैं तो आपके दर्शन-मात्र से सुखी हो जाता हूँ। आज यहाँ कुछ सन्नाटा-सा जान पड़ता है।"

"नरपति काका महाराज के पास दलीपनगर अभी-अभी गए हैं।" गोमती बोली—"कालपी का नवाब इस नगर और मंदिर को विध्वंस करना चाहता है। उसके दमन के लिये रण-निमंत्रण देने के लिये वह गए हैं। तुम्हें महाराज कब से नहीं मिले?"

"मुझे तो हाल ही में दर्शन हुए थे।"

"कुछ कहते थे?"

"बहुत कुछ। यहाँ कोई पास में तो नहीं है?"

"नहीं है। बाहर चट्टान पर चलो। वहाँ बिलकुल एकांत है।"

दोनो मंदिर के बाहर एक चट्टान पर चले गए। बड़े-बड़े ढोंके एक दूसरे से भिड़े हुए धारा की ओर ढले चले गए थे। वहाँ जाकर वे एक विशाल चट्टान से अटककर खँग गए थे। एक बड़े ढोंके पर गोमती बैठ गई। पेड़ की छाया थी। वहाँ रामदयाल खड़े-खड़े

बातचीत करने लगा। बोला—"रण की बड़ी भयंकर तैयारी हो रही है। नवाब और उसके मित्रों से वह लोहा बजेगा, जैसा बहुत दिनों से न बजा होगा। बिराटा बहुत शीघ्र बड़ी प्रचंड आँधी में पड़नेवाला है, और कारण बड़ा साधारण-सा है।"

"साधारण-सा!" गोमती ने आश्चर्य प्रकट किया—"तुम्हारा क्या अभिप्राय है?"

रामदयाल आवाज़ को धीमा करके बोला—"अलीमर्दान मंदिर विध्वंस नहीं करना चाहता, कुंजरसिंह की सहायता करना चाहता है। और, महाराज यहीं आकर कुंजरसिंह को घर दबाना चाहते हैं।"

"कुंजरसिंह की सहयता! यदि ऐसा ही है, तो मंदिर को अपवित्र करने का संकल्प उसने क्यों किया है?"

"मैंने दलीपनगर में बड़े विश्वस्त सूत्र से सुना है कि वह कुमुद के विषय में कुछ विशेष दुष्प्रवृत्ति रखता है, और उसे कुछ प्रयोजन नहीं। यदि वह मंदिर-भंजक होता, तो पालर का मंदिर कदापि न छोड़ता।"

"यह क्या कम निंदनीय है? मैं तो कुमुद की रक्षा के लिये तलवार हाथ में लेकर अलीमर्दान से लड़ सकती हूँ। क्या महाराज इसे छोटा कारण समझते हैं? क्या वह नहीं जानते कि कुमुद लोक-पूज्य है, और देवी का अवतार है।"

रामदयाल ने अदम्य दृढ़ता के साथ कहा—"लोक-पूज्य तो वह जान पड़ती है। मैंने भी अपने स्वामी की हित-कामना से उस दिन श्रद्धांजलि चढ़ा दी थी। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि महाराज उसे देवी का अवतार नहीं मानते। वह तो उसकी रक्षा एक हिंदू-स्त्री के नाते करना चाहते हैं, और उनका अभिप्राय कुंजरसिंह को सदा के लिये ठीक कर देना है। वह यहाँ आया करते हैं, ठहरते हैं,

आश्रय पाते हैं, और न-जाने क्या क्या नहीं होता है। परंतु आपको सब हाल मालूम नहीं है।"

गोमती इधर-उधर देखकर बोली—"और क्या हाल है, रामदयाल ?"

उसने उत्तर दिया—"वैसे आप कभी मेरा विश्वास न करेंगी, कोई बात कहूँगा, तो आप रुष्ट हो जायँगी, कदाचित् मुझे दंड देने का निश्चय करें। दो-एक दिन में आप स्वयं देख लेना। क्या आपने कभी कुंजरसिंह को कुमुद के साथ अकेले में वार्तालाप करते देखा है ? मैं अधिक इस समय कुछ नहीं कहना चाहता।"

गोमती बेतवा की बहती हुई धार और उस पार के जंगल की नीलिमा की ओर देखने लगी। थोड़ी देर सोचने के बाद बोली—"मैंने बात करते तो देखा है, परंतु विशेष लक्ष्य नहीं किया है। मुझे लक्ष्य करके करना ही क्या। कोई अवसर कभी अपने आप सामने आ जायगा, तो देखूँगी।"

"आपने क्या इस बात को नहीं परखा ?"

रामदयाल ने प्रश्न किया—"कुमुद किसी-न-किसी रूप में हर समय कुंजरसिंह का पक्ष किया करती है। यह बात विना किसी कारण के है ?"

गोमती उत्तर न देते हुए बोली—"आज जब नरपति काकाजू ने महाराज को यहाँ बुला लाने की बात कही, तो उन्होंने विरोध किया। कम से-कम वह यह नहीं चाहती थी कि महाराज यहाँ आवें।"

"मेरी एक प्रार्थना है।" रामदयाल ने हाथ जोड़कर बहुत अनुभव के साथ कहा।

गोमती उस अनुभव के ढंग से तुरंत आकृष्ट होकर बोली—"क्या है रामदयाल ? तुम इतने विह्वल क्यों हो रहे हो ?"

रामदयाल ने काँपते हुए स्वर में उत्तर दिया—"सरकार अब यहाँ न रहें।"

"क्यों?" गोमती ने पूछा।

रामदयाल ने कहा—"कुंजरसिंह यहाँ आकर अड्डा बनावेंगे। वह नवाब को न्योता देकर आग बरसवावेंगे। महाराज का आना अवश्य होगा। कुंजरसिंह और नवाब से उनकी लड़ाई होगी। आपका यहाँ क्या होगा?"

"परंतु मैं दलीपनगर नहीं जा सकती।"

"मैं दलीपनगर जाने के लिये नहीं कहता, और भी तो बहुत से आश्रय-स्थान हैं।"

"कहाँ?"

"बहुत-से स्थान हैं। जब शांति स्थापित हो जाय, तब जहाँ इच्छा हो, वहाँ आपको पहुँचाया जा सकता है।"

"महाराज क्या कहेंगे?"

"कुछ नहीं। वह या तो स्वयं आएँगे, या अपने सेनापति अथवा मंत्री को सेवा में भेजेंगे। और, मैं भी तो उन्हीं का कृपा-पात्र हूँ।"

"कुमुद को छोड़कर चलना पड़ेगा?"

"आपको उनके विषय में अपना विचार शीघ्र बदलना पड़ेगा। मैं इस समय कुछ नहीं कहूँगा, आप ख़ुद देख लेना। केवल इतना बतलाए देता हूँ कि जहाँ कुंजरसिंह जायँगे, वहीं कुमुद जायँगी।"

गोमती ने त्योरी बदली। परंतु बोली कोमल कंठ से—"ऐसी अभद्र और अनहोनी बात मत कहो।"

रामदयाल ने बड़ी शिष्टता के साथ कहा—"नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं कहता। कुछ भी नहीं कहा। कुछ नहीं कहूँगा।"

गोमती मुस्किराकर बोली—"नहीं-नहीं, मैं यह नहीं चाहती कि तुम जिस बात को ठीक तरह से जानते होओ, और उसकी सत्यता में संदेह करने के लिये कोई जगह न हो, उसे भी छिपा डालो। परंतु तुम्हें यह अच्छी तरह जान रखना चाहिए कि किसके विषय में क्या कह रहे हो।"

रामदयाल ने आँखें नीची करके कहा—"मुझे किसी के विषय में कुछ कहा-सुनी नहीं करनी है। मेरे तन-मन के स्वामी उधर महाराज हैं, और इधर आप। मुझे और किसी से वास्ता ही क्या है। आप या महाराज इनसे तो मुझे वर्जित नहीं कर सकते, और न वंचित रख सकते हैं।"

जैसे कोई हवा में घूमते हुए बोले, उसी तरह गोमती ने कहा—"अभी तो यहाँ से कहीं दूसरे ठौर जाने की आवश्यकता नहीं मालूम होती रामदयाल, परंतु स्थान का प्रबंध अवश्य किए रहो। अवसर आने पर चलेंगे।"

---

(६५)

नरपतिसिंह यथासमय दलीपनगर पहुँच गया। बिराटा के राजा की चिट्ठी जनार्दन शर्मा के हाथ में रख दी गई। नवाब के पड़ोस में ही दलीपनगर के राजा की सहायता चाहनेवाले व्यक्ति के पत्र पर उसे उत्साह मिला। उसने सोचा—"यदि सबदलसिंह साधारण-सा ही सरदार है, तो भी अपना कुछ नहीं बिगड़ता, लाभ ही है।"

नरपतिसिंह से उसने पूछा—"आपकी बेटी आनंद-पूर्वक है?"

उत्तर मिला—"दुर्गा की दया से सब आनंद-ही-आनंद है। यह जो विघ्न का बादल उठ रहा है, इसे टालकर आप बिराटा को बिलकुल निरापद् कर दें।"

जनार्दन ने कहा—"सो तो होगा ही; परंतु मैं कहता हूँ कि

आप लोग पालर ही में क्यों नहीं आ जाते ? पालर ओरछा-राज्य में है, और हमारे बाहु के पास है।"

"यह समय बड़ा संकटमय है।" नरपति बोला—"केवल बीहड़ स्थान कुछ सुरक्षित समझा जा सकता है। जब युद्ध समाप्त हो जायगा, तब निस्संदेह हम लोग पालर लौटने के विषय में सोच सकते हैं।"

"परंतु बिराटा तो कदाचित् ख़ून-ख़राबी का केंद्र-स्थान हो जायगा। वह पालर से अधिक सुरक्षित तो नहीं है।"

"जो कुछ भी हो, हम लोग अभी उस स्थान को नहीं छोड़ना चाहते। वहाँ हमारे भाई-बंद काफ़ी संख्या में हैं। जब वहाँ निर्वाह न दिखलाई पड़ेगा, तब या तो जहाँ आप बतलाते हैं, वहीं चले जायँगे, या किसी और स्थान को ढूँढ़ लेंगे।"

जनार्दन ने पूछा—"कुंजरसिंह बिराटा कब से नहीं आए ?"

"कुंजरसिंह!" नरपति ने आश्चर्य प्रकट किया। "कुंजरसिंह वहाँ आकर क्या करेंगे ? अन्य लोग आए-गए हैं, कुंजरसिंह को मैंने वहाँ कभी नहीं देखा।"

"और कौन लोग आए-गए हैं ?" जनार्दन ने प्रश्न किया।

उसने उत्तर दिया—"बहुत लोग आए-गए हैं, किस-किसका नाम गिनाऊँ।"

जनार्दन ने कहा—"उदाहरण के लिये कुंजरसिंह का सेनापति तथा रामदयाल इत्यादि।"

नरपति चौंका, बोला—"आपको कैसे मालूम ?"

जनार्दन ने अभिमान के साथ कहा—"यह मत पूछो। महाराज देवीसिंह आँखें मूँदकर राज्य नहीं करते।"

"यह ठीक है," नरपति बोला—"परंतु देवी के मंदिर में किसी के आने की रोक-टोक नहीं है। यदि किसी ने आपको कुछ और बनाकर बतलाया है, तो वह झूठ है।"

जनार्दन ने कहा—"आपकी चिट्ठी महाराज की सेवा में थोड़ी देर में पेश कर दी जायगी। पालर की घटना के कारण ही हम लोग कालपी के नवाब के विरुद्ध हैं, और अब वह बिराटा के मंदिर को ध्वंस करने के लिये फिर कुछ प्रयत्न करनेवाला है; परंतु हमारे लक्ष्य कुंजरसिंह अधिक हैं, उन्हीं ने तमाम बखेड़ा खड़ा कर रक्खा है; रानियाँ भी तो उनका साथ देंगी? आजकल रामनगर में हैं न?"

नरपति को यह बात न मालूम थी। आश्चर्य के साथ बोला—"यह सब हम क्या जानें।"

जनार्दन ने एक क्षण विचार करके कहा—"हमारी सेना आप लोगों की सहायता के लिये आएगी, आप अपने राजा को आश्वासन दे दें। हम महाराज की मुहर-लगी चिट्ठी आपको देंगे। कब तक हमारी सेना आपके यहाँ पहुँचेगी, यह कुछ समय पश्चात् मालूम हो जायगा।"

नरपति ज़रा आतुरता के साथ बोला—"मैं महाराज से स्वयं मिलकर कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।"

"किसलिये?" जनार्दन ने आँखें गड़ाकर पूछा।

नरपति ने उत्तर दिया—"वह उनके निज के सुख से संबंध रखनेवाली बात है।"

---

(६६)

जनार्दन की इच्छा न थी कि नरपति उसे अपनी पूरी बात सुनाए बिना राजा से मिल ले। परंतु नरपति के हठ के सामने जनार्दन की आना-कानी न चली। राजा से उसका साक्षात्कार हुआ। राजा को आश्चर्य था कि मेरे निज के सुख से संबंध रखनेवाली ऐसी कौन-सी कथा कहेगा।

अकेले में बातचीत हुई।

नरपति ने कहा—"उस दिन पालर में प्रलय हो गया होता, यदि महाराज ने रक्षा न की होती।"

"किस दिन?" राजा ने विशेष रुचि प्रकट न करते हुए पूछा।

नरपति बोला—"उस दिन, जब पालर की लहरों पर देवी की मौज लहरा रही थी, और मुसलमान लोग उन लहरों को छेड़ना चाहते थे।"

राजा ज़रा मुस्किराकर बोले—"मैं पालर के निकट कई लड़ाइयाँ लड़ चुका हूँ, इसलिये स्मरण नहीं आता कि आप किस विशेष युद्ध की बात कहते हैं।"

नरपति ने कहा—"पालर में देवी ने अवतार लिया है।"

"यह मैंने सुना है।"

"वह मेरे ही घर में हुआ है।"

"पं० जनार्दन शर्मा ने बतलाया था। मैं पहले से भी जानता हूँ।"

"जय हो महाराज की! उसी की रक्षा में महाराज ने उस दिन अपना उत्सर्ग तक कर दिया था।"

राजा ने ज़रा अरुचि के साथ कहा—"आप जो बात कहना चाहते हो, स्पष्ट कहिए।"

नरपति ने हाथ बाँधकर कहा—"उस दिन, जिस दिन पालर में बरात आई थी; उस दिन, जिस दिन स्वर्गगामी महाराज को देवी की रक्षा के लिये अपनी रोग-शय्या छोड़नी पड़ी थी; उस दिन, जब बड़े गाँव से आकर श्रीमान् ने हम सब लोगों को सनाथ किया था।"

राजा मुस्किराए। बोले—"मुझे याद है वह दिन। मैं आपकी बस्ती में घायल होकर मार्ग में अचेत गिर पड़ा था। बहुत समय पश्चात् होश आया था।"

राजा यह कहकर नरपति के मन की बात जानने के लिये उसकी आँखों में अपनी दृष्टि गड़ाने लगे।

नरपति उत्साहित होकर बोला—"यदि महाराज उस दिन घायल न हुए होते, तो उसी दिन एक क्षत्रिय के द्वार के बंदनवारों पर केशर छिटक गई होती, और वह क्षत्रिय-कन्या आज दलीपनगर की महारानी हुई होती।"

राजा को याद आ गई। परंतु आश्चर्य प्रकट करके बोले—"वह तो एक ऐसी छोटी-सी घटना थी, कुछ ऐसी साधारण-सी बात रही होगी कि अच्छी तरह याद नहीं आती। बहुत दिन हो गए हैं। तुम्हारा प्रयोजन इन सब बातों के कहने का क्या है, वह स्पष्ट प्रकार से कह क्यों नहीं डालते?"

नरपति ने गोमती के पिता का नाम लेते हुए कहा—"उनके घर महाराज की बरात आई थी। उस कन्या के हाथ पीले होने में कोई विलंब नहीं दिखलाई पड़ता था। ठीक उस घर के सामने महाराज अचेत हो गए थे। हम लोग औषधोपचार की चिंता में थे, और चाहते थे कि स्वस्थ हो जाने पर पाणि-ग्रहण हो जाय। परंतु सवारी स्वर्गवासी महाराज के साथ दलीपनगर चली गई। उसके उपरांत घटनाओं के संयोग से फिर इस चर्चा का समय ही न आया। वह क्षत्रिय-कन्या इस समय विराटा में, दुर्गा के मंदिर में, हम लोगों के साथ है। महाराज शीघ्र चलकर उसे महलों में लिवा लाएँ, और विवाह की रीति पूरी कर लें।"

"आजकल" राजा ने ज़रा उत्तेजित होकर कहा—"मैं युद्धों और प्रजा की रक्षा के साधनों की चिंता में इतना अधिक उलझा रहता हूँ कि ऐसी मामूली बातों का स्मरण रखना या स्मरण करना बड़ा कठिन है।"

नरपति आग्रह-पूर्वक बोला—"मैं अन्नदाता को स्मरण कराने आया हूँ।"

राजा ने धीमे स्वर में, और ज़रा लज्जा के साथ, पूछा—"आपको किसने भेजा है ?"

"बिराटा के राजा ने।" नरपति ने नम्रता के भीतर छिपे हुए अभिमान के साथ कहा।

राजा ने पूछा—"यह बात जो तुम अभी-अभी कह रहे थे, क्या इसे भी बिराटा के राजा साहब ने कहलवाया है ?"

नरपति बोला—"नहीं। यह तो मैं स्वयं कह रहा हूँ महाराज, वाग्दत्ता क्षत्रिय-कन्या कितने दिनों इस तरह जंगलों-पहाड़ों में पड़ी रहेगी ?"

"वाग्दान किसने किया था ?" राजा ने पूछा।

नरपति विना संकोच के बोला—"यह तो महाराज जानें, परंतु इतना मैं जानता हूँ कि वह महाराज की रानी हैं। केवल भाँवर की कसर है। यदि उस दिन युद्ध न हुआ होता, तो विवाह को कोई रोक नहीं सकता था, और आज वह महलों में होतीं। क्या महाराज को कुछ भी स्मरण नहीं है ? शायद उस दिन के आघातों के कारण स्मृति-पटल से वह बात हट गई है।"

राजा हिल-सा उठा, जैसे किसी ने काँटा चुभा दिया हो। सोचने लगा, एक क्षण बाद बोला—"मुझे इन बातों के सोचने का अव-काश ही नहीं रहा है। सिपाही आदमी हूँ। सिवा रण और तल-वार के और किसी बात का बहुत दिनों कोई ध्यान नहीं रह सकता है। और, जिस संबंध के विषय में तुम कह रहे हो, वह राजाओं का राजाओं के साथ होता है। और लोगों में संबंध करने की भी मनाही नहीं। यदि कोई पवित्र-चरित्र कन्या—जो शुद्ध कुल में उत्पन्न हुई हो, चाहे माता-पिता दरिद्र ही क्यों न रहे हों—हमारे महलों में आना चाहे, तो रुकावट न डाली जायगी। परंतु इस बात का ख़याल रखना चाहिए कि ऐसी-वैसी औरतें हमारे यहाँ नहीं घुसने दी जातीं।"

नरपति कुछ कहना चाहता था, परंतु सन्न-सा रह गया, जैसे किसी ने गला पकड़ लिया हो।

राजा ने कहा—"मुझे याद पड़ता है कि एक ठाकुर उस नाम के पालर में रहते थे। उनकी कन्या का संबंध मेरे साथ स्थिर हुआ था, परंतु इसका क्या प्रमाण है कि यह वही कन्या है?"

नरपति के सिर से एक बोझ-सा हट गया। प्रमाण प्रस्तुत करने के उत्साह और आग्रह से बोला—"मैं सौगंद के साथ कह सकता हूँ, मेरे सामने वह उत्पन्न हुई थी। अठारह वर्ष से उसे खाते-खेलते देखा है। ऐसी रूपवती कन्या बहुत कम देखी-सुनी गई है। महाराज ने भी तो विवाह-संबंध कुछ देख-समझकर किया होगा।"

राजा मानो लाज में डूब गया। परंतु एक क्षण में सँभलकर दृढ़ता के साथ बोला—"मैं भोग-विलास के पक्ष में नहीं हूँ। यह समय दलीपनगर के लिये बड़ा कठिन जान पड़ता है। इस समय निरंतर युद्ध करने की ही इच्छा मन में है, उसी में हम सबका त्राण है। जब अवकाश का समय आवेगा, तब इन बातों की ओर ध्यान दूँगा।"

फिर बेफ़िक्री की सच्ची मुस्किराहट के साथ कहा—"अर्थात् यदि लड़ते-लड़ते उसके पहले ही किसी समय प्राण समाप्त न हो गया, तो।"

इस मुस्किराहट के भीतर किसी भयंकर दृढ़ता की झलक थी। नरपति उससे सहम गया।

धीरे से बोला—"मेरी यह प्रार्थना नहीं है कि महाराज इसी समय चलकर लिवा लावें। मेरी बिनती केवल यह है कि ज्यों ही अवकाश मिले, महलों की शोभा बढ़ाई जाय।"

फिर किसी भाव से प्रेरित होकर कहने लगा—"इस समय बिराटा पर संकट है। न-मालूम कौन कहाँ भटकता फिरे, इसलिये अन्नदाता, मेरे इस कहने की ढिठाई को क्षमा करें कि स्वयं न जा

सकें, तो अपने किसी प्रधान कर्मचारी को कुछ सेना के साथ भेज दें। डोले का प्रबंध बिराटा में कर दिया जायगा। यहाँ शीघ्र बुलवा लिया जाय।"

"क्या उस लड़की ने बहुत आग्रह के साथ यह बात कहलवाई है?" राजा ने कुतर्क के स्वर में पूछा।

नरपति का सारा शरीर उत्तेजित हो गया। रुँधे हुए गले से बोला—"न महाराज! उसने तो निषेध किया था। मैंने ही अपनी ओर से प्रार्थना की है। वह बड़ी अभिमानिनी क्षत्रिय-बालिका है।"

राजा ने सांत्वना-सी देते हुए कहा—"नहीं-नहीं। मैं कोई रोक-टोक नहीं करता हूँ। यदि उसकी इच्छा हो, तो वह चली आवे, तुम भेज दो। परंतु यह समय भाँवर के लिये उपयुक्त नहीं है।"

नरपति ने सिर नीचा कर लिया।

राजा ने कहा—"अथवा अवकाश मिलने पर, अर्थात् जब युद्धों से निबट जाऊँगा, और कहीं कोई विघ्न-बाधा न रहेगी, तब मैं ही आकर देख लूँगा, और जो कुछ उचित होगा अवश्य करूँगा।"

इसके बाद बिराटा से संबंध रखनेवाली राजनीतिक चर्चा पर बातचीत होने लगी। राजा ने अंत में नवाब के ख़िलाफ़ बिराटा को सहायता देने और सेना लेकर आने का वचन देकर नरपति को बिदा किया।

(६७)

नरपति दलीपनगर से लौट आया। बिराटा के राजा को उसने यह संतोष-जनक समाचार सुनाया कि बहुत शीघ्र राजा देवीसिंह की सेना सहायता के लिये आवेगी—अर्थात् आवश्यकता पड़ते ही।

परंतु जिस समय नरपति अपने घर—बिराटा के द्वीपवाले मंदिर में—आया, चेहरे पर उदासी थी।

रामदयाल उस समय वहाँ न था। कुमुद और गोमती थीं।

मंदिर की दालान में बैठकर नरपति ने कुमुद से कहा—"मंदिर की रक्षा तो हो जायगी।"

कुमुद ने लापरवाही के साथ कहा—"इसमें मुझे कभी संदेह नहीं रहा है। दुर्गा रक्षा करेगी।"

"राजा देवीसिंह ने भी वचन दिया है।" प्रतिवाद न करते हुए नरपति बोला।

गोमती का मुख खिल उठा। गौरव के प्रकाश से आँखें चंचल हो उठीं।

गोमती ने कुमुद से धीरे से कहा—"तब यहाँ से कहीं और जाने की अटक न पड़ेगी।"

कुमुद निश्चिंत भाव से बोली—"अटक क्यों पड़ने लगी? और यदि पड़ी भी, तो यह नदी और अग्रवर्ती वन सब दुर्गा के हैं।"

गोमती को बुरा लगा। नरपति से सरलता के साथ पूछा—"दलीपनगर में तो बड़ी भारी सेना होगी काकाजू?"

"हाँ, है।" नरपति ने उत्तर दिया "बड़ा नगर, बड़े लोग और बड़ी-बड़ी बातें।"

गोमती आँख के एक कोने से देखने लगी। कुमुद ने कहा—"राजा ने गोमती के विषय में पूछा था?"

गोमती सिकुड़कर कुमुद के पीछे बैठ गई। नरपति ने उत्तर दिया—"राजा ने नहीं पूछा था। मैंने स्वयं चर्चा उठाई थी।"

कुमुद ने कहा—"आपको ज़्यादा कहना पड़ा था या उन्हें सब बातों का तुरंत स्मरण हो आया था?"

नरपति ने कुछ उत्तर नहीं दिया। कुछ सोचने लगा। गोमती

का हृदय धड़कने लगा। कुमुद बोली—"राज्य के कार्यों में उलझे रहने के कारण कदाचित् कुछ देर में स्मरण हुआ होगा। राजा ने क्या कहलवा भेजा है ?"

नरपति राजदूत के कर्तव्यों और कैंड़ों से अपरिचित था। उत्तर दिया—"मुझे तो क्रोध आ गया था। पराई जगह होने के कारण संकोच-वश कुछ नहीं कह सका, परंतु कलेजा राजा की बातों से धधकने लगा था। वह सब जाने दो। इस समय तो हम लोगों को इतने पर ही संतोष कर लेना चाहिए कि राजा इस स्थान की रक्षा करने के लिये एक-न-एक दिन—और शीघ्र ही—अवश्य आवेंगे।"

परंतु कुमुद ने पूरी बात को उखाड़ने का निश्चय कर लिया था, इसलिये बोली—"क्या राजा होते ही वह यह भी भूल गए कि उस दिन पालर में उनकी बरात गई थी, बंदनवार सजाए गए थे, स्त्रियों ने कलश रक्खे थे, मंडप बनाया गया था, और गोमती के शरीर पर तेल चढ़ाया गया था ? आपने क्या उन्हें स्मरण नहीं दिलाया ?"

"मैंने इन सब बातों की याद दिलाई थी," नरपति ने जवाब दिया—"परंतु उन्होंने कोई ऐसी बात नहीं की, जिससे मन में उमंग उत्पन्न होती। वह तो सब कुछ भूल-से गए हैं।"

गोमती पसीने में तर हो गई। सिर में चक्कर सा आने लगा।

"उन्होंने क्या कहा था ?" कुमुद ने पूछा।

"बोले," नरपति ने उत्तर दिया—"राज-काज की उलझनों में स्मरण नहीं रह सकता। यदि वह आना चाहे, औरत्र ही हो, जिसके साथ पालर में संबंध होनेवाला था, तो कोई रोक टोक न की जायगी। मैं स्वयं न आ सकूँगा। सेना लेकर जब बिराटा की रक्षा के लिये आऊँगा, तब जैसा कुछ उचित समझा जायगा, करूँगा।"

नरपति के मन पर राजा की तत्संबंधी वार्ता सुनकर जो भाव अंकित हुआ, उसे उसने अपने शब्दों में राजा की भाषा का रूप देकर प्रकट किया।

कुमुद बोली—"वह इतनी जल्दी भूल गए! राजपद और राज-मद क्या मनुष्य को सब कुछ भूल जाने के लिये विवश कर देते हैं! जैसे क्षत्रिय वह हैं, उनसे कम कुलीन क्या यह दीन क्षत्रिय-बालिका है?"

"वह तो कहते थे" नरपति ने तुरंत उत्तर दिया "कि राजाओं का संबंध राजाओं में होता है।"

गोमती चीख़ उठी। चीख़ मारकर कुमुद से लिपट गई। नरपति ने देखा, पसीने में डूब-सी गई है, और शायद अचेत हो गई है। पंखा ढूँढ़ने के लिये अपनी कोठरी में चला गया।

कुमुद ने गोमती को धीरे से अपनी गोद की ओर खींचा। वह अचेत न थी, परंतु उसके मन और शरीर को भारी कष्ट हो रहा था।

कुमुद का जी पिघल उठा। बोली—"गोमती, इतनी-सी बात से ऐसी घबरा गईं! इतनी अधीर मत होओ। न-मालूम महाराज ने क्या कहा है, और काकाजू ने क्या समझा है। वह सेना लेकर थोड़े दिनों में यहाँ आ ही रहे हैं। यहाँ सब बात यथावत् प्रकट हो जायगी। मुझे आशा है, राजा तुम्हें अपनाएँगे।"

गोमती कुछ कहना चाहती थी, परंतु उसका गला बिलकुल सूख गया था, इसलिये एक शब्द भी मुँह से न निकला।

इतने में नरपति पंखा लेकर आ गया। कुमुद ने कहा—"आप भोजन करें, मैं तब तक हवा करूँगी।"

"न, यह न होगा।" नरपति बोला—"देवी इस लड़की को पंखा झलेंगी! मैं झले देता हूँ।"

कुमुद ने कहा—"अकेले में उससे कुछ कहना भी है।"

पंखा वहीं रखकर नरपति कोठरी में चला गया।

पंखा झलते हुए कुमुद बोली—"शांति और धैर्य के साथ उनके ससैन्य आने की बाट जोहनी ही पड़ेगी। वह मंदिर में अवश्य आवेंगे। मैं यहाँ पर रहूँ या कहीं चली जाऊँ, तुम बनी रहना। वह तुम्हें यहाँ अवश्य मिलेंगे। निराश मत होओ।"

पंखे की हवा से शरीर की भड़क शांत हुई। कुमुद को पंखा झलते देखकर गोमती को बोलने का विशेष प्रयत्न करना पड़ा।

सिसकते हुए धीरे से बोली—"मुझे यहाँ छोड़कर कहीं न जा सकोगी। मेरे मन में अब और कोई विशेष इच्छा नहीं है। जब तक प्राण न जायँ, तब तक चरणों में ही रखना।"

कुमुद की पूर्व रुखाई तो पहले ही चली गई थी, अब उसके मन में दया उमड़ आई। कहा—"जब तक राजा तुम्हें स्वयं लेने नहीं आते, तब तक तुम्हें वहाँ अपने आप जाने के लिये कोई न कहेगा। परंतु तुम्हें यह न सोचना चाहिए कि उन्होंने किसी विशेष निठुराई के वश होकर इस तरह की बातें कही हैं।"

गोमती चुप रही।

कुमुद एक क्षण सोचकर बोली—"यदि हम लोगों को यहाँ से किसी दूसरे स्थान पर जाना पड़ा, तो अवश्य हमारे साथ रहना। हमें आशा है, राजा ससैन्य आएँगे, परंतु यह आशा बिलकुल नहीं है कि उनके आने तक हम लोग यहाँ ठहरे रहेंगे। उनके आने की ख़बर मिलने के पहले नवाब अपनी सेना इस स्थान पर भेजने की चेष्टा करेगा। हम लोगों को शायद बहुत शीघ्र यह स्थान छोड़ना पड़ेगा।"

गोमती ने साथ ही रहने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया।

---

(६८)

दलीपनगर का राज्य उन दिनों भँवर में फँसा हुआ-सा जान पड़ता था। राजा देवीसिंह का अधिकार अवश्य हो गया था, परंतु उसकी सत्ता सबों ने नहीं मानी थी। कोई-कोई खुल्लमखुल्ला विरोध कर देते थे, और बहुतों के भीतर-भीतर प्रतिकूलता की लहरें उठ रही थीं। जनार्दन शर्मा, हकीमजी और लोचनसिंह-सदृश लोग नए राजा के दृढ़ पक्षपाती थे, परंतु अनेक प्रमुख लोग विपरीत भाव का प्रदर्शन न करते हुए भी कोई ऐसा काम न कर रहे थे, जिससे स्पष्ट तौर पर यह विश्वास होता कि वे देवीसिंह के सहायक हैं। माल-विभाग और सेना को देवीसिंह बहुत ध्यान के साथ सुधार रहा था, परंतु बरसों की बिगड़ी हुई संस्थाओं का ठिकाने लगाना कुछ विलंब का काम होता है।

उधर कुंजरसिंह बिगड़े-दिल सरदारों को अपनी ओर जुटाने में दत्तचित्त था। रानियों की ओर से भी परिश्रम जारी था। जो लोग देवीसिंह के विरुद्ध थे, वे यह जानते थे कि रानियों को कालपी के फ़ौजदार की सहायता मिल रही है। उन्हें यह भी मालूम था कि यह सहायता कुंजरसिंह के लिये अप्राप्य है, परंतु वे लोग यह विश्वास करते थे कि नवाब कुंजरसिंह के साथ पुरुष होने के कारण मैत्री की संधि ज़्यादा जल्दी करेगा। इसलिये उन्होंने सहायता का वचन तो रानियों को दिया, परंतु मन के भीतर कुंजरसिंह के लिये फाटक बिलकुल बंद नहीं किए। यह कहा कि नवाब को आपके साथ होते देखकर हम लोग आपके साथ हो जायँगे। नाहीं नहीं की। वचन भी नहीं दिया।

कुंजरसिंह पर इसका बहुत कष्ट-दायक प्रभाव पड़ा। वह कुछ दिनों आशा और निराशा के बीच में भटकता हुआ अंत में बहुत थोड़ी-सी आशा मन में लिए हुए बिराटा लौट आया।

उस समय नरपति को दलीपनगर से लौटे हुए दो-एक दिन हो चुके थे।

संध्या के पूर्व ही कुंजरसिंह मंदिर में आ गया। उसे देखते ही गोमती अपनी कोठरी में चली गई। कुमुद ने देखा, कुंजर का चेहरा बहुत उतरा हुआ है।

धीरे-धीरे पास जाकर, ज़रा गंभीर भाव से, कुमुद ने कहा—"आप थके-माँदे मालूम होते हैं। क्या दूर से, आ रहे हैं?"

"हाँ, दूर से आ रहा हूँ।" कुंजरसिंह ने थके हुए स्वर में जवाब दिया—"आशा नहीं कि अब की बार बिराटा छोड़ने पर फिर कभी लौटकर आऊँगा।"

दुःख का कोई प्रदर्शन न करके कुमुद ने सहज कोमल स्वर में कहा—"जब तक आप यहाँ हैं, इस दालान में डेरा डालें।"

दालान में अपना सामान रखकर कुंजरसिंह बोला—"सुनता हूँ, कुछ दिनों में बिराटा का यह गढ़ और मंदिर दलीपनगर के राजा देवीसिंह के शिविर बन जायँगे।"

"उस दिन के लिये हम लोग कदाचित् यहाँ नहीं बने रहेंगे।" कुमुद ने धीरे से कहा।

कुंजर को नरपतिसिंह का ख़याल आया। पूछा—"काकाजू कहाँ हैं?"

"किसी काम से उस पार गाँव गए हैं। आते ही होंगे। आपको नहीं मिले? आप तो गाँव में ही होकर आए हैं?" कुमुद ने उत्तर दिया।

कुंजरसिंह ने ज़रा उत्तेजित स्वर में कहा—"अब यह गाँव देवीसिंह को अपने यहाँ बुला रहा है। मैं और देवीसिंह एक स्थान पर नहीं रह सकते। इसलिये अलग होकर आया हूँ। यदि गाँव

में ही किसी से बतबढ़ाव हो पड़ता, तो यहाँ तक दर्शनों के निमित्त न आ पाता।"

कुमुद ने पूछा—"राजा देवीसिंह कालपी के नवाब का दमन करने के लिये इस ओर आवेंगे, इसमें आपको क्या आक्षेप है?"

कुंजरसिंह ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—"यह मेरे बड़े सौभाग्य की बात है कि कम-से-कम आपके हृदय में तो मेरे लिये थोड़ी-सी सहानुभूति है। वैसे इस अपार संसार में मेरे कितने हितू हैं?"

कुमुद ने द्वार की ओर देखकर कहा—"अब तक काकाजू नहीं आए। न-जाने कहाँ देर लगा दी है।"

कुंजर ने, इस मंतव्य के विषय में कुछ न कहकर, अपनी ही चर्चा जारी रक्खी—"कालपी का नवाब मेरा शत्रु है, मैं उसके विरुद्ध सदा खड्ग उठाए रहने को तैयार हूँ। परंतु मैं यह कैसे भूल सकता हूँ कि देवीसिंह अनधिकार चेष्टा से, अन्याय से, छल-कपट से मेरी गद्दी पर जा बैठा है? देवीसिंह का प्रतीकार मेरे लिये उतना ही आवश्यक है, जितना कालपी के नवाब का—"

बात काटकर कुमुद बोली—"मैं ज़रा बाहर से देखती हूँ कि पिताजी आ रहे हैं या नहीं, और उन्हें कितनी देर है। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ है। दूर तक का आदमी दिखलाई पड़ सकता है।"

कुमुद बारीकी से गोमती की कोठरी की ओर निगाह दौड़ाती हुई दरवाज़े के बाहर हो गई।

कुंजरसिंह भी पीछे-पीछे गया; परंतु उसने यह न देख पाया कि गोमती भी अपनी कोठरी छोड़कर चुपचाप पीछे-पीछे हो ली है।

बाहर जाकर कुमुद ने देखा कि नरपति के लौट आने का कोई लक्षण नहीं। बाहर ही ठिठक गई। पूर्व की ओर के वन की रेखा को परखने लगी। इतने में कुंजरसिंह वहाँ आ गया।

हाथ जोड़कर बोला—"मैं देवीसिंह का विरोधी हूँ, इसमें यदि आपको कोई बात खटकती हो, तो आज से संपूर्ण विरुद्ध भाव को हृदय के भीतर से धोकर बहा सकता हूँ। परंतु यदि मैं आपको विश्वास करा दूँ कि कपट और अन्याय से देवीसिंह मेरे राज्य का अधिकारी हुआ है, तब भी आप क्या उसका साथ देने की आज्ञा देंगी ? यदि ऐसी अवस्था में भी अपना हक छोड़ देने का आदेश होगा, तो वह आज्ञा भी शिरोधार्य होगी।"

कुमुद ने आग्रह के साथ कहा—"हाथ मत जोड़िए। यह अच्छा नहीं मालूम होता। आप राजकुमार हैं।"

कुंजर अधिकतर आग्रह के साथ बोला—"राजकुमार नहीं हूँ—कम-से-कम आपके समक्ष मैं कुछ भी नहीं हूँ ; केवल सेवक हूँ, भक्त हूँ।"

कुमुद ने कहा—"जब तक काकाजू नहीं आते, चलिए, उस चट्टान पर बैठकर आपसे लड़ाइयों की कुछ चर्चा सुनूँ। हम लोगों को यहाँ संसार का और कोई वृत्तांत सुनने को नहीं मिलता। काकाजू हाल में दलीपनगर गए थे।"

परंतु अंतिम बात के मुँह से निकलते ही कुमुद ने अपना होठ काट लिया, वह इस बात को कहना नहीं चाहती थी। न-मालूम कैसे निकल पड़ी ?

जिस चट्टान पर बैठने की कुमुद ने इच्छा प्रकट की थी, वह पास ही थी। कुंजर उसके नीचे की ओरवाली ढाल पर जा बैठा, और कुमुद उसकी टेक पर। दोनो की पीठ मंदिर के द्वार की ओर थी।

कुंजर ने पूछा—"काकाजू दलीपनगर किसलिये गए थे ?"

"आपको तो मालूम ही होगा।" कुमुद ने उत्तर दिया—"मेरी इच्छा न थी कि वह जाते, परंतु यहाँ के राजा ने उन्हें हठ करके भेजा। इस समय बिराटा को सहायता की बड़ी आवश्यकता है।"

"इसमें हर्ज ही क्या हुआ?" कुंजर ने कहा—"बिराटा इस समय संकट में है। मुझ-सरीखे लोग यदि उसकी सहायता नहीं कर सकते, तो जो उसकी सहायता कर सकते हैं, उनके पास तो निमंत्रण जायगा ही; परंतु यदि आपकी कृपा हुई, तो देवीसिंह के बिना मैं अकेला ही बहुत कुछ करके दिखलाऊँगा।"

कुमुद ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कुंजर बोला—"आगामी युद्ध में, ऐसा जान पड़ता है, बिराटा का राजा देवीसिंह का साथ देगा। ऐसी अवस्था में मेरा यहाँ आना अब असंभव होगा। क्या बिराटा का राजा किसी प्रकार मेरी ओर हो सकता है?"

कुमुद के उत्तर देने के पहले तुरंत कुंजर ने कहा—"यह असंभव है। सबदलसिंह जानते हैं कि मैं कालपी की सेना का मुक़ाबला करने में उनकी अच्छी सहायता नहीं कर सकता हूँ। वह क्यों मेरा साथ देने लगे? और फिर उन्होंने स्वयं देवीसिंह को बुलाया है।"

निःश्वास परित्याग कर कुंजरसिंह बोला—"अब देवीसिंह के राज्य की अखंडता में कोई संदेह नहीं, अर्थात् यदि वह कालपी के नवाब को पराजित कर सका।"

फिर तुरंत आतुरता के साथ उसने कुमुद के पैरों की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा—"यदि मैं इन चरणों की रक्षा में अपना सब कुछ विसर्जन कर सकूँ, इसी सामनेवाली धार में, इस भयंकर दह में यदि किसी दिन मुझे वह प्रयत्न करते हुए विलीन हो जाना पड़े, तो यही समझूँगा कि दलीपनगर का क्या, सारे संसार का राज्य मिल गया। क्या मुझे इतने की—केवल इतने-भर की—आज्ञा मिल जायगी? दलीपनगर का कोई भी राज्य करे, संसार किसी के भी अधिकार में चला जाय, परंतु यदि मुझे इन चरणों में रहने दिया जाय, तो मुझे सब कुछ मिल गया।"

कुमुद चुप थी। बेतवा के पूर्वीय किनारे को जल-राशि छूती हुई चली जा रही थी। अस्ताचलगामी सूर्य की कोमल सुवर्ण रश्मियाँ बेतवा की धार पर उछल-उछलकर हँस-सी रही थीं। उस पार के वन-वृक्षों की चोटियों के सिरों ने दूरवर्ती पर्वत की उपत्यका तक श्यामलता की एक समरस्थली-सी बना दी थी। उस सुंदर सुनसान में कुंजरसिंह के शब्द बज-से गए।

कुमुद ने कहा—"हम लोगों का कुछ ठीक नहीं, कब तक यहाँ रहें, कब यहाँ से चले जायँ, और कहाँ जाकर रुकें।"

"इसमें मेरे लिये कोई बाधा नहीं।" कुंजरसिंह उमंग के साथ बोला—"आप यहाँ न रहें, यह मेरी पहली प्रार्थना है। दूसरी प्रार्थना यह है कि आप जहाँ भी जायँ मुझे साथ रहने की अनुमति दें। बुरा समय आ रहा है। यदि साथ में एक सैनिक रहेगा, तो हानि न होगी।"

कुमुद ने बहती हुई धार की ओर देखते हुए कहा—"दुर्गा के सेवकों को कभी कष्ट नहीं हो सकता। जब कभी मनुष्य को दुःख होता है, अपने ही भ्रम के कारण होता है। यदि मन में भ्रम न रहे, तो उसे किसी का भी भय न रहे।"

"धर्म का यह ऊँचा तत्त्व किसे मान्य न होगा?" कुंजरसिंह ने कहा—"फिर भी एक दिन, परंतु दृढ़, अत्यंत दृढ़ भक्त की यह बिनती तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी।"

कुमुद चुप रही।

कुंजरसिंह किसी भाव के प्रवाह में बहता हुआ-सा बोला—"यदि आपने निषेध किया, तो मैं आज्ञा का उल्लंघन करूँगा; यदि आपने अनुमति न दी, तो भी मैं अपने हठ पर अटल रहूँगा—मैं छाया की तरह फिरूँगा। पक्षियों की तरह मड़राऊँगा। चट्टानों की तली में, पेड़ों के नीचे, खोहों में, पानी पर, किसी-न-किसी प्रकार

बना रहूँगा। आपको भ्रुकुटि-भंग का अवसर न दूँगा, परंतु निकट बना रहूँगा। साथ रक्खूँगा केवल अपना खड्ग। समय आने पर दुर्गा के चरणों में अपना मस्तक अर्पण कर दूँगा।"

"राजकुमार!" काँपते हुए गले से कुमुद ने कहा।

"आज्ञा?" पुलकित होकर कुंजर बोला।

कुमुद ने उसी स्वर में कहा—"आपको इतना बड़ा त्याग नहीं करना चाहिए।"

"कितना बड़ा? कौन-सा?" कुंजर धारा-प्रवाह के साथ कहता चला गया—"नवाब से लड़ना धर्म है। धर्म की रक्षा करना कर्तव्य है। कर्तव्य पालन करना धर्म है। आपकी आज्ञा का पालन करना ही धर्म, कर्तव्य और सर्वस्व है। यदि इन चरणों की कृपा बनी रहे, तो मैं संसार-भर की एकत्र सामर्थ्य को तुच्छ तृण के समान समझूँ, मुझे कुछ न मिले; संसार-भर मुझे तिरस्कृत, बहिष्कृत कर दे, परंतु यदि चरणों की कृपा बनी रहे, तो मैं समझूँ कि देवीसिंह मेरा चाकर है, नवाब मेरा ग़ुलाम है, और संसार-भर मेरी प्रजा है।"

कुमुद ने मुस्किराकर, परंतु दृढ़ता के साथ, इस प्रवाह का निवारण करते हुए कहा—"धीरे से, धीरे से। इतने जोश की बात कहने की आवश्यकता नहीं।"

कुंजर धीरे से, परंतु उसी जोश के साथ बोला—"तब अनुमति दीजिए, आज वरदान देना होगा।"

कुमुद ने लंबी साँस ली।

कुंजर ने कहा—"आपका शायद यह विचार है कि मैं नीच हूँ, और नीच को वरदान नहीं दिया जा सकता। परंतु मैं कहता हूँ कि वसंत छोटे और बड़े सब प्रकार के वृक्षों को हरियाली देता है, धराशायी घास के तिनकों में भी नन्हें-नन्हें सुंदर फूल लगा

देता है, और पवन किसी स्थान को भी अपनी कृपा से वंचित नहीं रखता।"

कुमुद बोली—"आप यदि देवीसिंह से लड़ेंगे, तो कालपी के नवाब का पक्ष सबल हो जायगा।"

"मैं देवीसिंह से न लड़ूँगा।"

"क्यों ?"

"आपकी इच्छा नहीं जान पड़ती। मैं देवीसिंह से संधि कर लूँगा। अपना सारा हक़ त्याग दूँगा।"

"मैं यह नहीं चाहती, और न यह कहती ही हूँ।"

इसके बाद कुछ पल तक सन्नाटा रहा। कुंजर ने कहा—"वास्तव में अब मेरे जी में कोई बड़ी महत्त्वाकांक्षा शेष नहीं है। यदि कोई परम अभिलाषा है, तो चरणों की सेवा की है।"

यह कहकर कुंजरसिंह ने कुमुद के पैरों को छू लिया। कुमुद ने पीछे पैर हटाने चाहे, परंतु न हटा सकी। बोली—"आपने क्या किया ?"

उसने कहा—"आप मेरी पूज्य हैं। मेरी संपूर्ण श्रद्धा की केंद्र हैं। मैंने कोई अनोखा कार्य नहीं किया।"

कुमुद काँपती हुई आवाज़ में बोली—"आप ऐसा फिर कभी न करना। मैं कोई अवतार नहीं हूँ। साधारण स्त्री हूँ। हाँ, दुर्गा माता की सच्चे जी से पजा किया करती हूँ। आप मुझे अवतार न समझें।"

"और आप मुझे" कुंजर ने कहा—"नीच व्यक्ति न समझें।"

तुरंत कुमुद बोली—"आप क्यों यह बार-बार कहते हैं ? मैं सब बातें सुन-समझकर ही आपको राजकुमार कहकर संबोधित करती हूँ, और करती रहूँगी। अर्थात् जब कभी आप हम लोगों को मिल जाया करेंगे।"

बड़ी दृढ़ता के साथ कुंजर ने कहा—"मैंने आज से देवीसिंह का विरोध छोड़ा। चरणों में ही सदा रहने का निश्चय किया—"

"न-न," कुमुद जल्दी से बोली "इस तरह का प्रण मत करिए। आप देवीसिंह का सामना अवश्य करें। अपने हक़ के लिये लड़ें, परंतु कालपी के नवाब से जब वह निबट लें।"

कुंजर ने कहा—"इसके सोचने के लिये अभी बहुत समय है, परंतु यह बात तय है कि चरणों में से हटाया नहीं जाऊँगा।"

कुमुद बोली—"यह स्थान कैसा सुंदर है। टापू के दोनो ओर से बेतवा की धार चली जा रही है। लंबी, चौड़ी, ढालू और सम-स्थल चट्टानों और पठारियों से जब पानी टकराता है, तब किसी बाजे के बजने-सा कोलाहल होता है। चतुर्दिक् वन-बीहड़ में ऐसी निष्पंदता छाई हुई है कि विश्वास होता है कि पर्वत, वन और नदी-वेष्टित इस टापू को दुर्गा ने विशेष रूप से चाहा है। मेरी इच्छा नहीं है कि यह स्थान छोड़ूँ—परंतु कदाचित् विवश होकर छोड़ना पड़े।"

"यहाँ बने रहने में कोई हानि नहीं।" कुंजर ने कहा—"देवी-सिंह इस टापू में अपनी छावनी डालकर अपने को क़ैद नहीं करावेगा। उसकी छावनी मुसावली की तरफ़ कहीं पड़ेगी। यदि वह आसानी से यहाँ तक आ पाया, तो मैं यहाँ किसी चट्टान की छाया में खड्ग सँभाले हुए पड़ा रहूँगा।"

कुमुद बोली—"अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। कदाचित् अटक पड़ी, तो सामनेवाले वन में चली जाऊँगी।"

कुंजरसिंह हाथ जोड़कर कुछ कहना चाहता था कि कुमुद ने निवारण करके कहा—"फिर वही अत्याचार! आप यदि हम लोगों के निकट रहना चाहें, तो यह सब कभी मत करना।"

कुंजरसिंह की नसों में बिजली-सी दौड़ गई। उसने प्रमत्त

नेत्रों से कुमुद की ओर देखा। आँख मिलते ही कुमुद का चेहरा लाल हो गया। तुरंत दृष्टि बचाकर बोली "काकाजू आ ही रहे होंगे। संध्या हो रही है। दिया-बत्ती और आरती का प्रबंध करना है। मैं जाती हूँ।"

कुमुद चट्टान की टेक पर खड़ी हो गई। ऐसा जान पड़ा, मानो कमलों का समूह उपस्थित हो गया हो—जैसे प्रकाश-पुंज खड़ा कर दिया गया हो। पैरों के पैंजनों पर सूर्य की स्वर्ण-रेखाएँ फिसल रही थीं। पीली धोती मंद पवन के धीमे झकोरे से दुर्गा की पताका की तरह धीरे-धीरे लहरा रही थी। उन्नत भाल मोतियों की तरह भासमान था। बड़े-बड़े काले नेत्रों की बरौनियाँ भौंहों के पास पहुँच गई थीं। आँखों से झरती हुई प्रभा ललाट पर से चढ़ती हुई उस निर्जन स्थान को आलोकित-सा करने लगी। आधे खुले हुए सिर पर से स्वर्ण को लजानेवाली बालों की एक लट गर्दन के पास ज़रा चंचल हो रही थी। उस विस्तृत विशाल जंगल और नदी की उस ऊँची चट्टान के सिरे पर खड़ी हुई कुमुद को देखकर कुंजर का रोम-रोम कुछ कहने के लिये उत्सुक हुआ।

वे चट्टानें और पठारियाँ, वह दुर्गम और नीली धारवाली बेतवा, वह शांत, भयावना सुनसान, वह हृदय को चंचल कर देनेवाली एकांतता और चट्टान की टेक पर खड़ी हुई अतुल सौंदर्य की वह सरल मूर्ति!

कुंजर ने मन में कहा—"अवश्य देवी है। विश्व को सुंदर और प्रेममय बनानेवाली दुर्गा है।"

कुंजर को अपनी ओर आँख गड़ाकर ताकते हुए देखकर कुमुद के चेहरे पर और गहरी लाली छा गई। उस समय सूर्य की कुछ किरणें ही बाक़ी रह गई थीं। वे उस लालिमा को और भी उद्दीप्त कर गईं। कुंजर को ऐसा आभास हुआ, मानो संपूर्ण विश्व के पुष्पों

ने अपनी ताज़गी उस लालिमा को दे दी हो। हृदय उमड़ पड़ा। विश्व-भर को अपने में भर लेने के लिये लालायित हो उठा। और, किसी अपरिमित, किसी निस्सीम, किसी अनिश्चित बलिदान के लिये दृढ़ता अनुभव करने लगा।

कुमुद ने धीरे से कहा—"नाव में बैठे हुए काकाजू भी आ रहे हैं। मैंने कहा था न कि वह आते ही होंगे।" परंतु कुमुद ने कुंजर की ओर देखा नहीं।

कुंजर उन्मत्त-सा होकर बोला—"एक बार, केवल एक बार चरणों को अपने मस्तक से छुआ लेने दीजिए, और हृदय से—"

कुमुद के मुख-मंडल पर फिर गहरी लाली दौड़ आई। भ्रुकुटि-भंग करने की उसने चेष्टा की, परंतु विफल हुई। मुस्किराहट ने होठों को बरबस पकड़ लिया। बोली—"यदि आपने यह प्रयास किया, तो मैं इसी ओर से कूद पड़ूँगी, फिर चाहे चोट भले ही लग जाय।"

"नहीं, मैंने इस संकल्प का त्याग कर दिया। आप इसी ओर से उतर आवें।"

कुमुद विना कोई शब्द किए धीरे से उतर आई। नीचे आते ही उसने देखा, गोमती चट्टान के पास से तेजी से भागती हुई मंदिर में घुस गई। कुंजर ने नहीं देखा।

दरवाज़े की ओर जाती हुई कुमुद से धीरे से बोला—"मैं अपने मंदिर में अपनी देवी की आरती करूँगा।"

कुमुद चली गई।

---

(६६)

दिया-बत्ती और आरती हो चुकने के बाद गोमती को ऐसा जान पड़ा, जैसे कुमुद उससे कुछ बातचीत करना चाहती हो। वह भी अनुत्सुक नहीं जान पड़ती थी।

उस दिन कोठरी में कुछ गरमी मालूम होती थी, इसलिये वे दोनो मंदिर की छत पर चली गईं। कोठरियों, देवालय और दालान सब पर छतें थीं। बहुत-से आदमी आराम के साथ उन पर लेट सकते थे।

रात्रि अंधकारमय थी। बेतवा के प्रवाह की चहल-पहल स्पष्ट सुनाई पड़ती थी। जब कभी कोई बड़ी मछली उछलकर एक स्थान से दूसरे स्थान को दौड़ती थी, तब साफ़ सुनाई पड़ता था। बीच-बीच में, किसी भ्रम से, किसी भय से, टिटिहरी चिल्ला पड़ती थी, वैसे सुनसान था। आकाश में बिखरे हुए तारे और कहीं-कहीं उनकी झुरमुटें प्रकाश के एकमात्र साधन थे। केवल पानी पर कुछ टिमटिमाहट दिखलाई पड़ती थी।

वे दोनो लड़कियाँ उस तिमिरावृत छत पर बैठ गईं। गोमती का कलेजा धक्-धक् कर रहा था।

कुमुद बोली—"तुमने कुछ उपाय सोचा ?"

"कौन-सा ?" गोमती ने पूछा।

कुमुद ने कहा—"यहीं ठहरकर घटनाओं के चक्र और उनसे छुटक पड़नेवाले किसी अवसर की प्रतीक्षा में इसी स्थान पर बने रहना चाहिए, अथवा उस पार, उस गहन वन में, जिसकी एक रेखा भी इस समय लक्ष नहीं हो सकती, चल देना चाहिए।"

"आपसे बढ़कर इस विषय पर सम्मति स्थिर करनेवाला और कौन है ? जहाँ चलोगी, वहीं मैं पैर बढ़ा दूँगी।"

"मैं समझती हूँ, हम लोग अभी यहीं बने रहें।"

"ठीक है।"

"दलीपनगर के महाराज के आने की बाट तो देखनी ही पड़ेगी।"

गोमती ने कुछ नहीं कहा।

कुमुद बोली—"काकाजू ने जो कुछ उस दिन कहा था, उससे अपने मन को इतना दुखी मत बनाओ। मैं तुमसे पहले भी कह चुकी हूँ। राजा काकाजू को पहले से जानते न थे। उनके उस प्रस्ताव पर सहसा कैसे स्वीकृति दे देते?"

गोमती ने कहा—"क्या बतलाऊँ, आजकल ऐसी-ऐसी अनहोनी बातें हो रही हैं कि मेरा चित्त बिलकुल ठिकाने नहीं है। जी चाहता है, इसी दह में देह त्याग कर दूँ। न-मालूम किस भ्रम और किस आशा के वश इस समय जीवन धारण किए हूँ।"

कुमुद बोली—"राजा तुम्हें किसी-न-किसी दिन अवश्य मिलेंगे, परंतु तुम्हें इतना मान नहीं करना चाहिए। यदि वह न आ सकें, तो तुम्हें उनके पास स्वयं पहुँच जाने में संकोच न करना चाहिए।"

"ऐसा कहीं संभव है? कोई ऐसा करता है?" गोमती ने पूछा।

कुमुद ने उत्तर दिया—"क्यों नहीं? जहाँ पुरुष आगे पैर बढ़ाता है, वहाँ स्त्री नहीं बढ़ाती, परंतु जहाँ पुरुष आगे नहीं बढ़ता, वहाँ स्त्री को अग्रसर होने में क्यों संकोच होना चाहिए?"

गोमती ने हँसकर कहा—"ढिठाई क्षमा हो। यह तो बतलाइए कि इस पंथ की बातों को कहाँ से सीखा?"

कुमुद ने बुरा नहीं माना। बोली—"इन बातों को विना सिखलाए ही जान लेना स्त्रियों का जन्म-सिद्ध अधिकार है। मैं जानती हूँ, तुम्हें राज्य का लोभ नहीं है। शायद तुमने राजा को अच्छी तरह देखा भी नहीं है, फिर क्यों इतना अपनापन प्रकट करती हो?"

गोमती भी स्पष्ट बातचीत करने के लिये उस रात तैयार थी। कुमुद का मन भी स्पष्टता की ओर बढ़ रहा था।

गोमती ने कहा—"इसका उत्तर मैं क्या दे सकती हूँ? कुछ कहती, परंतु कहते डर लगता है। आपमें देवी का अंश है।"

"रहने दो।" कुमुद ज़रा उत्तेजित होकर बोली – "हममें, तुममें, सबमें वह अंश वर्तमान है। जब मनुष्य की देह धारण की है, तब उसके गुण-दोष से हम लोग नहीं बच सकते। कहो, क्या कहना है?"

गोमती ने धीरे से प्रश्न किया—"आपके हृदय में विश्व-प्रेम के सिवा और किसी वस्तु के लिये भी स्थान है या नहीं?"

कुमुद ने हँसकर उत्तर दिया—"विश्व में सब आ गए। और, उसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि विश्व को प्यार करती हूँ।"

गोमती कुछ सोचने लगी। देर तक सोचती रही। कुमुद उस सुनसान अँधेरे में दृष्टि गड़ाने लगी। अंत में आँगन में कुछ खटका सुनकर बोली—"अभी लोग सोए नहीं हैं।" फिर आँगन की ओर देखकर कहा—"काकाजू तो सो गए हैं।"

गोमती बोली—"वह जो आज संध्या के पहले कहीं से आए थे, आँगन में टहल रहे हैं।"

"हाँ, वही हैं।" कुमुद ने धीरे से कहा। फिर एक क्षण बाद सहसा पूछा—"रामदयाल कई दिन से नहीं दिखाई पड़े?"

"आपने नाम कैसे जाना?" आश्चर्य के साथ गोमती ने पूछा। फिर धीरे से बोली—"आजकल सब कोई सब किसी के नाम जानते हैं।"

"सो बात नहीं है।" कुमुद ने मीठे स्वर में कहा—"तुम्हीं ने तो एक बार कहा था कि वह महाराज का भृत्य है।"

गोमती ने स्वीकार किया।

कुमुद बोली—"काकाजू से न-मालूम क्या राजा ने कहा था, और क्या उन्होंने सुना था। इसके सिवा इस तरह की बातों से काकाजू को प्रयोजन नहीं रहता है। मेरी सम्मति है, तुम रामदयाल के द्वारा सब बातें अच्छी तरह समझ-बूझ लो। व्यर्थ ही राजा को दोषी मत ठहराओ।"

कुमुद के शब्दों और कंठ के लोच से सहानुभूति का प्रवाह-सा उमड़ रहा था। गोमती ने उसकी सच्चाई को अनुभव किया।"

जिस बात को गोमती बड़ी देर से भीतर ही रोके हुए थी, उसे उसने अब कहा—"जीजी, एक बात पूछूँ ?"

"अवश्य।"

"आप कभी विवाह करोगी ?"

कुमुद हँसने लगी। गोमती उत्साहित हुई। बोली—"यदि आज इस प्रश्न का उत्तर न दें, तो फिर कभी दीजिएगा, मैं जानना चाहती हूँ। बहुत दिनों से यह बात मन में उठ रही है।"

"क्यों ? कब से ?" कुमुद ने पूछा।

"इसका कारण नहीं बतला सकती।" गोमती ने उत्तर दिया।

कुमुद हँसकर बोली—"तुम्हारे इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर इसलिये नहीं दिया जा सकता कि इस तरह के प्रसंग की कभी कल्पना ही नहीं की।"

---

(७०)

उस दिन नरपति के मुँह से राजा देवीसिंह की कही हुई बात को सुनकर गोमती को बड़ा विषाद हुआ था, परंतु आशा ने धीरे-धीरे मन को फिर चेतन किया। शायद महाराजा ने यह न कहा हो। कुछ कहा, और नरपति काकाजू ने सुना कुछ और हो, अथवा यही कुछ कहा हो कि राज्य के काम-धंधों के मारे कैसे इतनी जल्दी स्मरण हो आता ? परंतु उन्होंने यह क्यों कहा कि वही है या कोई और ? परंतु वह सहसा मान भी कैसे लेते कि वही हूँ ? मान लो, वह यहाँ तक दौड़े आते, तो किसी विश्वास पर या यों ही ? राजा हैं, संसार-भर के बखेड़ों को देखना-भालना पड़ता है। सतर्क रहने का अभ्यास पड़ गया है, उसी अभ्यास-वश यदि ये सब बातें कही

हों, तो क्या आश्चर्य ? परंतु सेना, राज्य और प्रजा की ओर इतना सघन आकर्षण है कि वह मुझे भूल जायँ ?—अभी बहुत दिन भी तो नहीं हुए हैं, मैंने कंकण को अभी तक खोला भी नहीं है। इतने दिनों में क्या किसी समय एकांत का एक क्षण भी न मिला होगा ? क्या सो जाने के पहले शय्या पर एक करवट भी कभी न बदली होगी ? क्या एक पल के लिये भी उस समय पालर की कोई कल्पना-रेखा न खिंचती होगी ?

बहुत कष्ट के बाद भी एक समय अवश्य ऐसा आता है कि मन कुछ स्थिरता प्राप्त कर लेता है। उस दिन के कष्ट के उपरांत गोमती का मन भी कुछ हलका हुआ। उस दिन कुंजरसिंह जब अकेले में कुमुद के साथ संभाषण कर रहा था, गोमती का मन बहुत व्यथा में न था। उसके मन को किसी नवीन समस्या की, किसी ताज़ी उलझन की, किसी नई घटना की अपेक्षा थी। उस वार्तालाप को अकेले में छिपकर सुनने की इच्छा इसीलिये उत्पन्न हुई। परंतु चट्टान के पीछे से लौटकर मंदिर में आ जाने पर उसे विशेष संतोष नहीं हुआ। उसे कुछ ऐसा आभास हुआ कि कुंजरसिंह का अनुरोध केवल भक्त की विनय न था, किंतु उसमें कुछ और भी गहराई थी। रामदयाल ने उसे इस संबंध में अपनी एक कल्पना बतलाई थी। उस पर गोमती को विश्वास हुआ ; परंतु ऐसा कोई स्पष्ट वाक्य गोमती ने नहीं सुना था, जिससे वह इस निष्कर्ष को निकालती कि यह निस्संदेह प्रेम-वार्ता है। केवल झंकार उसके हृदय में रह-रहकर उठती थी—चरणों को सिर से, हृदय से लगा लूँ !

गोमती से ऐसी बात किसी ने कभी न कही थी। इसीलिये मन की आंशिक स्थिरता में उसे ख़याल हुआ कि महाराज एकांत समय में कभी कुछ स्मरण करते होंगे या नहीं ?

करते होंगे, तब हृदय को और चाहिए ही क्या ? अभी नहीं

मिलते ? न मिलें। कभी तो मिलेंगे। तब पूछ लिया जायगा कि क्या-क्या बात अकेले में सोचा करते थे ? किस-किस बात को लेकर रात-की-रात बेनींद चली जाती थी ? उस कल्पना को लेकर क्यों इतना छटपटाया करते थे ? और, यदि स्मरण न करते होंगे, तो ?

यही बड़ा भारी अनिष्ट था। जैसे-जैसे किसी कष्ट के प्रथम आक्रमण के पश्चात् समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे उसकी पीड़ा कम होती जाती है, और उसी के साथ-साथ नई-नई और कदाचित् असंभव आशाओं का उदय भी होता चला जाता है।

गोमती ने आशा की कि किसी दिन मेरी भी पूजा की जायगी। यदि न हुई, तो विना पूजा के कदापि समर्पण न किया जायगा। राजा देवीसिंह भूले नहीं हैं, भुलाने का बहाना-मात्र किया है। किसी दिन वह हँसते या रोते हुए इस बात को स्वीकार करेंगे। यदि ऐसी घड़ी न आई, तो देवीसिंह तो क्या, संसार-भर की भी विभूति यदि मनुष्य का अवतार धारण करके समर्पण की प्राप्ति की अभ्यर्थना करती हुई सामने आयेगी, तो ठुकरा दी जायगी !

इसलिये गोमती ने निश्चय किया कि मन को सँभालना चाहिए, और हो सके, तो दृढ़ रखना चाहिए। देखें, संसार में कौन क्या करता है। दूसरों को विना देखे अपनी अवस्था के परिचय का सुख-दुख पूरी तरह प्राप्त न होगा। गोमती के हृदय में पहले एक हूक जब-कब उठ बैठती थी, अब अधिक उठने लगी। पालर के उस दिन के बंदनवार बार-बार स्मरण आते थे। संध्या का समय था। पालकी में महाराज नायकसिंह लौटे जा रहे थे। बंदनवारों के सामने ही पालकी जा खड़ी हुई थी। किसी ने पालकी के काठ को आकर छुआ। कुछ कहा। फिर धड़ाम से गिर पड़ा। क्या कहा था ? यही न कि ये बंदनवार मेरे ही लिये सजाए गए हैं। इन्हीं बंदनवारों के पीछे किवाड़ की ओर से देखा

था। कंकण बँधी हुई कलाई किवाड़ के एक भाग को पकड़े हुए थी। क्या जान-बूझकर भूल जायँगे ?

और, यदि भूल गए हों, तो ? राजा प्रायः भूलें किया करते हैं। देखने पर शायद याद आ जाय। तो क्या मैं केवल विलास की सामग्री हूँ ? क्या आकृति देखकर ही याद आवेगी ? पहले कभी साक्षात्कार न हुआ था। सौंदर्य और लावण्य क्या पूर्व-परिचय की त्रुटि और विस्मृति की पूर्ति करेगा ?

तब भी बहुत कुछ आशा है। आदर हो। भक्ति हो। श्रद्धा हो। आराधना भी क्यों न हो ? उन्हें करनी पड़ेगी।

गोमती आशा, निराशा, मान और अभिमान में गोते खाने लगी।

---

(७१)

एक दिन रामदयाल सबेरे ही आया। कुंजरसिंह बिराटा के टापू में था। उस समय मंदिर में केवल नरपति मिला, और कोई वहाँ न था। रामदयाल को नरपति देवीसिंह का आदमी समझता था, इसलिये उसने उसके आने पर हर्ष प्रकट किया।

बोला—"कहो भाई, क्या समाचार है ?"

"समाचार साधारण है।" उत्तर मिला—"दलीपनगर में ज़ोर के साथ तैयारियाँ हो रही हैं।"

"यह समाचार साधारण नहीं, बहुत आशा-पूर्ण है।"

"यहाँ टापू में आज सन्नाटा कैसा छाया हुआ है ?"

"स्नान-ध्यान हो रहे हैं।"

"और लोग भी तो होंगे ?"

"रहने दो। तुम्हें उनसे क्या ? मंदिर में तो सभी प्रकार के लोग आया-जाया करते हैं।"

रामदयाल ने बात बदलकर कहा—"आप इस बीच में दलीपनगर भी हो आए, और मुझे कुछ न मालूम पड़ा। यदि पहले से मालूम होता, तो कदाचित् मैं किसी सेवा में पड़ जाता।"

नरपति प्रसन्न होकर बोला—"जल्दी में गया, और जल्दी में ही आया। दलीपनगर में ज्यादा देर ठहरने की नौबत ही नहीं आई, कार्य बन गया। मैं लौट पड़ा।"

"हमारे राजा" रामदयाल ने कहा—"टालाटूली नहीं करते। जिसके लिये जो कुछ करना होता है, शीघ्र कर देते हैं। आपको तो पक्का वचन दे दिया है।"

"वह बड़े ज़ोर से अपनी सेना की तैयारी इसीलिये तो कर रहे हैं। बड़े पुरुषार्थी हैं, बड़े ब्रह्मचारी हैं। सूरमाओं की धुन के सिवा और कोई ध्यान ही नहीं। वह लड़की, जिसे आपने यहाँ देखा होगा, उनकी रानी होने की अधिकारिणी है। केवल भाँवर नहीं पड़ पाई है।" नरपति ने मंतव्य प्रकट किया। उस सिलसिले में दिमाग़ दूसरी तरफ़ घूमा। नरपति कहता गया—"उस दिन जब पालर में लड़ाई हुई थी, ज़रा-सी ही देर हो गई, नहीं तो दांपत्य संबंध पक्का हो जाता। रह गया, सो रही गया। अब तो उस लड़की को वह पहचानते ही नहीं। कहते थे, कौन ? कहाँ की ? इत्यादि-इत्यादि।"

रामदयाल चौंका।

उसने पूछा—"इसका भी ज़िक्र आया था ?"

नरपति ने उत्तर दिया "ख़ूब मैंने कहा था। गोमती ने तो मना कर दिया था, परंतु मेरा जी नहीं माना।"

रामदयाल ने अपने आश्चर्य को दबा दिया।

बोला—"इसका कारण है। मैं जानता हूँ। परंतु मुझे आपसे कहने की ज़रूरत नहीं है।"

(७२)

रामदयाल को गोमती के ढूँढ़ने में और गोमती को रामदयाल के ढूँढ़ने में कष्ट या विलंब नहीं हुआ। वार्तालाप के लिये उपयुक्त समय और स्थान के लिये भी विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा।

गोमती की आकृति गंभीर थी। रामदयाल के मुख पर किसी भय या चिंता की छाप लग रही थी।

कुशल-मंगल के बाद दोनो कुछ क्षण चुपचाप रहे।

अंत में गोमती ने बारीक़, पैने और कुछ काटते हुए-से स्वर में पूछा—"तुम्हारे महाराज तो आजकल सैन्य-संग्रह और चढ़ाई की तैयारी के सिवा और सोचते ही क्या होंगे ?"

रामदयाल ने नीचा सिर किए हुए, घायल आदमी की तरह, उत्तर दिया—"उस धुन के सिवा और कोई धुन ही नहीं है। आज-कल तो और किसी बात के लिये ज़रा भी अवकाश नहीं मिलता। परंतु—"

"परंतु क्या रामदयाल ?" गोमती ने धड़कते हुए कलेजे से, परंतु उपेक्षा की मुद्रा धारण करके, कहा—"तुमने तो नहीं मेरी ओर से कुछ कहा था ?"

"आपकी ओर से तो नहीं," रामदयाल ने उत्तर दिया—"अपनी ही ओर से कहा था। बोले, इस समय राजनीति और रण-नीति के अतिरिक्त और कोई चर्चा न करो।"

ज़रा चिढ़कर गोमती बोली—"तुमने नाहक़ मेरी बात छेड़ी रामदयाल !"

"क्या करूँ, मन नहीं माना।" गद्गद-सा होकर रामदयाल ने कहा—"आपको दुखी देखकर छाती फटती है। आपको सुखी देखकर यदि तुरत मर जाऊँ, तो मेरे बराबर पुण्यवाला किसी को न समझा जाय।"

गोमती को उस गद्‌गद कंठ ने तुरंत आकृष्ट किया। स्त्री की सहज-साधारण सावधानी को गोमती दूर रखकर बोली—"मैं राज-पाट की भिखारिन नहीं हूँ। महाराज आनंद के साथ संसार में रहें, मेरे लिये इतना ही बहुत है।"

रामदयाल ने उत्तेजित होकर कहा—"परंतु मेरे संतोष के लिये इतना कम-से-कम आवश्यक है कि आप आनंद-पूर्वक रहें। मैं साधारण मनुष्य हूँ, परंतु मेरे हृदय को यह कहने का अधिकार है।"

गोमती ने उत्सुकता की अधीरता के वश होकर कहा—"यह निश्चय जानो रामदयाल, मैं स्वयं दलीपनगर नहीं जाऊँगी। निरादर के सिंहासन से इस जंगल का जीवन सहस्रगुना अच्छा। यहाँ मेरे लिये सब कुछ है।

रामदयाल बोला—"यह ठीक है, परंतु आपको यहाँ बहुत दिनों नहीं रहना चाहिए। कुछ दिनों बाद यहाँ लोहे और अग्नि की वर्षा होगी। यद्यपि आप निर्भय हैं, तो भी व्यर्थ ही विपद् को सिर पर बुलाना ठीक नहीं मालूम पड़ता। यहीं, किसी जंगल के किसी सुरक्षित स्थान में, आप रह जायँ, सेवा के लिये मुझ-सदृश भृत्यों की कमी न रहेगी।"

"मैं किसी भी संकटमय स्थान में जा सकती हूँ। कुमुद भी देर-सबेर यहाँ से जायँगी। उन्हीं के संग रह जाऊँगी।" फिर तुरंत हँसकर बोली—"अर्थात् यदि उन्होंने निभा लिया, तो।"

रामदयाल ने नीचे से ही एक आँख को ऊँचा करके पूछा—"मुझे विश्वास है, कुंजरसिंह उनका पीछा न छोड़ेंगे। ऐसी दशा में आपका उनके संग रहना कैसे संभव होगा?"

कुछ सोचकर गोमती बोली—"यह एक समस्या अवश्य है।" फिर कुछ क्षण चुप रहकर उसने पूछा—"अब तो तुम महाराज के साथ ही रहोगे?"

"कुछ आवश्यक नहीं है।" रामदयाल ने उत्तर दिया—"मैं चरणों की सेवा में ही रहूँगा।"

इससे कुछ मिलती-जुलती बातचीत गोमती ने किसी चट्टान के पीछे छिपकर हाल ही में सुनी थी। उसके स्मरण में देर नहीं लग सकती थी। शायद मन में पहले से बात मौजूद थी। गोमती का अनमना मन एकाएक कहीं चला गया। हँसकर बोली—"परसों मैंने जो बातचीत सुनी है, उससे तुम्हारी उस दिन की बात पर विश्वास करने को जी चाहता है।"

"यहाँ कुंजरसिंह आए हुए हैं?"

"हाँ।"

"तब मैं संपूर्ण बात सुनने का अधिकारी हूँ। अवश्य सुनाइए। पूरा हाल सुनने के लिये जी चंचल हो रहा है।"

गोमती ने उत्तर दिया—"किसी एक वाक्य को संपूर्ण संभाषण में से खींच-निकालकर यह नहीं बतलाया जा सकता कि तुम्हारे संदेह की पुष्टि में यह प्रमाण है; परंतु कुछ-कुछ भान मुझे भी होने लगा है।"

हँसते हुए, बड़े अनुरोध, बड़े आग्रह और बहुत मचलते हुए रामदयाल ने कहा—"मैं तो पूरी बात सुनूँगा। सारा भाव जानकर रहूँगा।"

कुछ संकोच के साथ गोमती बोली—"जितना याद होगा, बतला दूँगी।"

"मैं पूछता जाऊँगा, आप बतलाती जाना।" रामदयाल ने पूर्व-वत् भाव के साथ प्रस्ताव किया।

गोमती बोली—"मैं कोठरी में थी। कुंजरसिंह से उन्होंने कुछ बात करने की इच्छा प्रकट की।"

फिर एक क्षण सोचकर कहा—"परंतु रामदयाल, हो सकता है,

कुंजरसिंह किसी वरदान की याचना ही के लिये वैसे भक्ति-पूर्ण वचनों से संबोधन कर रहे हों।"

जोश के साथ रामदयाल बोला—"महारानी का यह भ्रम है। वरदान की याचना हो सकती है, परंतु दूसरे तरह के वरदान की। मुझे कुछ बातें सुनाई जायँ, तो मैं निश्चय के साथ बतला दूँगा। मैं छुटपन से राजाओं और रानियों के बीच में ही रहा हूँ। मुझसे किसी ने किसी भाँति की आड़-मर्याद नहीं मानी है। संसार का पूरा अनुभव मुझे है। आप भ्रम में न पड़ें, कहें।"

"कुमुद बातचीत करने के लिये बड़ी सतर्कता के साथ बाहर गईं, और बड़ी बारीकी के साथ इधर-उधर दृष्टि डालती रहीं। हो सकता है, नरपति काकाजू के आगमन की प्रतीक्षा करती हों।" गोमती ने मुस्किराकर कहा।

रामदयाल बोला—"मेरा अनुभव मुझे बतलाता है कि जब दो व्यक्ति मिलना चाहते हैं, तब सहसा इसी तरह चौकन्ना होना पड़ता है।"

गोमती ने कहा—"फिर एक चट्टान पर वह जा बैठीं। इधर-उधर देखती रहीं। देर तक बातचीत करने के बाद भीतर चली गईं। परंतु उनके वहाँ से चल देने के पहले ही मैं वहाँ से चली आई थी।"

"आप जहाँ थीं, वहाँ से देख-सुन तो सब सकती थीं?" रामदयाल ने प्रश्न किया।

गोमती ने कहा - "हाँ।"

"क्या ऐसा नहीं होता था कि कभी-कभी उठान तो बात का उत्साह और ज़ोर के साथ होता हो, परंतु अंत बहुत ही साधारण?"

"इसी तरह तो प्रायः संपूर्ण वार्तालाप हुआ था।"

"कुमुद की बोली में रुखाई थी?"

"बिलकुल नहीं।"

कुंजर ने अधिक ज़ोर किस बात पर दिया था ?"

"इस पर कि मैं अब तो सदा आपके निकट ही रहूँगा।"

"वह स्वीकार नहीं कर रही होंगी ?"

"स्पष्ट अस्वीकृति तो नहीं की।"

"यही ढंग तो असल में होता है।"

गोमती कुछ सोचने लगी।

रामदयाल ने कहा—"मैं विश्वास दिलाता हूँ, कुमुद के हृदय पर कुंजर का प्रभाव हो गया है। उसने कोई घनिष्ठता-सूचक बात नहीं की थी ?"

"स्मरण नहीं है।"

रामदयाल ने नीचे आँखें किए हुए पूछा—"कुमुद कुंजर से आँखें जोड़कर बात कर पाती थीं या नहीं ?"

गोमती ने उत्तर दिया—"मैंने स्पष्ट लक्ष्य नहीं किया।"

रामदयाल बोला—"कनखियों देखती थीं ?"

"हाँ, कुछ ऐसी ही।"

रामदयाल ने बेतवा की धारा की ओर देखते हुए कहा—"अच्छा, यह तो निश्चय-पूर्वक आपको याद होगा कि जब कुंजरसिंह ख़ूब अच्छी तरह कुमुद की ओर देखना चाहते होंगे, तभी उनका मुँह दूसरी ओर फिर जाता होगा ?"

गोमती ने पूछा—"रामदयाल, तुम्हें ये सब बातें किसने बतलाईं ?"

उसने जवाब दिया—"सरकार, हम लोग सदा महलों में ही रहते हैं। कम-से-कम मेरा समय रानियों की ही सेवा में जाता है। अधिकांश समय प्रेम-चर्चा में बीतता है। अपनी-अपनी बीती लोग सुनाया करते हैं। मेरी आयु ज़रूर थोड़ी है, परंतु संसार के अनुभव बूढ़ों से अधिक हैं। महाराज नायकसिंह मुझे दिन रात में किसी

समय भी अपने पास से अलग नहीं करते थे। जब आज्ञा होगी, उनके मनोरंजक क़िस्से सुनाऊँगा। परंतु पहले मैं भी तो पूरी-पूरी बात सुन लूँ।"

किसी उत्सुकता, किसी दूरवर्ती घटना-चक्र के कौतूहल ने गोमती को हिला-सा दिया।

धीरे से बोली— 'बतलाती जाती हूँ।"

रामदयाल वार्तालाप में अग्रसर होता चला जा रहा था। पूछा— "एकआध बार बातचीत करने में कुंजर का गला काँपा था?"

"इसका भी ठीक-ठीक ध्यान नहीं है।"

रामदयाल ने कहा—"जब भीतर से हृदय उमड़ता है, उस भाव की बाढ़ आती है, और बात पूरी कह पाने का अवसर नहीं मिलता, तब यही दशा होती है।" रामदयाल ने इसके बाद अपना गला साफ़ किया।

गोमती हँसकर बोली—"रामदयाल, तुम्हारा गला क्यों काँप रहा है?'

उसने मुस्किराकर कहा—"आप केवल मेरे प्रश्नों का उत्तर देती जायँ। अभी आपको प्रश्न करने का अधिकार नहीं है।"

फिर बोला—"बात करते-करते कभी कुंजर एकाएक रुक जाता होगा। देर तक कुछ सोचता रहता होगा। फिर एकाएक कोई असंगत बात कह देता होगा। यही दशा कुमुद की रही होगी।"

"हाँ, परंतु ऐसा क्यों हुआ होगा?" गोमती ने संकोच के साथ प्रश्न किया।

रामदयाल बोला—"जब एक हृदय का दूसरे हृदय की ओर संवाद जाने को होता है, तब सबसे पहले आँखें कुछ कहती हैं। दिखलाई पड़ता है, परंतु आँख मिलाकर देखते नहीं बनता। हज़ारों निरर्थक-सी बातें होती हैं। रुक-रुककर। विना प्रवाह के।

जैसे कोई गला दबाए देता हो। मालूम होता है, जो बात कहनी है, उस पर ख़ूब विचार किया जा रहा है, परंतु वास्तव में विचार होता किसी विषय पर भी नहीं है।"

"शायद।" एक ओर देखते हुए गोमती ने कहा।

रामदयाल बोला—"एक हृदय की दूसरे हृदय के साथ जब मुठ-भेड़ होती है, तब कुछ इसी तरह का भूचाल-सा आता है।"

गोमती ने इस पर कोई मंतव्य प्रकट नहीं किया।

रामदयाल ने कहा—"इस दशा में एक बड़ी अनोखी बात होती है।"

गोमती ने बड़ी उपेक्षा दिखलाते हुए पूछा—"क्या?"

रामदयाल ने उस उपेक्षा की तली में देखा, काफ़ी कौतूहल वर्तमान है।

उसने बतलाया—"एक पक्ष तो यह समझता है कि मैं प्यार करते-करते खपा जा रहा हूँ, और दूसरा मेरी बात भी नहीं पूछता, उधर दूसरा पक्ष—"

रामदयाल रुक गया। गोमती ने उपेक्षा के भाव को त्यागकर कहा—"दूसरा पक्ष क्या?"

वह बोला—"उधर दूसरा पक्ष कदाचित् यह सोचता है कि मैं करूँ, तो क्या करूँ? हृदय का दान देने को जो यह उतारू है, सो वास्तव में ऐसा ही है या नहीं? यदि ऐसा ही है, तो मैं अपने हृदय का दान किस भाँति करूँ। अंत में कदाचित् यह निश्चय होता है कि हृदय का गुप्त दान करूँ—कोई न जाने, यहाँ तक कि लेनेवाले से भी यह दान छिपा रहे।"

गोमती हँसने लगी।

रामदयाल हाथ जोड़कर सर्राटे के साथ बोला—"आप हँसती हैं, क्योंकि इस तरह की समस्याएँ आपके देव-तुल्य मन के सामने

आकर खड़ी नहीं हुई। परंतु, सच मानिए, जहाँ एक बार हृदय को किसी ने हिलाया कि इस कथन का तथ्य सच्चा जँचने लगता है। प्यार के सामने कोई विघ्न-बाधा और संकट नहीं टिकने पाते। ऊँच-नीच का भेद मिट जाता है। व्यवधा के बाँध और रोड़े ढोंके बह-बहाकर तिरोहित हो जाते हैं। बड़ा आदमी छोटे को और छोटा बड़े को प्यार करने से नहीं रुक सकता। उसे कोई वस्तु ऐसा करने से नहीं रोक पाती। प्रेम के सामने छोटे-बड़े और ऊँच-नीच का अंतर नष्ट हो जाता है। महलों में जो मैं सदा देखा करता हूँ, उससे मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि छोटा व्यक्ति बड़े को अधिक सच्चाई और अधिक गहराई के साथ चाह सकता है। बड़ा जब थोड़ा-बहुत छोटे को प्यार करता है, तब वह यह समझता है कि मैं एहसान कर रहा हूँ।"

गोमती ने इतना वाचाल रामदयाल को पहले कभी न देखा था। ज़रा आश्चर्य किया।

बोली—"तुम्हारा क्या अभिप्राय है रामदयाल ?"

विना किसी सकपकाहट या संकोच के उसने उत्तर दिया—"मुझे इस समय एकाएक ताव आ गया था। मैं स्वामिभक्त सेवक हूँ। महाराज के सुख-दुख में बराबर साथ रहता हूँ, परंतु मेरी सहानुभूति उनके साथ नहीं है।"

"क्यों ?"

"इसलिये कि बार-बार कहने पर भी उन्हें स्मरण नहीं आता। आमोद-प्रमोद के समय किसी भी स्मृति की हूक उनके कलेजे में नहीं उठती। मुझे तो कभी-कभी उन पर क्रोध भी आ जाता है।"

गोमती अपने को न रोक सकी। पूछने लगी—"तुम्हारे सामने कभी बात पड़ी मेरी ?"

तुरंत उसने उत्तर दिया—"मैंने तो कई बार कहा, परंतु न-मालूम

क्या धुन समाई है। मनुष्य का बड़े पद पर पहुँच जाना दूसरों, विशेषकर आश्रितों के लिये बड़ा कष्ट-पूर्ण होता है।"

गोमती का चेहरा पीला पड़ गया।

बहुत पास जाकर रामदयाल बोला—"अरे वाह! मेरी रानी, यह क्या? तुम्हें ऐसा दुःख न करना चाहिए। राजप्रासाद के सुखों की कल्पना में अपने को इतना नहीं डुबोना चाहिए कि स्वल्प-सी निराशा के उदय होते ही मन का यह हाल हो जाय। मुझे विश्वास है, महाराज इस समय भूले हुए हैं, तो किसी समय स्मरण भी करेंगे।"

रामदयाल की आँखों में आँसू आ गए।

गोमती भी उन आँसुओं को देखकर थोड़ी देर रोई।

रामदयाल ने कहा—"यह कम-से-कम मेरे लिये असह्य है। आप यदि और रोईं, तो मेरा कलेजा टूक-टूक हो जायगा।"

गोमती दृढ़ता के साथ बोली—"अब नहीं रोऊँगी, रामदयाल।" फिर स्थिर होकर एक क्षण बाद उसने कहा—"तुम्हें यह कैसे विश्वास हो गया कि मैं महलों के सुखों की लालसा में लिप्त हूँ? मैं ऐसे महलों को पैरों से ठुकराती हूँ, जहाँ सम्मान के साथ प्रवेश न हो।"

रामदयाल ने कहा—"मैं यह नहीं कहता। वहाँ पहुँचने पर सम्मान तो अवश्य होगा, परंतु उसमें हमारे महाराज का कोई एहसान नहीं। ऐश्वर्य, रूप और महत्त्व अपना जो आदर बरबस करवा लेता है, वही आपका भी होगा, उस महल में क्या, कहीं भी। परंतु चंद्रमा का प्रकाश नगरों में उतना अच्छा नहीं मालूम होता, जितना जंगलों में।"

फिर एक क्षण ठहरकर रामदयाल बोला—"मैं आपको यहाँ अकेला नहीं रहने दूँगा, और न मैं महाराज की सेवा में अब

जाऊँगा। जंगलों में आपके पास मर जाना अच्छा। महलों में रहना अब असह्य है।"

गोमती ने देखा, बात करते-करते रामदयाल का गला भर-भर आता है। बोली—"बहुत संभव है, कुंजरसिंह भी साथ रहे, क्योंकि मैं कुमुद का साथ नहीं छोड़ना चाहती, और वह कुमुद के निकट रहेगा। ऐसी हालत में तुम्हारी कैसे निभेगी?"

बड़ी लंबी साँस लेकर रामदयाल ने उत्तर दिया—"यदि आपके मन से हो, तो मैं बाबा का वेश धारण करके बना रहूँगा, कोई न पहचान पावेगा। और, यदि आपके मन में न होगा, तो मेरा संसार में और कोई नहीं है; इसी दह में अपनी देह डुबो दूँगा।"

गोमती बोली—"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। बने रहना। तुम्हारा बहुत सहारा रहेगा।"

रामदयाल गोमती के घुटने छूकर बोला—"जन्म-भर दूर न कर सकोगी। सदा पास रहूँगा। यदि अनंतकाल तक भी बाबा-वेश धारण करना पड़ा, तो किए रहूँगा। मैं आपके कृपा-कटाक्ष के लिये संसार-भर की विपत्तियाँ झेलने की सामर्थ्य रखता हूँ।"

गोमती के पीले चेहरे पर मुस्किराहट आई। बोली—"रामदयाल, कुछ इसी तरह की बात कुमुद से कुंजरसिंह भी कह रहे थे।"

रामदयाल झेंप गया, परंतु नीची आँखें किए हुए ही बोला—"मालूम नहीं, कुंजरसिंह के असली भाव को कुमुद ने समझ पाया या नहीं।"

उसका असली भाव क्या रहा होगा?" गोमती ने अलसाते स्वर में, कुछ लापरवाही के साथ पूछा।

रामदयाल ने जवाब दिया—"असली भाव, यदि कुंजर सच बोल रहे थे, तो यही रहा होगा कि लो या न लो, कुचल दो, या ठुकरा दो, परंतु मेरा हृदय तुम्हारे लिये मेरी हथेली पर है।"

गोमती खड़ी हो गई। बोली—"बहुत थकावट मालूम होती है। जाड़ा-सा लग रहा है। अब चलो।"

---

(७३)

राजा देवीसिंह ने तीन ओर से अलीमर्दान के ऊपर आक्रमण करने का निश्चय किया। सिंहगढ़ से लोचनसिंह, दलीपनगर से पालर होते हुए स्वयं और बड़े गाँव से जनार्दन शर्मा दस्ते ले चलें, इस योजना पर कार्य करना निर्धारित हुआ। यह निश्चय किया गया था कि लोचनसिंह नवाब को भांडेर में कुछ समय तक अटकाए रक्खे, तब तक राजा पालर से आकर रानियों को परास्त कर देंगे, और भांडेर पहुँचकर लोचनसिंह की सहायता करके नवाब का अड्डा समाप्त कर देंगे, तथा जनार्दन का दस्ता ज़रूरत पड़ने पर कुमुक पहुँचाने के लिये बड़े गाँव से भांडेर की ओर राजा के पीछे-पीछे बढ़ेगा।

रामनगर में रानियों को पालरवाली सेना के आने की सूचना मिली। उनके पास भी कुछ सरदार और सैनिक इकट्ठे हो गए थे। रामनगर-गढ़ हाथ में था, परंतु पड़ोस में बिराटा का कटक भी था। रामनगर के राव पतराखन को बिराटा के सबदलसिंह के प्रति सुहृद् भाव बनाए रखने के लिये विशेष कारण न था। इस समय यह काफ़ी तौर पर प्रकट हो गया था कि सबदलसिंह ने नवाब के मुक़ाबले के लिये राजा देवीसिंह को निमंत्रित किया है। पतराखन को मालूम था कि रानियों के पक्ष में नवाब है, परंतु नवाब ने बिराटा पर चढ़ाई करने का अभी तक कोई लक्षण नहीं दिखलाया था। रामनगर में रानियों और पतराखन की स्थिति तभी तक सुरक्षित समझी जा सकती थी, जब तक बिराटा और पालर की ओर से आई हुई सेनाओं का सहयोग हुआ था। पतराखन को अपनी गढ़ी पर इतना मोह न था, जितना उसमें रक्खी हुए संचित संपत्ति

और गाढ़े समय में काम आनेवाले अपने थोड़े-से, परंतु निर्भीक योद्धाओं का। समस्या ज़रा कराल रूप में सामने खड़ी देखकर उसने रामदयाल को बुलाया। वह उसी दिन बिराटा से लौटकर आया था। उसने रानियों से सलाह करने के लिये मिलने की इच्छा प्रकट की। रामदयाल उसे रनिवास में ले गया। पर्दे में होकर रानियों से प्रत्यक्ष बातचीत होने लगी। किसी बीचवाले की ज़रूरत नहीं पड़ी।

छोटी रानी ने कहा—"पर्दे से काम नहीं चल सकता राव साहब। अटक पड़ने पर तो मुझे तलवार हाथ में लेकर रण-क्षेत्र में जाना पड़ेगा।"

पतराखन के जी में लड़ने के लिये बहुत उत्साह न था, तो भी तेजी दिखलाते हुए उसने कहा—"ठीक है, महाराज, और वह दिन शीघ्र आनेवाला है। देवीसिंह अपनी सेना लेकर आ रहे हैं। बहुत संभव है, कल तक हम लोग यहीं घिर जायँ, या बिराटा की गढ़ी से तोपें हमारे ऊपर गोले उगलने लगें।"

छोटी रानी ने कहा—"तब हमें तुरंत अपनी सेना पहले से ही भेजकर कहीं पालर के पास ही लड़ाई करनी चाहिए, और जैसे बने, बिराटा की गढ़ी अपने हाथ में कर लेनी चाहिए।"

पतराखन बोला—"मुझे दोनो प्रस्ताव पसंद हैं, परंतु आदमी मेरे पास इतने नहीं कि इन प्रस्तावों में से एक को भी सफलता-पूर्वक कार्य में परिणत कर सकूँ। बिना नवाब की सहायता के कुछ न होगा। मालूम नहीं, उन्होंने अभी तक बिराटा को क्यों अपने अधिकार में नहीं लिया।"

बड़ी रानी ने कहा—"बिराटा को हमें स्वयं अपने अधिकार में कर लेना चाहिए, नहीं तो नवाब कदाचित् वहाँ के मंदिर को तुड़वा डालेगा।"

छोटी रानी बोलीं—"यह असंभव है।"

पतराखन ने कहा—"असंभव तो कुछ भी नहीं है, परंतु वह ऐसा करेगा नहीं। सबदल ने उनके साथ जैसा बर्ताव किया है, उससे यह प्रकट होता है कि नवाब मंदिर को छोड़कर गाँव-भर को तो अवश्य ही तहस-नहस कर देगा।"

रामदयाल बोला—"गाँव को ख़ाक करने से क्या मतलब? नवाब तो उस दाँगी की छोकरी का डोला चाहते हैं, जिसे मूर्खों ने अवतार मान रक्खा है।"

बड़ी रानी ने पूछा—"कौन को?"

रामदयाल ने उत्तर दिया—"मैं स्वयं उसे देख आया हूँ। वह नित्य देवी से कुंजरसिंह की सफलता के लिये प्रार्थना किया करती है, और कुंजरसिंह नित्य यह सोचा करते हैं कि अन्नदाता और देवीसिंह को परास्त करके दलीपनगर के राजसिंहासन पर बैठ जाऊँ, और कुमुद को अपनी रानी बना लूँ। महाराज, अपनी आँखों सब हाल देख आया हूँ। मैंने अपने को वहाँ राजा देवीसिंह का नौकर प्रसिद्ध कर रक्खा है।"

"राजा देवीसिंह!" छोटी रानी ने अत्यंत घृणा के साथ कहा—"चाहे कुछ हो जाय, देवीसिंह राजा न रहने पावेगा।"

पतराखन अधैर्य के साथ बोला—"जो कुछ करना हो, जल्दी करिए। मेरी राय है कि रामदयाल को नवाब के जताने के लिये तुरंत भेजिए; अपने सरदारों और सैनिकों को दो भागों में बाँटकर एक को देवीसिंह से लड़ने के लिये पहुँचाइए, और दूसरे को बिराटा के ऊपर धावा करने के लिये भेजिए। एक ओर से आपकी टुकड़ी बिराटा पर धावा करे, और दूसरी ओर से मेरी टुकड़ी। मैं उस पार जाकर उधर से धावा करूँगा, और बिराटावालों को निकल भागने का अवसर न दूँगा।"

रामनगर की गढ़ी से बिराटा की गढ़ी स्पष्ट दिखलाई पड़ रही थी—क़रीब एक कोस की दूरी पर, पानी में खड़े हुए एक स्तंभ-सदृश प्रतीत होती थी।

बड़ी रानी ने कहा—"बिराटा की उस कन्या का क्या होगा? क्या उसे मुसलमानों द्वारा मर्दित होते हुए देखा जायगा?"

रामदयाल ने तुरंत उत्तर दिया—"उसी लोभ के वश असल में नवाब हमारा साथ देने को यहाँ आवेगा। दलीपनगर का एक चौथाई राज्य भी उसे चाहिए, परंतु उस लड़की के विना वह तीन चौथाई हिस्से पर भी लड़ने को इन दिनों राज़ी न होगा। फिर भी मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने ऐसा प्रबंध किया है कि उस लोभ से नवाब हमारी सहायता के लिये आवे, और यथासंभव उसे पावे नहीं।"

बड़ी रानी ने पूछा—"यह कैसे होगा?"

उसने उत्तर दिया—"यह ऐसे कि बिराटा में कुंजरसिंह विद्यमान हैं। वह उस लड़की को विना अपनी रानी बनाए दम नहीं लेंगे, चाहे दलीपनगर का या दलीपनगर की एक हाथ भूमि का भी राज्य मिले या न मिले। बिराटा के अधिकृत होने के पहले ही, मुझे पूर्ण आशा है, वह लड़की कुंजरसिंह के साथ किसी सुरक्षित स्थान में भाग जायगी। मैं पानी के मार्ग से नाव में होकर बिराटा आया-जाया करूँगा, और सब समाचार दिया करूँगा, अर्थात् जब तक बिराटा अपने अधिकार में नहीं आया।"

बड़ी रानी इस बेतुके उत्तर से संतुष्ट नहीं हुईं। कुछ पूछना चाहती थीं कि छोटी रानी बीच में पड़ गईं। बोलीं—"ऐसी छोटी-छोटी बातों पर इस समय ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। रामदयाल जो कह रहा है, वह ठीक है। तुरंत नवाब को ससैन्य बुलाना चाहिए। रामदयाल, तुम इसी समय घोड़े पर सवार होकर सरपट

जाओ। मैं चाहती हूँ कि सबेरा होने के पहले ही हमारी और नवाब की सेनाएँ देवीसिंह को कुचलने और बिराटा को ढाह देने के काम में नियुक्त हो जायँ।"

रामदयाल ने स्वीकार किया।

पतराखन ने कहा—"मैं उस पार जाकर अपनी योजना को काम में लाता हूँ।"

रामदयाल भांडेर की ओर गया, और पतराखन गढ़ी को अपने सिपाहियों और संपत्ति से ख़ाली करके उस पार, सुरक्षित जंगल में, चला गया। परंतु तोप वहीं छोड़ गया।

---

(७४)

रामदयाल बहुत तेज़ी के साथ भांडेर गया, और दिन-ही-दिन में नवाब के सामने जा पहुँचा। दिल्ली से एक बहुत ज़रूरी फ़रमान आया था कि तुरंत संपूर्ण सेना लेकर दिल्ली आ जाओ। इस फ़रमान को आए हुए कई दिन हो गए थे। अलीमर्दान को राजा देवीसिंह की तैयारियों की ख़बर लग चुकी थी, इसलिये और शायद किसी और कारण-वश भी अलीमर्दान स्वयं तो दिल्ली की ओर रवाना नहीं हुआ; परंतु उसने अपनी सेना के एक काफ़ी भाग के साथ कालेख़ाँ को दिल्ली की ओर भेज दिया। वह भांडेर में ही बना रहा। राजा देवीसिंह को कुछ समय तक रोके रहने के लिये उसने एक चाल चली; दलीपनगर को संधि का प्रस्ताव भेजा। कहलवाया कि दो निकटवर्ती राज्यों में मेल रहना चाहिए। लड़ाई की तैयारी बंद कर दो, नहीं तो अनिवार्य संकट में पड़ जाओगे। राजा इसका उत्तर नहीं देना चाहता था, परंतु जनार्दन नहीं माना। उसने एक बड़ी मीठी चिट्ठी लिखवाई, जिसके लंबे वाक्यों का सार यह था कि यहाँ भी तुरंत लड़ डालने की किसी की अभिलाषा

नहीं है। इस संधि-प्रस्ताव और उसकी अर्द्ध-स्वीकृति पर दोनो को संदेह था।

देवीसिंह रानियों से लड़ने जा रहा था। जानता था कि अली-मर्दान उधर से सहायता के लिये आएगा, तब इस संधि की रद्दी के टुकड़े से भी बढ़कर प्रतिष्ठा न होगी। अलीमर्दान का विश्वास था कि दलीपनगर मेरे चकमे में आ गया है।

रामदयाल को ऐसी हड़बड़ी में आता देखकर अलीमर्दान को आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वह समय ऐसा था कि अचेती और अनजानी उलझनें अकस्मात् उपस्थित हो जाया करती थीं।

एकांत पाने पर रामदयाल ने कहा—"हुज़ूर, मामला बहुत टेढ़ा है। राजा देवीसिंह की सेना रामनगर पर बढ़ी चली आ रही है।"

"कब?" अलीमर्दान ने पूछा।

"आज पालर के क़रीब थी," उसने उत्तर दिया—"कल संध्या तक रामनगर और बिराटा पर दख़ल हो जाने का भय है।"

"मेरी आधी सेना तो कालेख़ाँ के साथ दिल्ली चली गई है।"

"परंतु जो कुछ सरकार के पास है, वह सरकार के शत्रुओं के दाँत खट्टे करने के लिये बहुत है।"

"तुम लोगों के पास कितनी सेना है?"

रामदयाल ने अपनी सेना का कूता अलीमर्दान को बतलाया।

अलीमर्दान ने कहा—"तब तक इतनी सेना से लड़ो। काफ़ी है। कुछ समय बाद हमारी कुमुक पहुँच जायगी।"

रामदयाल घबराकर बोला—"तब तक हम लोग शायद बिलकुल पिस-कुट जायँ। बिराटा से सबदल और कुंजरसिंह हम लोगों को संतप्त करेंगे, उधर से देवीसिंह हमें भून डालेंगे, रामनगर के रावसाहब अपनी सेना लेकर उस पार जंगलों में चले गए हैं। यदि

न्होंने बिराटा पर आक्रमण न किया, तो हम लोग ऐसे गए, उसेजै पिंजड़े में बंद चिड़िया को बिल्ली मरोड़ देती है।"

"बेतवा-किनारे के क़िलेदारों को" अलीमर्दान ने कहा—"मैं ख़ूब जानता हूँ। ऐसे बदमाश और दग़ाबाज़ हैं कि कुछ ठिकाना नहीं। कई बार सोचा, मगर मौक़ा नहीं मिला। अब की बार मौक़ा मिलते ही पहले इन बन-बिलावों को मटियामेट करूँगा।"

कुछ उत्साहित होकर रामदयाल बोला—"वह मौक़ा हुज़ूर न-जाने कब आने देंगे। सरकार सोचें, कैसी विकट समस्या हम सब लोगों के लिये है। हमें मिटाने के बाद निश्चय ही देवीसिंह आपको छेड़ेगा। फिर क्यों उसे इस समय छोड़ा जाय?"

अलीमर्दान ने सोचकर कहा—"बिराटा में है कुंजरसिंह?"

"हाँ सरकार," रामदयाल ने उत्तर दिया—"और कमर कसकर हुज़ूर से लड़ने के लिये तैयार है। सबदलसिंह बाग़ी हो गया है। लड़ेगा। उसने देवीसिंह को, इस ओर, आपसे और रानी साहब से लड़ने के लिये बुलाया है। उसी के साथ कुंजरसिंह हो गया है।"

स्वप्न-सा देखते हुए अलीमर्दान ने कहा—"बाग़ी तो कुल बेतवा का किनारा ही है, अकेला सबदल क्या। पर अब की बार उसके क़िले को ज़मीन में मिला देना है।"

फिर मुस्किराकर बोला—"केवल तुम्हारे मंदिर को छोड़ दूँगा। तुम जानते हो कि मंदिरों से मुझे दुश्मनी नहीं है।"

जिस बात के कहने के लिये रामदयाल उकता-सा रहा था, अवसर मिलने पर उसे प्रकट किया—"मंदिरों को तो हुज़ूर ने कभी छुआ नहीं है। उसी मंदिर में पालरवाली वह दाँगी की जवान लड़की भी है। वह पद्मिनी-जाति की स्त्री है।'

नवाब ने अधिक मुस्किराहट के साथ पूछा—"अभी तक वहाँ से भागी नहीं? मैं समझता था, चली गई होगी। बड़ी

दिक़्क़त तो यह है कि बहुत-से हिंदू उसे देवी का अवतार मानते हैं।"

रामदयाल बोला--"तब हुज़ूर को पूरी बात का पता नहीं है। वह मंदिर में इस समय तो है, परंतु कुछ ठीक नहीं, कब कुंजरसिंह के साथ भाग जाय।"

नवाब ज़रा चौंका कहने लगा--"क्या यह बात है? रामदयाल, तुम सच कह रहे हो? यदि बात सच है, तो क्या हिंदुओं का यह सिर्फ़ ढकोसला ही है?"

रामदयाल ने जवाब दिया--"बिलकुल। मैंने अपनी आँखों से उन लोगों को देखा है, और कान से उनका प्रेम-संभाषण सुना है।"

अलीमर्दान थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा।

रामदयाल से पूछा--"कुंजरसिंह का देवीसिंह के साथ मेल हो गया है?"

उसने उत्तर दिया--"मेल तो मैंने नहीं सुना, और न होने की कोई संभावना है। कुंजरसिंह को तब तक और बिराटा की गढ़ी में रहा समझिए, जब तक कुमुद उसके साथ नहीं भागी है। पीछे फिर चाहे देवीसिंह से या किसी से लड़े या न लड़े।"

थोड़ी देर के लिये अलीमर्दान फिर सोच-विचार में पड़ गया।

कुछ देर में बोला--"तुम्हारी यह इच्छा है कि मैं बिराटा की तरफ़ तुरंत कूच करूँ।"

हाथ जोड़कर रामदयाल ने उत्तर दिया--"हुज़ूर, मेरी क्या, आपकी राखीबंद बहन रानी साहब की भी यही प्रार्थना है।"

अलीमर्दान ने बड़ी चेतनता के साथ कहा--"अभी तैयारी होती है। तुम चलो। आता हूँ। कुंजरसिंह को भी सज़ा देनी है, और उस अहमक़ सबदल को भी सबक़ सिखलाना है। दो तीन दिन में ही यह सब काम निबट जायगा। मैं पहले बिराटा को देखूँगा।"

रामदयाल चलने लगा।

चलते-चलते उससे अलीमर्दान बोला—"मेरे आने तक इतना प्रबंध ज़रूर हो जाय, जिसमें बिराटा का कोई भी व्यक्ति बाहर न निकल जाने पावे।"

रामदयाल ने चालाकी से, आँख का कोना बारीकी के साथ दबाकर, कहा—"हो गया है। यदि कोई कसर होगी, तो मिटा दी जायगी। आप बिलकुल विश्वास रक्खें।"

अलीमर्दान हँसकर बोला—"इनाम पाओगे—ऐसा कि तुमने स्वप्न में भी कल्पना न की होगी।"

रामदयाल प्रणाम करके चलने लगा।

नवाब ने कहा—"पहले हम रामनगर नहीं आएँगे। जब तक हम न आ जायँ, मुक़ाबला करते रहना।"

अलीमर्दान ने अपने सब सरदारों को इकट्ठा करके संपूर्ण सेना को जल्दी-से-जल्दी तैयार किया। भांडेर में थोड़ी-सी सेना छोड़कर बाक़ी सेना लेकर वह पहर रात गए चल पड़ा। सालोन भरौली में, जो भांडेर के क़रीब ४-५ मील पर है, सेना को थोड़ा-सा विश्राम करने के लिये रोक लिया। प्रातःकाल होने के पहले बिराटा पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया गया था।

(७५)

जिस रात अलीमर्दान की सेना ने सालोन भरौली में डेरा डाला, उस रात बिराटा के राजा ने अपने भाई-बंदों को इकट्ठा करके लड़ाई की तैयारी की। बाहर निकलकर नवाब की सेना से सफलतापूर्वक लड़ना बिराटा की सेना के लिये बहुत कठिन था, परंतु उसे अपने जंगलों, पहाड़ों और 'माई बेतवा' की धार का बड़ा भरोसा था। और, फिर यह कोई पहली ही चढ़ाई नहीं थी।

मुख्य-मुख्य लोगों की बैठक हुई। सबको विश्वास था कि देवीसिंह समय पर सहायता देंगे। सब जानते थे कि देवीसिंह पालर की ओर से आ रहे हैं, परंतु सबको शंका थी कि यदि नवाब की सेना बीच में आ पड़ी, तो राजा की सेना का इस ओर आना बहुत कठिन हो जायगा। और, यदि नवाब ने एक दस्ता बिराटा को नष्ट करने के लिये भेज दिया, और उसी समय रामनगर से आक्रमण हो गया, तो भयंकर समस्या उपस्थित हो जायगी।

इन सब बातों पर विचार हुआ। अधिकांश लोगों में लड़ाई का उत्साह था। सबदलसिंह संयत भाषा में बोल रहा था, परंतु दृढ़ता-पूर्ण निश्चय से भरा हुआ था।

अंत में कुमुद के बिराटा में बने रहने के विषय में प्रश्न उपस्थित हुआ। अधिकांश लोगों की धारणा हुई कि कुमुद को किसी दूसरे स्थान पर भेज देना चाहिए। सबदलसिंह अपने निर्धार से न डिगा। उसने कहा—"मैं फिर यही कहूँगा कि उनके यहाँ बने रहने में ही हम लोगों की कुशल है। उन्हें यहाँ से हटाओ, तो मूर्ति को हटाओ, मंदिर को हटाओ।"

अंत में निश्चय हुआ, जैसा ऐसे अवसरों पर निश्चय हुआ करता है, अभी कुमुद यहीं बनी रहें, परंतु कुअवसर आते ही तुरंत उस पार, किसी सुरक्षित स्थान में, पहुँचा दी जायँ।

कुंजरसिंह वहीं था—सभा में नहीं, सभा से दूर मंदिर में। परंतु उसका बिराटा में होना सबदलसिंह को मालूम हो गया था। और लोगों ने इच्छा प्रकट की कि कुंजरसिंह को हटा दिया जाय।

नरपति बोला—"परंतु वह कहते हैं कि हम दुर्गा की रक्षा करते-करते अपना प्राण देंगे, हमें किसी के राजपाट से कुछ सरोकार नहीं। उन्होंने शपथ-पूर्वक कहा है कि हम देवीसिंह के साथ नहीं लड़ेंगे।"

सबदल ने कहा—"यह तो ठीक है, परंतु जब देवीसिंह को मालूम होगा कि कुंजरसिंह हमारे यहाँ आश्रय पाए हुए हैं, तब हमारी बात पर से उनका विश्वास उठ जायगा, और वह अपना हाथ हमसे खींच लेंगे।"

नरपति बोला—"तब जैसा आप चाहें, करें; परंतु वह अपनी शरण में हैं, और यह स्मरण रखना चाहिए कि राजकुमार हैं। किसी के भी सब दिन एक-से नहीं रहते। उन्होंने शपथ ली है कि हमें किसी के राजपाट से कोई सरोकार नहीं।"

सबदल ने अपनी सम्मति बदलते हुए कहा—"वह हमारे और देवीसिंह राजा, दोनो के समान शत्रु से लड़ने में सहायक होंगे। सुना है, तोप अच्छी चलाते हैं। मंदिर में बना रहने देंगे। वहाँ से वह तोप चलावेंगे। कोई हर्ज़ नहीं।"

लोगों में इस बात पर बहस हुई कि कहीं नवाब से मिल न जायँ। नरपति बोला—"यह असंभव है। मैं उन्हें बहुत दिन से जानता हूँ। वह पालर में नवाब की सेना से लड़े थे। बड़े विकट योद्धा हैं।"

"परंतु वह" सबदल ने कहा—"नवाब के साथ मिलकर देवीसिंह के ख़िलाफ़ भी लड़ चुके हैं।" सबदल के मन में फिर संदेह जाग्रत् हुआ।

नरपति सोच में पड़ गया। वह सिंहगढ़ की सब बातें न जानता था। कुछ क्षण बाद बोला—"कुमुद देवी विश्वास दिलाती हैं कि कुंजरसिंह कभी दग़ा न करेंगे। छल उन्हें छू नहीं गया है। वह तोप चलाने का काम बहुत अच्छा जानते हैं।"

अंत में यह तय हुआ कि कुंजरसिंह को गढ़ से न हटाया जाय, परंतु कोई विशेष महत्त्व का कार्य उन्हें न दिया जाय।

(८६)

अलीमर्दान की सेना ने बिराटा को और दलीपनगर की सेना ने रामनगर को अपना लक्ष्य बनाया। लोचनसिंह भांडेर पर धावा करना चाहता था, परंतु देवीसिंह की स्पष्ट आज्ञा थी कि भांडेर पर आक्रमण करके कठिनाइयों को न बढ़ाया जाय। यह प्रपंच लोचनसिंह की समझ में अच्छी तरह न आता था कि भांडेर की सेना हमारे ऊपर तो आक्रमण करे, और हम शत्रु के राज्य के बाहर से उसका विरोध करें, परंतु उसके घर में घुसकर मार न करें। इसका समाधान लोचनसिंह को इस प्रकार मिला कि दिल्ली का बादशाह इस भाँति की लड़ाई को आत्मरक्षा समझकर तरह दे देगा, परंतु शाही सूबे में घुसकर मार-काट करने को चिनौती का रूप दे डालेगा। इस कल्पना को वह आत्मप्रवंचना कहता था, परंतु राजा की आज्ञा होने के कारण वह उसका प्रतीकार न कर सकता था। निदान उसे भी अपना ध्यान बिराटा-रामनगर की ही ओर दौड़ाना पड़ा।

उधर अलीमर्दान ने सालोन भरौली से शीघ्र कूच कर दिया। तोपें वह बहुत कम साथ ला सका था। बिराटा में प्रवेश करने की उसने पूरी चेष्टा की, परंतु मुसावली के पास दलीपनगर के कई दस्तों के साथ मुठभेड़ हो गई। संधि के पूर्व पत्र-व्यवहार की किसी पक्ष को चिंता न रही। इस मुठभेड़ में दोनो दलों को अनचाहे स्थानों पर मोर्चाबंदी करनी पड़ी। अलीमर्दान की सेना धनुष के आकार में नदी के किनारे-किनारे रामनगर के नीचे तक भरकों में फैल गई। दलीपनगर की सेना रामनगर और बिराटा को हस्तगत करने के प्रयत्न में इस मोर्चेबंदी का प्रतीकार करने में प्रथम से ही विवश हुई। न तो अलीमर्दान रामनगर की टुकड़ी से मिल पाता था, और न दलीपनगर की

सेना बिराटा में पहुँच पाती थी। रामनगर के गढ़ से बिराटा और देवीसिंह के मोर्चों पर गोला-बारी की जा रही थी, परंतु इतनी शिथिलता और अनजानपने के साथ कि वह बहुत कम हानि पहुँचा रही थी। उधर बिराटा की सेना को अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण अधिक सुबीता था, परंतु अलीमर्दान की रोक-थाम के सिवा वहाँ के भी गोलंदाज़ और अधिक कुछ नहीं कर पा रहे थे। परंतु दलीपनगर की तोपें रामनगर की गढ़ी को ढीला कर देने में कोई कसर नहीं लगा रही थीं।

जब कभी एक दल दूसरे पर खुल्लमखुल्ला टूटकर इस या उस गढ़ को हथियाने की कोशिश करता था, तभी भीषण मार-काट हो पड़ती थी, और आक्रमण करनेवाले दल को पीछे हटना पड़ता था।

इस तरह लड़ते-लड़ते कई दिन हो गए। देवीसिंह को चिंता हुई। मंत्रणा के लिये एक दिन राजा, जनार्दन, लोचनसिंह और कुछ और सरदार बैठे।

जनार्दन ने कहा—"यदि अलीमर्दान के पास और कुमुक आ गई, या बादशाह ने हम लोगों को बाग़ी समझकर दिल्ली से कोई बड़ा दस्ता भेज दिया, तो बड़ी कठिनाई होगी। युद्ध खिंच गया है, कौन जाने, क्या होगा।"

लोचनसिंह बोला "होगा क्या, आप अपने घर में बैठकर जप-तप करना, हम अपनी निबट लेंगे।"

"इन बातों से काम न चलेगा, लोचनसिंह।" राजा ने कहा—"इस समय हम यह निश्चय कर रहे हैं कि शीघ्र क्या करना चाहिए।"

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'मेरी समझ में तो यह आता है कि इधर-उधर की हाथापाई छोड़कर भांडेर पर ज़ोर का हल्ला बोल दिया जाय, तो अलीमर्दान को लेने के देने पड़ जायँगे।"

"यह तो नहीं हो सकता।" जनार्दन ने कहा।

"राजनीति इस समय ऐसा करने से रोकती है।" देवीसिंह बोला।

राजनीति अर्थात् शर्माजी महाराज जब जैसा हम लोगों को बतलावें।" लोचनसिंह ने कहा।

राजा देवीसिंह ने नियंत्रण करने के ढंग पर कहा—"नहीं, मैं भी इसे ठीक समझता हूँ, चामुंडराय। भांडेर हमारे दृष्टिकोण से इस समय परे है।"

"तब या तो इसी तरह युद्ध को लस्टम-पस्टम चलने दीजिए, या घर लौट चलिए।" लोचनसिंह बोला।

लोचनसिंह को इस गंभीर सम्मति पर कुछ क्षण तक किसी ने कुछ न कहा।

लोचनसिंह तुरंत बोला—"मुझे महाराज जो आज्ञा दें, उसके लिये तैयार हूँ, परंतु केवल राजनीति-विशारदों से लड़ाई के दाँव-पेंच सीखने का उत्साह मेरे भीतर नहीं है। उस सेना का भार, जिसका संचालन शर्माजी कर रहे हैं, किसी और को दीजिए, तब—"

राजा ने कहा—"तुम्हें आपे से बाहर हो जाने की बहुत आदत पड़ गई है।"

"अब बोलूँ, तो जीभ काट लीजिएगा। कहिए, तो यहाँ से अपने डेरे पर चला जाऊँ।" लोचनसिंह ने विना क्रोध के कहा।

कुछ देर के लिये सन्नाटा छा गया। ऐसा जान पड़ा, मानो लोचनसिंह के अलक्ष्य आतंक को आस-पास के वायु-मंडल ने भी सोख लिया हो।

राजा देवीसिंह ने स्नेह और दृढ़ता के ढंग से कहा—"चामुंडराय, कल तुम्हारी शूरता और विलक्षण स्फूर्ति की फिर परीक्षा है।"

लोचनसिंह बोला—"क्या आज्ञा है ?"

"कल रामनगर की गढ़ी में हम लोग प्रवेश कर लें।" राजा ने कहा। शब्दों की झंकार सब लोगों के कानों में समा गई।

लोचनसिंह की आँखों से चिनगारी-सी छूटी। बोला—"आज्ञा का पालन होगा, परंतु दो शर्तें हैं।"

राजा ने कहा "तुमने चामुंडराय, कभी आज तक वीरता-निदर्शन में शर्त नहीं लगाई। आज नई बात कैसी ? परंतु ख़ैर, मैं वचन देता हूँ, रामनगर की गढ़ी और आस-पास का इलाक़ा तुम्हारा होगा।"

लोचनसिंह हँसा, ऐसा कि पहले शायद ही कभी इस तरह हँसते देखा गया हो। फिर गंभीर होकर अवहेलना के साथ बोला—"रामनगर की गढ़ी और मेरे पास जो कुछ है, वह सब मैं उसे दे दूँगा, जो अलीमर्दान की फ़ौज को चीरकर बिराटा में कल पहुँच जाय। महाराज, मेरी इस भाँति की शर्त नहीं है।"

"फिर क्या है ?" जनार्दन ने सकपकाकर और ख़ुशामद की दृष्टि से पूछा।

"पहली तो यह" लोचनसिंह ने उत्तर दिया—"कि सैन्य-संचालन का काम आपके हाथ में न रहे, और दूसरी यह कि मैं यदि मारा जाऊँ, तो मेरी लाश की मिट्टी बिगड़ने न पावे, उसकी खोज करके शास्त्र के अनुसार दाह किया जाय। नदी में न फेका जाय, और न किसी गड्ढे में डाला जाय।"

"स्वीकृत है।" राजा ने प्रसन्न होकर कहा—"जनार्दन मेरे साथ रहेंगे। मैं अब इनके दस्ते का संचालन करूँगा। परंतु जागीर देने की मेरी शर्त भी मान्य रहेगी।"

लोचनसिंह उत्तेजित होकर बोला—"तब मैंने जो कुछ कहा है, वह भी मान्य रहेगा, क्योंकि रामनगर को विजय करने के बाद यों

भी मैं ही उसका स्वामी होऊँगा। केवल राजा न होने के कारण ही उसे आपके हाथों अर्पण करके फिर ले लेना कोई बड़े महत्त्व की बात न होगी।"

राजा ने कुछ नहीं कहा। बात उड़ाने के लिये केवल हँस दिया।

जनार्दन के जी में कुछ खटक गया था। परंतु वह भी बरबस मुस्किराने लगा। उस मुस्किराहट ने लोचनसिंह को किंचित् भी कुंठित नहीं किया। जनार्दन अपनी दुर्दशा छिपाने के लिये छटपटाने लगा।

उपयुक्त अवसर पाकर बोला—"मैं इनकी लाश को तलाश करके शास्त्रोक्त अंत्येष्टि क्रिया करने का प्रण करता हूँ। इन्हें वास्तव में और कुछ चाहिए भी नहीं।"

रामनगर पर करारा धावा करने की बात तय हुई।

---

(७७)

बिराटा की रक्षा दृढ़ता के साथ हो रही थी। दाँगियों ने अपने स्थान को बचाने के लिये प्राणों की होड़ लगा रक्खी थी। गढ़ी के भीतर आदमी बहुत अधिक न थे। तोपें भी थोड़ी ही थीं। तोपों के चलानेवाले भी चतुर न थे। परंतु उन लोगों में मर मिटने की लगन थी, और विश्वास था कि देवी उनकी सहायता पर हैं।

नदी के पश्चिम-तटवर्ती भरकों से अलीमर्दान की सेना बिराटा की गढ़ी पर आक्रमण करती थी, परंतु बेतवा की धार उसे विफल-मनोरथ कर देती थी। असल में देवीसिंह की सेना की चपेट के कारण अलीमर्दान को बिराटा के पीस डालने का अवकाश न मिल पाता था, नहीं तो बिराटा के थोड़े-से बहादुर दाँगी बहुत देर तक नहीं टिक सकते थे।

बिराटा-युद्ध में कुंजरसिंह को अब तक कोई स्थान न मिल सका

था। सबदलसिंह की यह धारणा थी कि कुंजरसिंह को हरावल में या कहीं पर भी कोई मुख्य पद देने से देवीसिंह का विमुख हो जाना संभव है। ऐसी दशा में उसे मंदिर की रक्षा के काम पर नियुक्त कर दिया। कुंजरसिंह को बिराटा से निकाल भगाना असंभव था। सबदलसिंह को विश्वास था कि उसे वहाँ केवल बने रहने देने में देवीसिंह अप्रसन्न न होंगे।

कुंजरसिंह हथियार लिए हुए मंदिर में बना रहता था। जब कभी पड़े-पड़े मन ऊब उठता था, तब मंदिर की प्राचीर के पास बेतवा की धारा को टकटकी लगाकर देखने लगता था। कुमुद, गोमती और नरपति रात-दिन मंदिर के उत्तरवाले खंड के निचले स्थान में नीचे की एक खोह में, बने रहते थे। प्रातःकाल, दुर्गा-पूजन के निमित्त, थोड़ी देर के लिये, मंदिर में आते थे। कुमुद से बातचीत करने का और कोई अवसर न मिलता था, अथवा कुंजर बात करने के लिये कोई उपयुक्त अवसर न ढूँढ़ पाता था।

एक दिन कुंजर ने रामदयाल को मंदिर के पास अचानक देखा। चकित हो गया। खासा कड़ा पहरा होते हुए भी कैसे प्रवेश पा गया? उसकी पहली इच्छा यही हुई कि तलवार के एक वार से समाप्त कर दें, परंतु रामदयाल मुस्किराता हुआ उसी की ओर बढ़ा। कुंजरसिंह अपनी इच्छा पूरी करने में हिचक गया।

रामदयाल ने कहा—"राजा मुझे शायद अपना शत्रु समझते हैं। संभव है राजा की कल्पना सही हो।"

कुंजरसिंह इस बेधड़क मंतव्य पर क्षुब्ध हो गया, और किंकर्तव्य-विमूढ़।

रामदयाल ने और पास आकर कहा—"परंतु आप और मैं समान भाव से इस गढ़ी की रक्षा के आकांक्षी हैं। मैं अब महारानी की सेवा में नहीं हूँ। राजा देवीसिंह का संदेशा लाया हूँ।"

"रानी को किस दलदल में फँसाकर चले आए हो ?" कुंजर ने कठोरता के साथ प्रश्न किया ।

"मैंने किसी को दलदल में नहीं फँसाया है ।" रामदयाल ने ठंडक के साथ उत्तर दिया—"मैं ख़ुद उनके पीछे बहुत बरबाद हुआ हूँ । बहुत मारा-मारा फिरा हूँ । उनका मुझ पर भी विश्वास नहीं रहा, तब निकाल दिया । मैं राजा देवीसिंह की शरण में गया । उन्होंने क्षमा-प्रदान करके अपना लिया है, और यहाँ भेजा है । राजा देवीसिंह के नाते से आप भले ही मुझे अपना वैरी समझें, परंतु मैं आपके वैर के योग्य नहीं हूँ ।"

कुंजरसिंह ने एक क्षण सोचा । रामदयाल की बात पर उसे ज़रा भी विश्वास न हुआ, परंतु उसे मार डालने की इच्छा में अनेक विघ्न दिखलाई दिए ।

पूछा—"क्या संदेशा लाए हो ?"

उत्तर मिला—"यदि क्षमा किया जाऊँ, तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरा संदेशा यहाँ के राजा सबदलसिंह के लिये ही है ।"

कुंजरसिंह का जी जल गया । बोला—"तब चलो उनके पास । मैं साथ चलता हूँ ।"

"किसी को भेजकर उन्हें यहीं बुलवा लीजिए । सबके सामने जाने से संदेश के रहस्य के खुलकर फैल जाने का भय है ।" रामदयाल ने कहा ।

पास ही एक तोप लगी हुई थी । गोलंदाज़ और कई सैनिक वहाँ नियुक्त थे । ज़रूरी काम के नाम से कुंजर ने एक सैनिक को बुलाकर कहा—"यह मनुष्य शत्रु या मित्र-पक्ष का है । अभी निश्चय नहीं हो सकता कि किस श्रेणी में इसे समझा जाय । राजा से कुछ बात करना चाहता है । उन्हें तुरंत यहाँ भेज दो । मैं इस पर तब तक पहरा लगाए हूँ ।"

रामदयाल गमनोद्यत सिपाही से बोला—"राजा से कह देना कि मैं यहीं पर वध कर दिया जाऊँ, यदि शत्रु-पक्ष का निकलूँ, या यदि मेरी बात उपयोगी सिद्ध न हो।"

थोड़ी देर में वह सैनिक सबदलसिंह को लेकर आ गया। राजा ने उतावली में पूछा—"क्या बात है?"

वह बोला—"क्या मैं राजा कुंजरसिंह के सामने कह सकता हूँ? राजा देवीसिंह का संदेशा है।"

कुंजरसिंह ने झुँझलाकर बीच में ही कहा—"मैं जब बिराटा का शुभाकांक्षी हूँ, तब जो बिराटा के मित्र हैं, वे मेरे मित्र हैं, और जो उसके शत्रु हैं, वे मेरे शत्रु।"

सबदलसिंह बोला—"तुम अपना संवाद सुनाओ।"

रामदयाल ने कहा—"कल बड़े ज़ोर का आक्रमण आपकी गढ़ी पर होगा—अलीमर्दान की सेना का। उसका ध्यान बटाने के लिये हमारे महाराज रामनगर पर बड़े ज़ोर का हल्ला बोलेंगे। आप तोपों की बाढ़ का पक्का बंदोबस्त रक्खें।"

"और?" सबदलसिंह ने पूछा।

"और," रामदयाल ने उत्तर दिया—"और संवाद उन्होंने अपनी भविष्य रानी के लिये भेजा है।"

सबदलसिंह ने गोमती के साथ होनेवाले देवीसिंह के संबंध की चर्चा सुन रक्खी थी। फिर भी प्रश्न-सूचक दृष्टि से वह रामदयाल की ओर और फिर तुरंत कुंजरसिंह की ओर देखने लगा।

रामदयाल ने असंदिग्ध भाव से कहा—"यदि आज्ञा हो, तो उनसे ही कह दूँ, और विश्वास न हो, तो आपको बतला दूँ।"

सबदलसिंह बोला—"नहीं, वह संवाद मेरे कानों के योग्य नहीं हो सकता। तुम अकेले में कह सकते हो। परंतु दो दिन तक तुम इस स्थान को न छोड़ सकोगे।"

रामदयाल मुस्किराकर बोला—"मेरे लिये महाराज की आज्ञा भी यही है। अगले दो दिन बड़ी कठिन अवस्था के होंगे। मेरा उनके पास रहना ज़रूरी है।"

अकेले में ले जाकर सबदलसिंह से कुंजर ने कहा "यह आदमी बड़ा नीच और भयंकर है। अपनी गढ़ी में इसका ऐसे समय आना मुझे बड़े अशुभ का द्योतक मालूम होता है।"

सबदलसिंह बोला—"आपको राजा देवीसिंह के किसी मनुष्य की, कम-से-कम वर्तमान समय में, बुराई नहीं करनी चाहिए। आप मेरे अतिथि हैं, और मान्य हैं, परंतु यह बात आपको ध्यान में रखनी पड़ेगी कि राजा देवीसिंह हम लोगों के परम सहायक हैं। मुझे इस बात की चिंता है कि मिलने पर कहीं आपके लिये मुझे उत्तर न देना पड़े। यदि मान लिया जाय कि यह मनुष्य देवीसिंह का नहीं है, तो मैंने इसे कुछ समय तक रुके रहने के लिये कह ही दिया है। आप भी सावधानी के साथ इस पर अपनी दृष्टि रक्खें।"

(७८)

बिराटा में मंदिर की बग़ल में, उत्तर-पश्चिम की ओर, एक बड़ी टोर के नीचे, एक खोह थी। उसी जगह कुमुद, गोमती और नरपति इन दिनों अपना अधिकांश समय बिताते थे। रामदयाल वहीं पहुँचा। गोमती रामदयाल को देखकर प्रसन्न हुई। दिन-रात सिवा कुमुद और नरपति के साथ के और कोई तीसरा व्यक्ति उपलब्ध न था। दिन-रात सिवा गोला-बारी, मार-काट, हाय-हाय और कुमुद तथा नरपति की वही बँधी हुई बातों के और कुछ सुनने को कई दिन से नहीं मिला था।

देखते ही रामदयाल के पास आई। बोली—"कब आए? कैसे आए? क्या समाचार लाए हो?"

रामदयाल ने कहा—"अभी आ रहा हूँ, बड़ी कठिनाइयों को पार करके। एक बार तो ऐसा जान पड़ा कि अलीमर्दान की तोप मेरी छोटी-सी नाव को चकनाचूर किए देती है। अँधेरे में एक किनारे से नाव लेकर चला था, परंतु धीरे-धीरे सूर्योदय तक यहाँ आ पाया हूँ।"

गोमती की आँखों में कृतज्ञता झलक आई। कहा—"क्यों प्राणों को इतने संकट में डाला ?"

रामदयाल गोमती को ज़रा दूर ले जाकर, एक चट्टान के पास, बातचीत करने लगा।

गोमती बोली—"तुम महाराज के बड़े आज्ञाकारी सैनिक हो।"

"नहीं हूँ," उसने कहा—"मैं आपका आज्ञाकारी सैनिक हूँ।'

"क्या समाचार है ?"

"कहा है, अभी मिलना न होगा। बिराटा पहुँचने पर इतना समय न मिल सकेगा कि बातचीत भी हो सके। जब लड़ाई समाप्त हो जायगी, दलीपनगर का राज्य निष्कंटक हो जायगा, महाराज का कहीं कोई वैरी न रहेगा, तब आप रथ में या किसी और सवारी पर दलीपनगर चली आवें।"

"क्या महाराज ने यह सब कहा है ?"

"मैं झूठ बोलने के लिये इतनी आफ़तों में क्यों अपनी जान डालता ?"

गोमती ने दाँत पीसे। कुछ क्षण बाद बोली—"इतनी बात कहने के लिये उन्होंने तुम्हें यहाँ तक पहुँचाया ? क्या वह रामनगर में आ गए हैं ?"

रामदयाल ने उत्तर दिया—"अभी रामनगर अधिकार में नहीं आया है।"

रूद्ध स्वर में गोमती ने पूछा—"क्या मुझे चिढ़ाने और तुम्हारा प्राण लेने के लिये ही तुम्हें यहाँ भेजा है ?"

रामदयाल ने नीची निगाह किए हुए कहा—"एक रहस्य की बात है। इस गढ़ी में यदि किसी को मालूम हो जायगा, तो शायद मैं बकरे की तरह काट डाला जाऊँ।"

गोमती बोली—"तुम कहो रामदयाल। जो जी में आवे, सो कहो। मैं ठाकुर की बेटी हूँ। कोई उस रहस्य को मुझसे न पा सकेगा।"

"मुझे महाराज ने निकाल दिया है। राजाओं का कभी किसी को विश्वास न करना चाहिए।"

"तुम्हें निकाल दिया है ! क्यों ?"

"क्योंकि मैंने हठ-पूर्वक कहा था कि बिराटा पर संकटों की बौछार हो रही है। भगवान् न करें, महारानी का कोई बाल बाँका हो जाय, इसीलिये मुझे अनुमति दीजिए कि बिराटा से दलीपनगर लिवा ले जाऊँ। बोले, मैं राजा हूँ, वह मेरे योग्य नहीं है; किसी राजा की लड़की के साथ विवाह करूँगा।"

गोमती सिहर उठी।

बोली—"फिर तुम यहाँ किसलिये आए ?"

रामदयाल ज़रा सहमा। परंतु उसकी प्रकृत ढिठाई ने उक्त भाव को तुरंत दबा दिया। कहने लगा—"मैं जिस लिये गोलों और आग की लपटों के इस तूफ़ान में होता हुआ यहाँ तक आया हूँ, उसका कारण स्पष्ट है। महाराज ने निकाल दिया, मेरा अब और कोई कहीं भी संसार में नहीं है। 'आगे नाथ, न पीछे पगहा।' अब तो मैंने निश्चय किया है कि अपना शेष जीवन धूनी रमाकर बिताऊँ।"

गोमती ने दूसरी ओर देखते हुए कहा—"महाराज ने यह भी कहा था कि जब संपूर्ण राज्य निष्कंटक हो जाय, तब मैं किसी का रथ

माँगकर दलीपनगर में रहने के लिये दो हाथ ठौर की भीख माँगने जाऊँ ।"

वह बोला—"इस तरह की बात तो उन्होंने तब कही थी, जब मैंने बहुत हठ पकड़ा था। उसी हठ में दुर्भाग्य-वश मैं आपे से बाहर हो गया। बहुत बक-झक की, तब महाराज ने मुझे अपने पास से हटाकर ही दम लिया। मैं उनके हुकुम से यहाँ नहीं आया हूँ। अपनी ही प्रेरणा से उपस्थित हुआ हूँ। यहाँ मुझ पर संदेह किया गया है। दो दिन तक एक तरह से यहाँ नज़र-क़ैद हूँ। इस बीच में इस गढ़ीवालों को आशा है कि महाराज ससैन्य आ जायँगे, और तब शायद या तो मुझे प्राण-दंड दिया जायगा, या कम-से-कम सदा के लिये देश-निकाला।"

गोमती तमककर बोली—"ऐसा कभी न होगा रामदयाल। जब तक मेरी देह में प्राण हैं, तब तक तुम्हें हानि न पहुँच सकेगी। तुम हम लोगों के साथ इसी खोह में रहो। काफ़ी बड़ी है। बाहर कभी-कभी गोला-गोली पड़ जाती है।"

"परंतु एक बात का ध्यान रहे," रामदयाल ने आग्रह के साथ कहा—"किसी तरह भी किसी को यह बात न मालूम होने पावे कि महाराज ने मुझे निकाल दिया है। यहाँ मुझे लोग राजा का सेवक समझते हैं।"

---

(७९)

रात का समय था। काली रात। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। पवन ने पेड़ों को चूम-चूमकर सुला-सा दिया था। बेतवा अचेत पत्थरों से निरंतर टकराकर, अनंत कलकल शब्द रच-रचकर रह-रह जाती थी।

कुंजरसिंह मंदिर की दीवार के पास, एकटोर की आड़ में, जहाँ से

नदी की धार रामनगर की ओर से आई है, कंधे से बंदूक़ लगाए अकेला बैठा था। उत्साह था, हृदय में अपूर्व बल प्रतीत होता था— मंदिर की रक्षा के लिये, मंदिर की विभूति के लिये। दिन को गोलियाँ पास से निकल जाती थीं, गोले धम से आकर धूल और कंकड़ों को बखेर देते थे। एक छोटी-सी जगह उस युद्ध में सबदलसिंह ने दे रक्खी थी, उसी को उस राजकुमार ने बहुत समझा। मुस्तैदी से अपने स्थान पर डटा रहता था। केवल प्रातःकाल मंदिर में दर्शन के लिये जाता था, और एक आध बार दिन में भी नरपति की कुशल-क्षेम पूछने को गुफा पर पहुँच जाता था। वह टोर, जहाँ एक कंबल और लोटा लेकर कुंजर सशस्त्र डटा रहता था, उसके लिये तीर्थ-स्थान-सी हो उठी थी।

परंतु उस रात मन बेचैन था। रामदयाल पिशाच है। उसकी पैशाचिकता को सबदलसिंह नहीं समझता। गोमती उसे बिलकुल नहीं पहचानती। वह क्यों आया है? अवश्य अलीमर्दान का भेदी है। निस्संदेह कुछ उत्पात खड़ा करेगा, शायद बिराटा को ध्वस्त कराने की चिंता में हो। कुमुद इस युद्ध का लक्ष्य है। देवीसिंह बचाने के लिये आ रहा है। देवीसिंह ने, जिसने मुफ़्त में दलीप-नगर के राज्य को खसोट लिया है, मेरे हक़ को पैरों-तले कुचल डाला है! यदि इस समय मैं दलीपनगर का राजा होता, तो देवी-सिंह की अपेक्षा कहीं अधिक प्रबलता और चतुरता के साथ युद्ध करता। राजा नायकसिंह के वीर्य से उत्पन्न एक हाथ भूमि के लिये जंगलों में मारा-मारा भटके, और देवीसिंह दलीपनगर की सेनाओं का संचालन करे! यथेष्ठ हथियार चलाने के लिये एक सड़े-से सरदार सबदलसिंह का मुँह ताकना पड़े!

रामदयाल क्यों आया? वह रामदयाल, जो राजा नायकसिंह की वासनाओं की तृप्ति के लिये खुल्लमखुल्ला साधन जुटाया करता

था, वही जो देवीसिंह का शत्रु है, और साथ ही बिराटा के सब लोगों का—और अवश्य ही बिराटा-निवासिनी कुमुद का भी।

कहीं कुमुद की गुफा के पास कोई जाल तो नहीं रचा जा रहा है? रामदयाल वहीं ठहरा है। क्यों वहाँ ठहरने दिया गया? वह यहाँ आया ही क्यों? इस स्थान को रामदयाल से किस प्रकार निस्तार मिले?

यह कुंजर की शक्ति के बाहर की बात थी। "परंतु" उसने सोचा—"मैं इसके कुचक्रों का निवारण कर सकता हूँ। करूँगा।" फिर अपनी तोपों की ओर ध्यान गया। जिस प्रयोजन से वे वहाँ स्थित थीं, और वह स्वयं उस स्थान पर जिस धारणा को लेकर गड़ा-सा था, उस ओर भी ध्यान गया।

उस समय प्रतिकूल पक्ष की तोपें बिराटा की दिशा में विरक्त-सी थीं।

कुंजरसिंह दबे पाँव गुफा की ओर गया।

गुफा में निविड़ अंधकार था। पत्थर से सटकर कुंजर ने कान लगाया। उस तमोराशि में केवल कुछ साँसों का शब्द सुनाई पड़ता था।

निद्रा ने षड्यंत्रों पर भी अपना अधिकार कर लिया था।

इसी गुफा में वह देवी थी। कल्याण और रूप, स्निग्धता और लावण्य, वरदान और प्रेरणा की वह निधि उस कठोर गुफा के भीतर!

कुंजर और अधिक नहीं ठहरा। उसका कर्तव्य इस निधि की रक्षा के साथ संबद्ध था। लौट आया। मन में कहा—"क्या देवी को किसी का कोई स्वप्न भी कभी आता होगा?"

(८०)

दलीपनगर और भांडेर की सेनाएँ एक दूसरे पर, विना बड़ा जन-संहार किए हुए, तोपें और बंदूकें दागती रहती थीं। इक्के-दुक्के सैनिक लड़-भिड़ जाते थे, कभी-कभी छोटी-छोटी टोलियों की मुठ-भेड़ भी हो जाती थी। परंतु सौ-पचास हाथ भूमि इधर या उधर, इससे अधिक जय या पराजय किसी पक्ष को भी प्राप्त न हो पाती थी।

इधर-उधर के बड़े-बड़े नाले दोनो दलों की स्वाभाविक सीमा-से बन गए थे, जब-तब भरकों में मार-काट हो जाती थी। बीच के मैदानों से गोले और गोलियाँ भनभनाती निकल जाती थीं।

इस प्रकार के युद्ध से लोचनसिंह का जी ऊबने लगा। खुले मैदान में युद्ध ठानने का उसने कई बार मंतव्य प्रकट किया, परंतु राजा देवीसिंह की दूरदर्शिता के प्रतिवाद ने लोचनसिंह की न चलने दी।

आज अकस्मात् राजा, जनार्दन शर्मा, लोचनसिंह इत्यादि मुसा-वली के निकटवर्ती नाले में इकट्ठे हो गए।

आगे क्या करना चाहिए, इस पर सलाह होने लगी।

लोचनसिंह ने कहा—"यहीं गड़े-गड़े मरना तो अब बिलकुल अच्छा नहीं लगता। हथियार विना चलाए ही कदाचित् किसी दिन टें हो जाना पड़े।"

"तब क्या किया जाय?" जनार्दन ने धीरे से पूछा।

"अलीमर्दान की सेना पर तीर की तरह टूट पड़ना चाहिए।" लोचनसिंह ने उत्तर दिया।

"और तीर की तरह छूट निकलकर कमान को ख़ाली कर देना चाहिए।"

राजा देवीसिंह ने व्यंग्य किया।

"जैसी मर्ज़ी हो।" लोचनसिंह ने कुढ़कर कहा—"लड़ाई के बहाने भड़-भड़ करते रहिए; जब अलीमर्दान की सेना दुगुनी-चौगुनी हो जाय, तब घर चले चलिए।"

देवीसिंह का थका हुआ चेहरा लाल हो गया। सोचने लगा। एक पल बाद बोला—"आज रात तक रामनगर पर अपना झंडा फहरा सकोगे?"

लोचनसिंह उत्तर देने में ज़रा-सा हिचका।

देवीसिंह—"मौत के बदले रामनगर मिलेगा, लोचनसिंह!"

"मैं तैयार हूँ।" लोचनसिंह ने दृढ़ता के साथ कहा।

जनार्दन ज़रा कसे हुए स्वर में बोला—"और आपके सरदार?"

इस थपेड़ की परवा किए विना ही लोचनसिंह ने कहा—"मेरे साथी सरदार कुछ करने या मरने के लिये बहुत उतावले हो रहे हैं, परंतु—"

जनार्दन—"परंतु आज ही आपके मुँह से सुना।"

जनार्दन पर आँखें तानकर लोचनसिंह बोला "आप रामनगर विजय करिए, महाराज से रामनगर की जागीर आपको मैं बरबस दिलवा दूँगा।"

जनार्दन भी उत्तेजित होकर कुछ कहना ही चाहता था कि देवीसिंह ने कहा—"मेरा एक मंतव्य है।"

जनार्दन—"महाराज।"

लोचनसिंह—"क्या मर्ज़ी है?"

देवीसिंह—"रामनगर पर शीघ्र अधिकार करने के लिये बढ़ना यमराज को न्योतने के बराबर है, परंतु अलीमर्दान पर धावा बोलने की अपेक्षा यह भी कहीं ज़्यादा अच्छा है। रामनगर का गढ़ और तोपें हाथ में कर लेने के उपरांत अलीमर्दान से खुली मुठभेड़ करना सरल हो जायगा।"

एक क्षण सोचकर राजा ने कहा—"लोचनसिंह, तुम्हें अंत्येष्टि-क्रिया की पवित्र आवश्यकता में बहुत विश्वास है ?"

लोचनसिंह नहीं समझा। देवीसिंह बोला—"मरने जाओगे, तो कफ़न भी साथ लेते जाओगे, या नहीं ?"

लोचनसिंह मुस्किराया। उसके झुर्रीदार चेहरे पर सौंदर्य की रेखाएँ छा गईं। बोला—"महाराज ने बहुत सूझ की बात कही। हम लोग जितने आदमी रामनगर की ओर आज बढ़ेंगे, सब अपने-अपने सिर पर कफ़न बाँधेंगे। वाह ! क्या वेश रहेगा ! कोई देखे, तो कहेगा कि मौत से लड़ने के लिये यमदूत जा रहे हैं।"

राजा ने कहा—"जो आज रात को रामनगर विजय करेगा, वह उसे जागीर में पाएगा।"

इसके बाद इन लोगों ने अपनी योजना तैयार की।

---

(८१)

दूसरे दिन संध्या के पूर्व नित्य-जैसी लड़ाई होती रही। लोचनसिंह जितने मनुष्यों को रामनगर पर आक्रमण के लिये चाहता था, उतने उसे मिल गए। उनके चेहरे पर उत्साह था या नहीं, यह अँधेरे में नहीं दिखलाई पड़ रहा था, परंतु मन के रोकने पर भी कुछ बात कहने के लिये वे उतावले-से जान पड़ते थे—परस्पर कोई करारी दिल्लगी करने के लिये सन्नद्ध-से। बिलकुल पास से देखनेवाला जान सकता था कि वे लोचनसिंह के साथ होने पर भी फुसफुसाहट में ठठोली कर रहे थे, और मुस्किराते भी थे।

नदी के किनारे-किनारे विना पहचान जाना असंभव था। इसलिये अपने भरके की सीध से कभी तैरकर और कभी भूमि पर रामनगर तक चुपचाप जाना लोचनसिंह ने तय किया। रामनगर के नीचे पहुँचकर फिर आक्रमण करना था, या मौत के मुँह में धँसना।

लोचनसिंह ने नदी में उतरने के लिये कपड़े कसे। पैर डालने नहीं पाया था कि समीप खड़े हुए एक सिपाही ने स्वर दबाकर कहा—"दाऊजू, और कपड़े चाहे भीग जायँ, परंतु सिर से बँधा हुआ कफ़न न भीगने पावे।"

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—"भीगे हुए कफ़न से तो मुक्ति और भी जल्दी मिलेगी। पर अब फुसफुसाहट मत करो।"

लोचनसिंह पानी में जाने से पहले कुछ सोचने लगा। उसी स्वर में वह सैनिक बोला—"दाऊजू, देखते क्या हो, कूद पड़ो।"

लोचनसिंह ने कहा—"जो कुछ देखना है, वह रामनगर में देखूँगा। यहाँ देखने को रक्खा ही क्या है। नदी का तैरना शूरता का काम नहीं, केवल बल का काम है।"

सिपाही कुछ और कहना चाहता था, परंतु लोचनसिंह पानी में सरक गया, और सिपाही भी पीछे हो गए।

नदी के बहाव में अँधेरी रात को तैरना वीरता का भी काम था, और ख़ास तौर से उस समय, जब किनारों पर शत्रु बंदूक़ें भरे धायँ धायँ कर रहे थे।

घोर परिश्रम के पश्चात् रामनगर से कुछ दूरी पर सब-के-सब पहुँच गए। वहाँ पानी चट्टानों में होकर आया है। धार तेज़ बहती है। विजय-प्राप्ति के लिये सुरक्षित स्थान में इकट्ठा होना आवश्यक था। परंतु इस स्थान पर प्रकृति को पराजित करना सहज न था। यह टुकड़ी तितर-बितर होकर, इधर-उधर चट्टानों पर बैठकर दम लेने लगी।

थोड़े समय पश्चात्, किसी पूर्व-निर्णय के अनुसार दलीपनगर की सेना की ओर से रामनगर के ऊपर असाधारण रीति से गोला-बारी शुरू हो गई। लोचनसिंह को अपने निकट एक ऊँची चट्टान दिखलाई दी, जो चढ़ाव खाती हुई रामनगर के क़िले की दीवार के नीचे तक

चली गई थी। परंतु बीच में तेज़ धारवाला पानी पड़ता था, और साथी इधर-उधर बिखरे हुए थे।

लोचनसिंह ने आवाज़ दबाकर कहा—"पीछे-पीछे आओ।"

इस बात को किसी ने न सुन पाया।

तब और ज़ोर से बोला—"इस ओर आओ।"

इस पुकार को उसके साथियों ने सुन लिया, और पास ही एक चट्टान से अटकी हुई डोंगी में चुपचाप पड़े हुए किसी व्यक्ति ने भी।

'धायँ-धायँ' की आवाज़ें आगे-पीछे जल्दी-जल्दी हुईं। तेज़ बहती हुई धार पर गोलियाँ छर्रं हो गईं। लोचनसिंह पानी में कूद पड़ा, परंतु नाव के पास पहुँचने में धार बार-बार विघ्न उपस्थित करने लगी। डोंगी के भीतर से बंदूक़ों के पुनः भरे जाने का शब्द आने लगा। लोचनसिंह को आभास हुआ कि अब की बार बचना असंभव होगा। वह धार के ख़िलाफ़ बहुत बल लगाने लगा, और धार भी उसे ज़ोर से झटके देने लगी। हाँफता हुआ लोचनसिंह ज़ोर से चिल्लाया—"क्या सब मर गए?"

पास की चट्टान से टकराते हुए पानी को चीरते हुए आकर एक व्यक्ति ने स्पष्ट कहा—"अभी तो सिर का कफ़न गीला भी नहीं हुआ है।"

"शाबाश!" लोचनसिंह बोला—"कौन?"

उत्तर मिला—"बुँदेला।"

इस उत्तर से लोचनसिंह की तृप्ति नहीं हुई।

वह सिपाही किसी दृढ़ता में इतराता हुआ-सा, उस धार को पार करके, नाव के पास जा पहुँचा। लोचनसिंह ने भी दुगुना बल लगा दिया। वह भी नाव के नीचे जा लगा। पीछे से और सिपाहियों के आने की भी आवाज़ मालूम हुई। जो सिपाही पहले आया था, उसने नाव पर चढ़ने की चेष्टा की।

नाव के भीतर से किसी ने बंदूक़ की नाल से उसे ढकेल

दिया। वह नीचे गिर पड़ा, और थोड़ा-सा बह गया ; तब तक लोचनसिंह आ धमका। उसके साथ भी वही क्रिया की गई। क्रिया सफल हुई। लोचनसिंह भी नीचे धसक गया। इतने में वह सैनिक फिर आ गया, और नाव पर चढ़ गया। लोचनसिंह और उसके अन्य सिपाही भी कुछ ही समय पीछे नाव में जा घुसे। नाव में रामनगर के छ-सात सैनिक थे, परंतु दो के सिवा और सब सो रहे थे। दूर की तोपों और पास की बंदूक़ों के शब्दों से वे थके-थकाए जाग न सके थे। परंतु नवागंतुकों के धँस पड़ने से रस्सों से बँधी हुई नाव डगमगा उठी, इसलिये थर्रा उठे। किसी अज्ञात संकट में अपने को फँसा हुआ समझकर और असाधारण शब्दों से घबराकर भाग उठे। इधर-उधर उछल-उछलकर गिरने लगे। दो सिपाही जो बंदूक़ें लिए तैयार थे, चला न पाए। लोचनसिंह ने उन्हें तलवार से असमर्थ कर दिया। लोचनसिंह और उसके सिपाहियों ने नाव में जितनी बंदूक़ें मिलीं, ले लीं, और अपने पास की पिस्तौलें पोछ-पाँछकर भर लीं। बोंड़े सुलगाकर और उन्हें भली भाँति छिपाकर क़िले की ओर आड़े लेती हुई यह टुकड़ी बढ़ी। ऊपर से तोपें आग उगलक दलीपनगर की सेना को जवाब देने लगी थीं। कभी-कभी आग की चादर-सी तन जाती थी।

आगे चलकर उस बातूनी सैनिक ने लोचनसिंह से कहा—"अब क्या करोगे दाऊजू ?"

"फाटक पर गोलियों की बाढ़ दागो।" लोचनसिंह ने आज्ञा के स्वर में उत्तर दिया।

वह सैनिक विना किसी झिझक के बोला—"फाटक पर बाढ़ दागने की अपेक्षा उस पर ज़ोर का हल्ला बोलना अच्छा होगा।"

लोचनसिंह ने कड़ुवे कंठ से कहा—"यह ग़लत कार्रवाई होगी। जो कहता हूँ, सो करो।"

वह सैनिक बोला—"सो तो यों ही कफ़न सिर से बाँधकर चले हैं।"

लोचनसिंह ने कलेजा कोंचनेवाली कोई बात कहनी चाही, परंतु केवल इतना ही मुँह से निकला—"अच्छा, तो तुम अकेले फाटक पर जाकर कुछ चिल्लाओ।"

वह सैनिक बिना कुछ कहे-सुने तुरंत फाटक की ओर दीवार के किनारे-किनारे बढ़ गया।

और सैनिकों ने कहा—"हमें भी वहीं जाकर मरने की आज्ञा हो।"

लोचनसिंह ज़रा सहमा। मौत की छाती पर सवार सैनिकों की इस बात के भीतर किसी उलहने की छाया देखकर वह ज़रा-सा लज्जित भी हुआ। बोला—"हम सब वहीं चल रहे हैं।"

इतने में वह वाचाल सैनिक फाटक के पास पहुँच गया। तोपों की उस धूमधाम में, आवाज़ को ख़ूब ऊँचा करके, वह चिल्लाया—"खोलो, हम आ गए।"

फाटक पर रामनगर की सेना के जो योद्धा थे, वे घबराए। घबराकर इधर-उधर बंदूक़ें दाग हड़बड़ाहट में पड़ गए। उसी समय लोचनसिंह और उसके साथियों ने फाटक के पास आकर ज़ोर का शोर-गुल किया। कुछ बंदूक़ें भी दागीं।

भीतर के सिपाही फाटक छोड़कर भीतर की ओर हटे। लोचनसिंह और उसके साथी कमंद की सीढ़ी लगाकर दीवार पर चढ़ गए।

भीतर घमासान होने लगा। बंदूक़-तमंचे कड़कने और तलवारें खनकने लगीं। रामनगरवालों को अँधेरे में यह न जान पड़ा कि दूसरी ओर के कितने सैनिक धँस आए हैं। फाटक खुल गया, और रामनगर की सेना में भगदड़ मच गई। छोटी रानी लड़ती हुई फाटक से निकल गईं।

दलीपनगर की सेना ने ज़ोर के साथ जय-जयकार किया।

रामनगर में बहुत कम लड़ाके भागने से बचे। जो नहीं भागे थे, उन्होंने हथियार डाल दिए। लोचनसिंह की सेना के भी कई आदमी मारे गए, और अधिकांश घायल हो गए, परंतु अपने अदम्य उत्साह और विजय-हर्ष में घावों की पीड़ा बहुत कम को जान पड़ी। उक्त बातूनी सिपाही ने लोचनसिंह से कहा—"दाऊजू, फाटक बंद कर लीजिए, अपनी सेना को जय-जयकार सुनाकर बुलाइए, नहीं तो यह विजय अकारथ जायगी।"

लोचनसिंह बिना रोष के बोला—"तुम्हारा नाम?"

उत्तर मिला—"कफ़नसिंह बुँदेला।"

लोचनसिंह ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। फाटक बंद करवाकर देवीसिंह का जय-जयकार कराता रहा। दलीपनगर की सेना का घेरा रामनगर की बाहरवाली सेना और अलीमर्दानवाले दस्ते ने छोड़ दिया, और दोनो टुकड़ियाँ दूर हट गईं। दलीपनगर की सेना ने रामनगर के गढ़ पर अधिकार कर लिया। उस अँधेरी रात में यह किसी को न मालूम हो पाया कि देवीसिंह ने कब और कहाँ से गढ़ में प्रवेश किया।

देवीसिंह के आ जाने पर गढ़ की ढूँढ़-खोज की गई। छोटी रानी तो निकल गई थीं, पर बड़ी रानी मिल गईं। उन्हें क़ैद कर लिया गया।

---

(८२)

रामनगर के पतन के बाद पतराखन ने राजा देवीसिंह का अधिकार स्वीकृत कर लिया, परंतु राजा ने उसे रामनगर में ससैन्य रहने का अवसर नहीं दिया। बेतवा के पूर्वीय किनारे पर ही पूर्ववत् रहने को कहा, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर उसकी सेना का उपयोग किया जा सके।

बड़ी रानी को अपनी मूर्खता पर बड़ा पछतावा था, परंतु उनके पछतावे की मात्रा का कोई लिहाज़ किए बिना ही राजा ने क्षमा दे दी। दृष्टि ज़रूर उन पर काफ़ी रक्खी। रानी ने इस नज़रबंदी को ही बहुत ग़नीमत समझा।

विजय की रात्रि के बाद ही जो सबेरे रामनगर में राजा के सरदारों की बैठक हुई, उसमें सभी लोग राजा की इस उदारता पर मन में रुष्ट थे। छोटी रानी का ज़िक्र आने पर लोचनसिंह ने कहा—"महाराज यदि अपराधियों को दंड न देंगे, तो विजय-पर-विजय बेकार होती चली जायगी।"

जनार्दन अवसर पाकर मुस्किराया। बोला—"दाऊजू, यह प्रश्न सेनापति के लिये नहीं है, इसे तो राजनीतिज्ञ ही सुलझा सकते हैं।"

लोचनसिंह को किसी बहस का स्मरण हो आया। बराबरी के घाव मारने और खानेवाले सिपाही ने रामनगर-विजय के उल्लास में इस बात का बुरा न माना।

ज़रा-सा मुस्किराकर उसने कहा—"यह चोट! अच्छा, ख़ैर, कभी देखा जायगा।"

फिर राजा से बोला—"रामनगर की जागीर कब और किसे दी जायगी? अब इस प्रश्न पर भी विचार कर लिया जाय।"

जनार्दन तुरंत बोला—"चामुंडराय लोचनसिंह के सिवा उसे और कौन पाएगा? महाराज ने उसी समय तय कर दिया था। कुछ और निर्णय उसके विषय में नहीं करना है। मुझे तो चिंता छोटी रानी की है। उन्हें तुरंत क़ैद करने की आवश्यकता है। उनके स्वतंत्र रहने से बहुत-से सरदार चल-विचल हो जाते हैं, और अलीमर्दान को उनकी ओट में अपना काम बनाने का सुबीता रहता है।" फिर राजा के मुख की ओर निश्चयात्मक दृष्टि से देखने लगा।

राजा ने कहा—"छोटी रानी को जो कोई क़ैद कर लावेगा, उसे दो सहस्र मुहरें इनाम दी जायँगी। यह घोषणा विस्तार के साथ कर दी जाय।"

जनार्दन ख़ुशी के मारे उछल पड़ा। बोला—"सौ मुहरें महाराज के दीन ब्राह्मण जनार्दन की ओर से भी दी जायँगी।"

"उस सूचना के साथ-साथ" लोचनसिंह ने मुस्किराते हुए, कड़ुवेपन के साथ, पूछा—"यह भी ज़ाहिर किया जायगा या नहीं कि रानी चुपचाप गिरफ़्तार हो जायँ, क्योंकि पकड़ने के बाद उन्हें छोड़ दिया जायगा?"

राजा हँस पड़ा।

एक क्षण बाद बोला—"रामनगर की जागीर का सिरोपाव चामुंडराय लोचनसिंह को इसी समय दे दिया जाय शर्माजी।"

लोचनसिंह ने बारीक आह लेकर कहा—"यदि मुझे मिल सकती होती, तो पहले ही कह चुका हूँ कि मैं महाराज को लौटा देता; परंतु वह मुझे नहीं मिलना चाहिए।"

"क्यों?" राजा ने ज़रा विस्मय के साथ पूछा।

उत्तर मिला—"इसलिये कि मैंने रामनगर नहीं जीता।"

"तब किसने जीता?" जनार्दन ने प्रश्न किया।

राजा से लोचनसिंह ने कहा—"उसका संपूर्ण श्रेय मेरे एक सैनिक को है। खेद है, रात के क़ारण उसका नाम नहीं पूछ पाया। वह जीवित अवश्य है, परंतु अँधेरे में न-मालूम कहाँ चला गया। उसकी खोज करवाई जानी चाहिए; मर गया हो, तो उसके घर में जो कोई हो, उसे यह जागीर दे दी जाय।"

राजा ने सहज रीति से सम्मति प्रकट की—"यदि सबकी सम्मति हो, तो मैं यह चाहता हूँ कि रामनगर का कुछ भाग पतराखन के

पास रहने दिया जाय। अब वह शरणागत हुआ है, इसलिये बिलकुल बेदख़ल न किया जाय।"

लोचनसिंह ने ज़रा निरपेक्ष भाव से कहा—"हमारे उस सैनिक का पता महाराज पहले लगवावें, तब रामनगर का कोई एक टुकड़ा पतराखन को या और किसी को दें।"

राजा बिना उत्तेजना के बोला—"लोचनसिंह, तुम्हें उस सिपाही ने कुछ तो अपना नाम बतलाया होगा?"

"बतलाया था महाराज," लोचनसिंह ने उत्तर दिया—"परंतु वह नाम बनावटी जान पड़ता है। कहता था, मेरा नाम कफ़नसिंह बुँदेला है।"

"विचित्र नाम है।" राजा ने मुस्किराकर, ज़रा आश्चर्य के साथ, कहा—"तुम्हारी सेना में क्या सब योद्धा इसी तरह के बेतुके नाम रखते हैं?"

लोचनसिंह गंभीर होकर बोला—"यदि मेरी सेना में सब सैनिक उस कफ़नसिंह-सरीखे हों, तो आपको घर-घर चामुंडराई की उपाधि बाँटनी पड़े।"

राजा ने पूछा—"क्या तुम उसका स्वर पहचान सकते हो?"

लोचनसिंह ने ज़रा लज्जित होकर उत्तर दिया—"शायद न पहचान पाऊँगा। ऐसी जल्दी में सब काम हुआ, और बातचीत हुई कि याद रखना कठिन है।"

"वाह रे सेनापति!" राजा ने हँसकर चुटकी ली।

लोचनसिंह का मस्तक लाल हो गया। बोला—"सेनापति को सैनिकों के स्वर याद रखने की आवश्यकता नहीं।"

राजा ने तुरंत स्वर बदलकर कहा—"कफ़नसिंह बुँदेला।"

लोचनसिंह का क्रोध घोर विस्मय में परिवर्तित हो गया। क्षीण स्वर में बोला—"यही स्वर सुना था।"

"महाराज का !" जनार्दन ने आश्चर्य के साथ कहा।

देवीसिंह खूब हँसकर बोला—"महाराज का नहीं, कफ़नसिंह बुँदेला का।"

लोचनसिंह सँभल गया। गंभीर होकर बोला—"तब आप जागीर चाहे जिसे दे सकते हैं।"

"तीन चौथाई लोचनसिंह को और एक चौथाई पतराखन को, यदि वह स्वामिभक्त बना रहा, तो।"

---

(८३)

अपनी सेना के प्रधान भाग से राजा देवीसिंह का संबंध रामनगर में स्थापित हो गया था, परंतु बिराटा की इससे मुक्ति नहीं हुई। अलीमर्दान की सेना की कमान रामनगर के पास से खिंचकर बिराटा की ओर और अधिक सिमट आई। अपनी ओर अलीमर्दान की सेना को और अधिक सिमटा हुआ देखकर राजा सबदलसिंह ने समझा, दलीपनगर की सेना पीछे हट गई है। सेना छोटी थी। मुट्ठी-भर दाँगी इतनी बड़ी फ़ौज का सामना कर रहे थे—अपनी बान पर न्योछावर होने के लिये। तोपें थोड़ी थीं, साहस बहुत।

कुंजरसिंह तोप के काम में बहुत कुशल था। यद्यपि सबदलसिंह ने राजा देवीसिंह के भय के कारण कुंजरसिंह को छोटा-सा ही पद दे रक्खा था, तथापि अपनी दिलेरी और चतुरता के कारण बहुत थोड़े समय में उसे तोपची से सभी तोपों के नायक का पद मिल गया। तोपों के नायक को, उसके बाद ही, सेना की विश्वासपात्रता सहज ही प्राप्त हो गई। वह बिराटा के काग़ज़ों में सेनापति नहीं था, परंतु वास्तव में था, और सैनिकों के हृदय में उसके शौर्य ने स्थान कर लिया था।

रामनगर-विजय के दूसरे दिन, संध्या के समय, राजा देवीसिंह ने

नाव द्वारा बिराटा जाने का निश्चय किया। अलीमर्दान से आँख बचाने के लिये एक छोटी-सी नाव में थोड़े-से आदमी ले लिए, और लोचनसिंह, जनार्दन इत्यादि से जाते समय कह गए कि आधी रात के पहले लौट आएँगे।

बेतवा का पूर्वीय तट, पतराखन के शरणागत हो जाने के कारण, निस्संकट हो गया था, इसलिये उसी ओर से अँधेरे में देवीसिंह अपनी नाव बिराटा ले गया, और जहाँ मंदिर के पीछे पश्चिम से पूर्व की ओर पठारी धीरे-धीरे ढालू होते-होते जल में समा गई है, वहीं नाव लगा ली।

अपने सिपाहियों में से दो को साथ लेकर देवीसिंह अनुमान से मंदिर की ओर बढ़ा।

वहीं एक तोप लगी हुई थी। कुंजरसिंह पास खड़ा था, परंतु राजा असाधारण मार्ग से होकर आया था। इसलिये जब तक बिलकुल पास न आ गया, कुंजरसिंह को मालूम न हुआ।

जब देवीसिंह पास आ गया, कुंजर ने ललकारा, और तलवार खींचकर दौड़ा।

देवीसिंह ने शांत, परंतु गंभीर स्वर में कहा—"मैं हूँ दलीपनगर का राजा देवीसिंह।"

कुंजरसिंह ने वार नहीं किया, परंतु पास के सैनिकों को सावधान करके देवीसिंह के पास आगे बढ़ गया।

कंपित स्वर में बोला—"इस अँधेरे में आपके यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी?"

अब की बार देवीसिंह के अकचकाने की बारी आई। बोला—"तुम कौन?"

"मैं हूँ कुंजरसिंह। महाराज नायकसिंह का कुमार।"

"आप...। तुम यहाँ कैसे?"

इस संबोधन की अवज्ञा कुंजरसिंह के हृदय में चुभ गई। देवीसिंह से कहा—"क्षत्रिय अपनी तलावर की नोक से अपने लिये संसार में कहीं भी ठौर बना लेता है।"

"आपको बिराटा का शत्रु समझा जाय या मित्र ?"

"जैसी आपकी इच्छा हो।"

"सबदलसिंह कहाँ हैं ?"

"गढ़ी की रक्षा कर रहे हैं।"

"मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।"

"किसलिये ?"

"रामनगर हमारे हाथ में आ गया है। बिराटा के उद्धार के लिये, सुबीता होते ही, हम शीघ्र आते हैं, तब तक अलीमर्दान का निरोध दृढ़ता के साथ करते रहें, इस बात को बतलाने के लिये।"

"यह संदेशा उनके पास यथावत् पहुँचा दिया जायगा।"

देवसिंह ने क्षुब्ध होकर कहा—"आप यदि इस गढ़ी में मित्र के रूप में न होते, तो आप जिस पद के वास्तव में अधिकारी हैं, वह आपको तुरंत दे दिया जाता।"

कुंजरसिंह ने अपनी तोप और सुलगते हुए पहले बोंड़े की ओर, फिर रामनगर की ओर देखा। एक बार मन में आया कि सैनिकों को आज्ञा देकर आगंतुकों को क़ैद कर लूँ, और तोपों के मुँह से रामनगर पर गोले उगलवा दूँ, परंतु कुछ सोचकर रह गया।

बोला—"इसका ठीक उत्तर यहाँ देना मेरे लिये असंभव हो रहा है, परंतु कभी उत्तर दूँगा अवश्य।"

देवीसिंह ने कहा—"मुझे इस समय इस व्यर्थ विवाद के लिये अवकाश नहीं; यदि आप सबदलसिंह को स्वयं बुला सकते हों, तो बुला लाइए, नहीं तो इन सैनिकों में से कोई उनके पास चला जाय, और कह दे कि दलीपनगर के महाराज बड़ी देर से खड़े बाट जोह रहे हैं।"

कुंजरसिंह ने दाँत पीसे, परंतु बड़े संयम के साथ अपने सैनिकों से कहा—"एक आदमी राजा के पास जाओ। जो कुछ इन्होंने कहा है, उन्हें सुना देना। इनसे मुलाक़ात मंदिर में होगी। चार आदमी इन्हें लेकर मंदिर में बिठलाओ।"

इस पर एक सैनिक सबदलसिंह के पास गया, और चार देवीसिंह और उनके साथियों को मंदिर में ले गए। उस समय कुंजरसिंह ने बड़े क्षोभ और क्रोध की दृष्टि से उन लोगों की ओर देखा।

मन में बोला—"इस भुक्खड़ भिखारी के दिमाग़ में इतना घमंड! दलीपनगर के महाराज! महाराज नायकसिंह के दलीपनगर का अधिकारी यह चोर! चाहे जो हो, यदि इसके टुकड़े-टुकड़े न किए, तो मनुष्य नहीं।"

एक सैनिक ने कुंजरसिंह से अपनी अपार सावधानी जताने के लिये कहा—"यह शायद देवीसिंह न हों। नवाब के आदमी ही वेश बदलकर आए हों।"

विना मुँह खोले हुए कुंजरसिंह बोला—"हूँ।"

सिपाही कहता गया—"मंदिर को कहीं ये लोग अपवित्र न कर दें। देवी, देवी की पुजारिन—"

कुंजरसिंह ने जाग्रत्-सा होकर कहा—"तुमने कैसे अनुमान किया?"

"मैं ख़ूब जानता हूँ।" वह बोला—"ये लोग मूर्तियाँ तोड़ डालते हैं, स्त्रियों को ज़बरदस्ती पकड़ ले जाते हैं। उसके साथ दो आदमी भी हैं। नाव में बैठकर आए होंगे। पठारी के नीचे नाव लगी होगी। उसमें और आदमी भी होंगे।"

तमककर कुंजरसिंह ने कहा—"और हमारे सिपाही क्या उन लोगों के ग़ुलाम हैं, जो उन्हें उत्पात करने देंगे?"

वह सैनिक ज़रा सहम गया। परंतु ढिठाई के साथ बोला—"हम लोग तो अपने प्राणों की होड़ लगा ही रहे हैं, परंतु कोई अनहोनी न हो जाय, इसीलिये कहा। शायद उसके पास और आदमी किसी दूसरी ओर से भी आजायँ।"

कुंजरसिंह ने सोचा—"कहीं देवीसिंह नरपतिसिंह इत्यादि को रामनगर न लिवा ले जाय। शायद गोमती को लिवाने आया हो, और उसके साथ उन लोगों से भी चलने के लिये कहे।"

कुंजरसिंह ने और अधिक नहीं सोचा। सैनिक से कहा—"तुम तोप पर डटे खड़े रहो। मैं देखता हूँ, वहाँ क्या होता है। राजा सबदलसिंह मंदिर में थोड़ी देर में आते होंगे। वहाँ मेरी उपस्थिति आवश्यक होगी।"

फिर मन में बोला—"देवीसिंह ने रामनगर को विजय कर लिया! मेरी तोपों के भाग्य में यह पराक्रम न लिखा था। अब देवीसिंह और अधिक शक्तिशाली हो गया। जनार्दन को प्रपंच रचने के लिये और भी अधिक साधन सुलभ हो जायँगे, और मुझे किसी और भी अधिक सघन जंगल की राह लेनी पड़ेगी। कुमुद का क्या होगा? संसार की विपत्तियों से उसे कौन बचाएगा? नरपतिसिंह के बाहुओं में इतना बल नहीं है। सबदलसिंह देवीसिंह का एक तरह आश्रित होकर रहेगा।" फिर निश्चय के साथ, होठों को दबाकर, उसने व्यक्त रूप से कहा—"देखूँगा।"

थोड़ी देर में वह मंदिर के द्वार पर पहुँच गया। वहाँ पहरे पर सिपाही थे। जो चार आदमी कुंजरसिंह ने देवीसिंह के साथ किए थे, वे भी पहरेवाले सिपाहियों के पास रह गए।

भीतर कुछ बातचीत हो रही थी। कुंजरसिंह ने सोचा, वहीं चलकर सुनूँ। पहरेवाले सिपाही से पूछा, सबदलसिंह आ गए या नहीं। मालूम हुआ, अभी नहीं आए हैं। कुंजरसिंह और आगे

बढ़ा। अभी कुमुद इत्यादि मंदिर को छोड़कर अपनी खोह में नहीं गई थीं, परंतु आँगन में अंधकार छाया हुआ था। केवल मूर्ति के पास घी का एक छोटा-सा दीपक टिमटिमा रहा था। उसी जगह बातचीत हो रही थी।

कुंजरसिंह पहले तो ठिठका, फिर सोचा, सबदलसिंह के आने तक बातचीत सुनने के लिये आगे न बढ़ूँ। परंतु उसने यह विचार शीघ्र बदल दिया। मन में कहा—"देवीसिंह-सरीखा आदमी इन लोगों से क्या बातचीत करता है, उसे छिपकर सुनने में कोई दोष नहीं।"

उसके शूर हृदय ने इस तरह के दरिद्र प्रयत्न के करने से उसे एकआध बार रोका भी, परंतु अंत में उसका पहला निश्चय ही ऊपर रहा।

ज़रा आगे बढ़कर एक कोने में छिपे-छिपे कुंजरसिंह वहाँ की बातचीत सुनने लगा।

---

(८४)

देवीसिंह अपने साथ भेजे गए चारो सिपाहियों को पहरेवालों के पास छोड़कर, अपने दोनो सैनिकों को लिए हुए, मंदिर में चला गया। मूर्ति के पास दीपक टिमटिमाता हुआ देखकर आगे बढ़ा। जब निकट पहुँच गया, सबसे पहले नरपतिसिंह मिला।

उसने अकचकाकर पूछा—"आप लोग कौन हैं?"

देवीसिंह ने उत्तर दिया—"तुम लोगों के मित्र।"

देवीसिंह बैठने के लिये उपयुक्त स्थान देखने लगा।

नरपति एक क्षण चुप रहकर ज़रा ज़ोर से बोला—"आपका नाम?"

"थोड़ी देर में अपने आप प्रकट हो जायगा।" देवीसिंह ने ज़रा बेतकल्लुफ़ी के साथ कहा।

इतने में रामदयाल आ गया।

पहले उसे संदेह हुआ, फिर सोचा, असंभव है। विश्वास को दृढ़ करने के लिये ज़रा और आगे बढ़ा।

पहचानने में बिलंब नहीं हुआ।

तुरंत पीछे हटने की ठानी, परंतु देवीसिंह ने पहचान लिया। बोले—"रामदयाल ?"

"महाराज।" अनायास रामदयाल के मुँह से निकल पड़ा।

उन्होंने कहा—"बड़ा आश्चर्य है। तू यहाँ कैसे आया ? और कौन तेरे साथ है ?"

राजा ने बहुत संयत भाव से प्रश्न किया था, परंतु आत्म-गौरव से प्रेरित प्रश्न का स्वर काफ़ी ऊँचा होकर रहा।

कुमुद रामदयाल के पीछे आकर खड़ी हो गई।

देवीसिंह ने देख लिया, परंतु पहचाना नहीं। तो भी रामदयाल के पीछे एक स्त्री की उपस्थिति कई कारणों से असह्य-सी हुई। ज़रा प्रखर स्वर में पूछा—"जानता है रामदयाल का यह मंदिर है, और मैं—"

"महाराज, महाराज, मैं निरपराध हूँ। मैंने क्या किया है ?"

"तूने जो कुछ किया है, उसका भरपूर पुरस्कार मिलेगा। तेरे-सरीखे नराधम की अपवित्र देह कम-से कम इस देवालय में नहीं आनी चाहिए थी।" फिर देवीसिंह ने स्वर की कर्कशता को कम करके पूछा—"मंदिर की अधिष्ठात्री कहाँ है ?"

रामदयाल सँभलकर बोला—"जिस मंदिर की रक्षा के लिये अन्य हिंदू प्राण हथेली पर रक्खे फिर रहे हैं, उसी की रक्षा के लिये हम लोग भी यहाँ जमा हैं।"

"हम लोग !" देवीसिंह आपे से बाहर होकर बोले—"बदमाश ! नीच ! यहाँ से हटना मत।"

"मैं स्वामिभक्त हूँ," भर्राए हुए गले से रामदयाल बोला—"मैं स्वामिधर्मी हूँ। मुझे केवल मंदिर की अधिष्ठात्री की ही रक्षा अभीष्ट नहीं है, किंतु जिनके एक संकेत-मात्र से मैं अपना सिर घूरे पर काटकर फेक सकता हूँ, उनकी भी रक्षा वांछनीय है। और, यही कुछ दिनों से मेरा अपराध आपकी दृष्टि में रहा है।"

इस समय एक और स्त्री कुमुद के पीछे आकर खड़ी हो गई थी।

रामदयाल ने कनखियों से देख लिया था।

राजा ने तलवार पर हाथ रखकर कहा—"इस मंदिर में कदाचित् नर-बलि कभी नहीं हुई होगी। आज हो।"

कुमुद रामदयाल के पीछे से ज़रा आगे आई - मानो घोर तमिस्रा में एकाएक पूर्ण चंद्र का उदय हुआ हो।

बोली—"यह मंदिर है। इसमें न कभी नर-बलि हुई है, और न कभी होगी।"

तलवार पर से हाथ हटाकर देवीसिंह ने विस्मित होकर प्रश्न किया—"आप कौन हैं?"

"और आप?" बड़ी सरलता के साथ कुमुद ने पूछा। परंतु प्रश्न की नोक देवीसिंह को अपने भीतर धसती-सी जान पड़ी।

प्रश्न का कोई उत्तर न देकर देवीसिंह ने दूसरा प्रश्न किया—"राजा सबदलसिंह का निवास-स्थान क्या यहाँ से बहुत दूर है?"

रामदयाल ने उत्तर दिया—"ज़रा दूर है। मैं बुला लाऊँ? जाता हूँ।"

"नहीं, कदापि नहीं।" देवीसिंह ने कड़ककर कहा—"यहीं खड़ा रह।"

रामदयाल हट नहीं पाया। आधे क्षण उपरांत देवीसिंह ने उसी वेग से फिर पूछा - "वह स्त्री कहाँ है?"

रामदयाल एक दीर्घ निःश्वास परित्याग कर बोला—"वह बेचारी आफ़त की मारी, पद-वंचित और कहाँ होंगी ?"

"क्या ? कहाँ छिपाया है ?"

यहाँ। और जो कुछ मन में हो, सो कर डालिए। चूकिए नहीं।" गोमती ने पीछे से आकर कहा। अंचल के सामने के नीचे छोर पर दोनो हाथ बाँधे गोमती बेधड़क राजा के सामने आकर खड़ी हो गई। देवीसिंह ने गोमती को पहले कभी नहीं देखा था। घटना की आकस्मिकता से वह चकित हो गया। रामदयाल पर आँख अपने आप जा पड़ी। वह शायद पहले से तैयार था।

बोला—"महाराज ने शायद न पहचान पाया हो। परंतु मैं विश्वास दिलाता हूँ कि बहुत दिन कष्ट में बीते हैं। महारानी ने कष्ट में जीवन बिताना अच्छा समझा, परंतु स्वाभिमान-विरुद्ध अपने आप आपके पास जाना उचित नहीं समझा।"

गोमती क्रुद्ध होकर बोली—"रामदयाल, तुम मेरे लिये कुछ भी मत कहो। वह धर्मशास्त्र को बहुत अच्छी तरह जानते हैं। सामंत-धर्म का वीरों की तरह निर्वाह करते हैं। जो कुछ शेष रह गया हो, उसे भी कर डालने दो। मेरे बीच में मत पड़ो—"

रामदयाल ने टोककर कहा—"मेरी लोथ के विषय में महाराज गिद्धों और कौओं को वचन दे ही चुके होंगे। इसलिये उस महा-प्रसंग के उपस्थित होने के पहले एकआध बात मन की कह डालने में कोई और अधिक संकट खड़ा नहीं हो सकता।"

फिर देवीसिंह से बोला—"महाराज को याद होगा कि उस दिन, अभी बहुत समय नहीं हुआ, पालर में किसी के हाथ पीले करने के लिये बारात सजाकर लाए थे। लड़ाई हो पड़ी, घायल हो गए, फिर वे हाथ पीले न हो पाए। अब तक वे ज्यों-के-त्यों हैं,

और ये हैं। केवल ऋतुओं ने उन्हें कुछ कृश भर कर दिया है, परंतु बदले नहीं हैं। ख़ैर, अब मुझे मार डालिए।"

देवीसिंह का हाथ खड्ग पर नहीं गया। छाती पर हाथ बाँधे हुए बोला—"झूठी बात बनाने में इस धरती पर तेरी बराबरी का शायद और कोई न निकलेगा। सच-सच बतला, छोटी रानी को कहाँ छिपाया है? मेरे सामने पहेलियों में बात मत करना, नहीं तो मैं इस स्थान की भी मर्यादा भूल जाऊँगा।"

फिर नरपति की ओर देखते हुए राजा ने कहा—"मैंने आपको अब पहचाना। कुछ समय हुआ, आप मेरे पास गए थे।"

नरपति कुछ देर से कुछ कहने के लिये उकताया-सा हो रहा था। बोला—"बहुत दिन से आपकी इस थाती को हम लोग टिकाए हुए थे। अब आप स्वयं गोमती को लिवाने आ गए हैं, लेते जाइए। सयानी लड़की को अपने घर ही पर रहना अच्छा होता है। इस समय जो कुछ थोड़ी-सी कड़ुआहट पैदा हो गई है, उसे बिसार दीजिएगा।"

"किसे लिवा लेता जाऊँ?" देवीसिंह ने कहा।

"किसे लिवा लेते जायँगे?" गोमती ने तमककर पूछा। बोली—"क्या मैं कोई ढोर-गाय हूँ?"

देवीसिंह ने नरपति से कहा—"मैंने इन्हें आज के पहले के भी नहीं देखा। संभव है, यह पालर की रहनेवाली हों। आपने मुझसे दलीपनगर में कहा था। परंतु मैं इस समय इन्हें कहीं भी लिवा ले जाने में असमर्थ हूँ। लड़ाई हो रही है। तोपें गोले उगल रही हैं। मार-काट मची हुई है। जब शांति स्थापित हो जाय, तब इस प्रश्न पर विचार हो सकता है। मैं इस समय यह जानना चाहता हूँ कि छोटी रानी कहाँ हैं? यहाँ हैं या नहीं?"

कुमुद बोली—"इस नाम की यहाँ कोई नहीं है। मैं दूसरा ही

प्रश्न करना चाहती हूँ। क्या आप समझते हैं कि स्त्रियों में निजत्व की कोई लाज नहीं होती ?"

देवीसिंह ने नरम स्वर में उत्तर दिया—"आप सब लोग मेरे साथ रक्षा के स्थान में चलना चाहें, तो अभी ले चलने को तैयार हूँ, परंतु दूसरे प्रसंग वर्तमान अवस्था के अनुकूल नहीं हैं।"

"मैं नहीं जाऊँगी।" बहुत क्षीण स्वर में गोमती ने कहा। फिर क्षीणतर स्वर में बोली—"दुर्गा मेरी रक्षा करेंगी।" और तुरंत धड़ाम से पृथ्वी पर गिरकर अचेत हो गई। कुमुद उसे सँभालने के लिये उससे लिपट-सी गई।

राजा देवीसिंह यथार्थ दशा समझने के लिये उसकी ओर झुके।

ज़रा दूर से ही कुंजरसिंह सब सुन रहा था। परंतु इस समय दीपक के टिमटिमाते प्रकाश में उसे वास्तविक वस्तु-परिचय न हुआ। इतना ज़रूर भान हुआ कि देवीसिंह किसी भीषण दुर्घटना के ज़िम्मेदार हो रहे हैं।

इतने में रामदयाल चिल्लाया—"सर्वनाश होता है।"

कुंजरसिंह ने तलवार खींच ली। ज़ोर से बोला—"न होने पाएगा।" और लपककर देवीसिंह के पास जा पहुँचा।

देवीसिंह ने भी तलवार खींच ली। उनके साथियों के भी खड्ग बाहर निकल आए।

पहरेवालों ने भी समझा कि कुछ गोलमाल है। वे भी हथियार लेकर भीतर घुस आए।

कुंजर देवीसिंह से बोला—"दुष्ट, छली, सँभल।"

कुमुद गोमती को छोड़कर खड़ी हो गई। परंतु विचलित नहीं हुई। कोमल, किंतु दृढ़ स्वर में बोली—"देवी के मंदिर में रक्त न बहाया जाय।"

देवीसिंह रुका। कुंजरसिंह ने भी वार नहीं किया।

कुमुद ने फिर कहा—"राजा, आपको यह शोभा नहीं देता।"

"मेरा इसमें कोई अपराध नहीं," देवीसिंह बोला—"यह मनुष्य नाहक़ बीच में आ कूदा।"

"देवीसिंह," कुंजर ने दाँत पीसकर कहा—"न-मालूम यहाँ ऐसी कौन-सी शक्ति है, जो मुझे अपनी तलवार तुम्हारी छाती में ठूँसने से रोक रही है। तुम तुरत यहाँ से चले जाओ। बाहर जाओ।"

"जाइए।" कुमुद भी विना किसी क्षोभ के बोली।

देवीसिंह की आँखों में ख़ून-सा आ गया। तो भी स्वर को यथा-संभव संयत करके बोला—"कुंजरसिंह, मैं आज ही तुम्हारा सिर धड़ से अलग करना चाहता था, परंतु यहाँ न कर सका, इसका उस समय तक खेद रहेगा, जब तक तुम्हारा सिर धड़ पर मौजूद है।"

कुंजर ने कहा—"गलियों के भिखारी, छल-प्रपंच करके मेरे पिता के सिंहासन पर जा बैठा है, इसीलिये ऐसी बातें मार रहा है। मंदिर के बाहर चल, और देख ले कि पृथ्वी माता को किसका प्राण भार-समान हो रहा है।"

देवीसिंह गरजकर बोला—"चल बाहर, दासी-पुत्र, चल बाहर। महाराज नायकसिंह के सिंहासन पर शुद्ध बुँदेला ही बैठ सकता है, बाँदियों के जाए उसे छू भी नहीं सकते।"

कुमुद ने कहा—"यहाँ अब और अधिक बातचीत न करिए, अन्यथा देवी के प्रकोप से आपकी बहुत हानि होगी।'

इस निवारण पर भी दोनो दल वहाँ से नहीं हटे। पैंतरे बदल गए, और वहाँ केवल एक क्षण इसलिये गुज़रा कि कौन किस पर किस तरह का वार करे कि नरपतिसिंह ने उस छोटे-से रण-क्षेत्र में बड़ा भारी गोलमाल उपस्थित कर दिया।

वह मंदिर में किसी तरह लड़ाई बंद कर देना चाहता था।

उसके ध्यान में उस क्षण केवल एक उपाय आया। उसने चुपचाप मुँह की फूँक से दीपक बुझा दिया।

प्रकाश के एकाएक तिरोहित हो जाने से मंदिर के भीतर का पूर्व-संचित अंधकार और भी अधिक काला मालूम होने लगा।

कुमुद ने अपने सहज कोमल स्वर से ज़रा बाहर कहा—"कुमार, अपनी रक्षा करो।"

वहाँ कुंजर को या किसी को इस प्रकार के किसी भी संकेत की ज़रूरत न थी।। मारने के लिये उतारू होता है, वह प्रायः मरने के लिये भी तैयार रहता है। परंतु ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े हैं, ।जिन्हें वार कर पाने का रत्ती-भर भी भरोसा न हो, और मारे जाने का सोलहो आने संदेह जान पड़े। इसलिये वे सब अपने बचाव के लिये तलवार भाँजते हुए मंदिर के निकास द्वार के लिये अग्रसर हुए। इतनी हड़बड़ी मची कि अपनी ही ठोकर और अपनी ही तलवार से कई लोग थोड़े-थोड़े-से घायल हो गए। किसी-किसी को दूसरे के भी हथियार के छोभे लग गए, परंतु गंभीर घाव किसी के नहीं लगा।

थोड़े समय में, आगे-पीछे, सब योद्धा निकल गए।

मंदिर के बाहर एक चट्टान के पास देवीसिंह ने खड़े होकर पुकारा—"मेरे सिपाही!"

उत्तर देकर एक-एक करके देवीसिंह के सैनिक उसकी आवाज़ पर आ गए।

कुंजरसिंह मंदिर के बाहर ज़रा पीछे आ पाया था। पहरा ठीक करके वह आगे बढ़ा। उसके साथ उसके सिपाही भी थे। थोड़ी दूर से देवीसिंह की आवाज़ सुनकर कुंजर ने तैश में आकर कहा—"मारो, जाने न पावे।"

उसके साथी सिपाही भी चिल्लाए—"मारो।"

उस अँधेरे में, तारों के प्रकाश में, मार्ग टटोलता हुआ, देवीसिंह पत्थरों और पठारियों की ऊबड़-खाबड़ भूमि लाँघता हुआ नदी की ओर उतर गया। बेतवा की लंबी-चौड़ी धार उस अँधेरे में बहुत स्पष्ट दिखलाई पड़ती थी।

कुंजरसिंह के सिपाहियों ने दूर तक पीछा नहीं किया। परंतु उसके तोपची ने रामनगर की ओर तोप दाग दी। प्रखर प्रकाश और प्रखर-तर शब्द हुआ। उस प्रकाश में देवीसिंह को अपनी बँधी हुई नाव और उस पर बैठे हुए सैनिक स्पष्ट दिखलाई पड़ गए। वह अपने दोनो साथियों को लिए हुए नाव की ओर बढ़ा।

थोड़ी देर में सबदलसिंह मंदिर के पास आया। चिल्लाकर बोला—"कुँवर कुंजरसिंह, यह क्या है? कहाँ हो?"

चिल्लाहट के पैने, किंतु बारीक स्वर में किसी ने मंदिर से कहा—"शत्रुओं का निवारण कर रहे हैं।"

यह स्वर कुमुद का था। सबदलसिंह पहचान नहीं पाया, परंतु समझ गया कि दो में से किसी स्त्री का है, और अवस्था संकटमय है। तोप की ओर जल्दी-जल्दी डग बढ़ाकर उसने फिर कुंजरसिंह को पुकारा।

कुंजरसिंह ने उत्तर दिया, और साथ ही सिपाहियों को ज़ोर से आज्ञा दी—"बचने न पावे। नाव लेकर दूर नहीं गया होगा।"

इस समय देवीसिंह नाव पर पहुँच गए थे। बेतवा के पूर्वीय किनारे की ओर नाव खेते हुए उसी किनारे-किनारे वह रामनगर की ओर चले गए।

कुंजरसिंह के पास पहुँचकर सबदलसिंह ने पूछा—"क्या था कुमार? क्या राजा देवीसिंह आए थे?"

कुंजरसिंह उत्तर नहीं दे पाया। उनके उसी सैनिक ने, जिसने देवीसिंह पर बिराटा-गढ़ी के पास आने के समय ही संदेह किया

था, कहा—"देवीसिंह कैसे हो सकते थे ? मुसलमान लोग हिंदुस्तानी वेश रखकर घुस आए थे। मैंने उसी समय कह दिया था, परंतु कुँवर को विश्वास था कि दलीपनगर के राजा ही हैं। इनके साथ कुछ बातचीत भी हो पड़ी थी। न-मालूम क्यों उसी समय काटकर नहीं डाल दिया ?"

"मुसलमान थे।" सबदलसिंह ने आश्चर्य से कहा—"पठारी का पहरा कमज़ोर हो गया था ?"

"न," वह सिपाही तुरंत बोला—"कुँवर तलवार खींचकर तुरंत दौड़ पड़े थे, और हम लोग सब तैयार थे, परंतु उसके वेश और देवीसिंह की नक़ल के धोखे में आ गए।"

उस सिपाही को अपने मन में इस अन्वेषण पर बड़ा हर्ष हो रहा था। "क्या बात थी ?" सबदलसिंह ने कुंजर से पूछा—"आप चुप क्यों हैं ?"

कुंजर ने उत्तर दिया—"यह सिपाही ठीक कह रहा है। हम लोग धोखे में आ गए थे।"

"तब रामनगर-पतन की बात निरी ग़प थी ?" सबदलसिंह ने रामनगर-गढ़ी की ओर देखते हुए प्रश्न किया—"न-मालूम कब विपद् से छुटकारा मिलेगा ?"

कुंजरसिंह ने बेतवा की दूर बहती धार की ओर देखते हुए उत्तर दिया—"अभी तक हम थोड़े-से आदमियों ने जैसी और जिस तरह से लड़ाई लड़ी है, वह आपसे छिपी नहीं है। अब और घोर—घोरतर—युद्ध होगा, आप विश्वास रक्खें। हमारे गोलंदाज़ आज रात में रामनगर को चकनाचूर कर डालेंगे।"

सबदलसिंह क्षमा-प्रार्थना के स्वर में बोला—"आपके कौशल से ही अब तक हम इने-गिने मनुष्य अपने पैरों पर खड़े हुए हैं।" फिर प्रश्न किया—"बात क्या थी ?"

कुंजरसिंह ने बात बनाने का निश्चय कर लिया था। कहा—

"शायद कोई देवीसिंह का रूप धरकर आया था। मंदिर में गया। मैं भी पीछे-पीछे गया। अपने चार सैनिक उसके साथ भेज दिए थे। वहाँ देखा, वह स्त्रियों से कह रहा है कि हमारे साथ चलो, नाव तैयार है। गोमती से उसने कुछ कहा-सुनी की। वह अचेत होकर गिर पड़ी। मैंने गड़बड़ समझकर तलवार खींची, इतने में हवा से दीपक बुझ गया। इस कारण वह, जो वास्तव में देवीसिंह-सा मालूम होता था, अपने साथियों को लेकर खिसक गया। मैंने पीछा किया, परंतु हाथ न आया।"

सबदलसिंह का इतने से कदाचित् समाधान हो गया। वह अपने स्थान की ओर चला गया।

थोड़ी देर में रामदयाल उसके पास आया। हाथ जोड़कर बोला—"क्या मेरा अपराध क्षमा किया जायगा?"

कुंजर ने थोड़ी देर पहले रामदयाल को शत्रु के रूप में देखा था। उसके जी में रामदयाल के लिये इस समय बहुत घृणा न थी। उसने उत्तर दिया—"और बातें पीछे देखी जायँगी। हम इस समय यह चाहते हैं कि देवीसिंह के इस तरह यहाँ धँस आने का समाचार इधर-उधर न फैलने पावे।"

रामदयाल ने इस प्रस्ताव को समझ लिया। कहा—"उसमें मेरा लाभ ही क्या है? उलटे मुसीबत में पड़ने का डर है।"

"मंदिर में कुशल है?" कुंजर ने पूछा।

मेरे इस समय यहाँ आने का कारण वहीं की बात है।" राम-दयाल ने उत्तर दिया—"गोमती की हालत ख़राब मालूम होती है। आप एक क्षण के लिये चलिए।"

गोलंदाजों को रामनगर पर अनवरत गोले बरसाने का हुक्म देकर कुंजर रामदयाल के साथ चला गया।

---

(८५)

कुंजर के मंदिर में पहुँचने के पहले ही नरपति ने फिर दीपक जला दिया था। जब कुंजर भीतर पहुँचा, वह पूर्ववत् टिमटिमा रहा था। नरपति ने बड़े भोलेपन के साथ कहा—"कभी-कभी ऐसी हवा चल उठती है कि दीपक अपने आप बुझ जाता है। उस समय जब तलवारें खिंच गईं थीं, और पैंतरे बदल गए थे, ऐसा कुसमय प्रकाश लोप हो गया कि आप उन लोगों को काट-कूट न पाए।"

नरपति कुछ और भी पवन की इन आकस्मिक निष्ठुरताओं पर कहता, परंतु कुंजर का ध्यान दूसरी ओर था। इसके सिवा उसे एक ओषधि के लिये रामदयाल के साथ खोह में जाना था, जहाँ वह उसके साथ कुंजर के आने पर चला गया।

कुमुद गोमती का सिर अपनी गोद में रक्खे, टकटकी बाँधे कुंजर की ओर देख रही थी—मानो समय से उसकी प्रतीक्षा कर रही हो।

कुंजर ने बड़े उत्साह, बड़ी उत्कंठा के साथ कुमुद से पूछा—"अवस्था बहुत बुरी तो नहीं है?"

दया के कोमलता-पूर्ण कंठ से कुमुद बोली—"बहुत बुरी तो नहीं जान पड़ती, परंतु कुछ उपचार आवश्यक है।"

अपने को कुछ असमर्थ-सा समझकर कुंजर ने पूछा—"मुझसे जिस उपचार के लिये कहा जाय, तुरंत करने को प्रस्तुत हूँ।"

कुमुद ज़रा मुस्किराकर बोली—"आपकी तलवार की कदाचित् आवश्यकता पड़ेगी। उपचार तो मैं कर लूँगी।"

ज़रा आश्चर्य के साथ, परंतु बहुत संयत स्वर में कुंजर ने कहा—"आज्ञा हो।"

कुमुद के मुख पर एक हलकी लालिमा दौड़ आई। गोमती की ओर आँख फेरकर बोली—"यह दुःखिनी है, और कोमल है।

हम लोगों का कुछ ठीक नहीं, यहाँ क्या हो। शीघ्र अच्छी हो जायगी, परंतु अच्छे होते ही इसे किसी सुरक्षित स्थान में, बिराटा से बाहर, पहुँचा देना चाहिए।"

"पहुँचा दिया जायगा।" कुंजर ने उत्तर दिया।

"कब ?" फिर पूछा।

कुमुद ने फिर उसी मुस्किराहट के साथ उत्तर दिया—"एकआध दिन में, जब वह अच्छी हो जाय।"

"साथ किसे भेजा जाय ?" कुंजर ने बढ़ती हुई उत्कंठा के साथ पूछा।

कुमुद ने उत्तर दिया—"रामदयाल के सिवा और यहाँ कोई ऐसा नहीं दिखलाई पड़ता, जिसका नाम ले सकूँ।"

"रामदयाल !" कुंजर अपनी उठती हुई अस्वीकृति को दबाकर बोला—"देखा जायगा। यह अच्छी हो ले।"

अपनी बड़ी-बड़ी आँखें पसारकर कुमुद बोली—"रण-क्षेत्र में होकर सुरक्षित स्थान में इसे पहुँचाना पड़ेगा। आप अपने कुछ सैनिक इसके साथ भेज दीजिएगा।"

"मैं स्वयं जाऊँगा।" कुंजर ने कहा।

कुमुद गोमती को होश में लाने के लिये दुलार के साथ उपाय करने लगी।

गोमती की आँखें बंद थीं, उसी दशा में बोली—"यह मेरे कोई नहीं हैं।"

बड़े मीठे स्वर में कुमुद ने कहा—"गोमती।"

वह अचेत थी।

कुंजर ने प्रश्न किया—"इसे कहीं चोट तो नहीं आई है ?"

कुमुद ने उत्तर दिया—"ऊपर तो कहीं नहीं आई है, परंतु इसके हृदय को, जान पड़ता है, कठोर पीड़ा पहुँची है।"

कुंजर बोला—"वह मनुष्य बड़ा नृशंस है।"

कुमुद ने फिर आँख ऊपर उठाई। उस दृष्टि में बड़ी अनुकंपा थी। कहा—"उस चर्चा को जाने दीजिए। भावी प्रबल होती है। जो होना होता है, बिना हुए नहीं रहता। इस लड़की को बाहर पहुँचाकर फिर हम लोग और बातें सोचेंगे। मैं जानती हूँ, उस मनुष्य ने केवल गोमती को ही संकट में नहीं डाला है।"

"मैं क्या कहूँ," कुंजर कंपित स्वर में बोला—"मेरा इतिहास व्यथा-पूर्ण है, मेरे साथ बड़ा अन्याय हुआ है।" फिर तुरंत उसने कहा—"परंतु—परंतु आपका शुभ दर्शन-मात्र मेरी उस संपूर्ण कहानी में एक बड़ी भारी मार्ग-प्रदर्शक ज्योति है। वह समय मेरी अँधेरी रात के अवसान की ऊषा है। केवल उसी प्रकाश के सहारे मैं संसार में चलता-फिरता हूँ।"

कुंजर कुछ और कहता, परंतु कुमुद ने रोककर पूछा—"वह यहाँ तक कैसे आए? चारो ओर मुसलमानों और उनके सहायकों की सेनाएँ रुपी हुई हैं।"

कुमुद के साथ वह छल नहीं कर सकता था। एक बहुत बारीक़ आह को दबाकर उसने उत्तर दिया—"रामनगर पर उसका अधिकार हो गया है। कम-से-कम वह कहता यही था। इसीलिये शायद यहाँ तक चला आया।"

कुमुद ने कहा—"आपकी तोपें किस ओर गोले फेक रही हैं?"

"रामनगर पर।" कुंजर का सहज उत्तर था।

कुमुद ने अपने आँचल से गोमती पर हवा करते हुए कहा—"मैं भी यही सोच रही थी।"

"क्यों?" कुंजर ने ज़रा डरते हुए प्रश्न किया।

कुमुद बोली—"आपको कभी-न-कभी देवीसिंह से लड़ना ही पड़ेगा। आज या फिर कभी, परंतु अवस्था कुछ भयानक हो जायगी।"

"मैंने एक उपाय सोचा है।" कुंजरसिंह ने कहा—"मुझे एक चिंता सदा लगी रहती है।"

आँखें नीचे ही किए हुए कुमुद ने पूछा—"क्या ?"

"यह खोह सुरक्षित नहीं है। किसी दूसरे स्थान में आपको पहुँचाकर फिर निश्चिंतता के साथ यहाँ लड़ता रहूँगा।"

"मैं नहीं जाऊँगी।' कुमुद ने धीरे से कहा।

"मैं नहीं जाऊँगी।" क्षीण स्वर में अचेत गोमती बोली।

कुमुद चौंक पड़ी। गोमती अचेत थी। कुंजर ने कहा—"यह स्थान अब आपके रहने योग्य नहीं रहेगा। बड़ा घमासान युद्ध होगा। मैं गोमती को रामदयाल के साथ किसी अच्छे स्थान में छोड़ दूँगा, और आपको भी किसी सुरक्षित स्थान में।"

कुमुद बोली—"आपके लिये यदि यह स्थान सुरक्षित है, तो मेरे लिये भी।" फिर मुस्किराकर कहा—"मुझे आपकी तोपों पर विश्वास है।"

कुंजर की देह-भर में रोमांच हो आया। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो आकाश के नक्षत्र तोड़ लाने की सामर्थ्य रखता हो। कुछ कहना चाहता था। अवाक् रह गया। उसी समय नरपति और रामदयाल के आने की आहट मालूम हुई।

कुमुद ने जल्दी से कहा—"यदि रामदयाल अविश्वसनीय हो, तो उसके पास गोमती को नहीं छोड़ना चाहिए।"

रामदयाल सबसे पहले आया। आतुरता के साथ बोला—"इस बीच में अवस्था और तो नहीं बिगड़ी।"

कुंजर ने उत्तर दिया—"नहीं।"

औषधोपचार के बाद गोमती को चेत आने लगा।

अर्द्ध-चेतनावस्था में बोली—"वह कहाँ हैं ?"

कुमुद ने अपने बड़े-बड़े स्नेह-पूर्ण नेत्रों से मानो उसे ढक दिया।

उसके मुँह के बहुत पास अपनी आँखें ले जाकर कहा—"घबराओ मत, दुखी मत होओ।"

जब गोमती को बिलकुल चेत आ गया, वह अपने सिर को कुमुद की गोद से उठाने लगी। कुमुद ने रोक लिया। बोली—"लेटी रहो।"

कुंजर ने कहा—"रात बहुत हो गई है। अब आप लोग अपनी खोह में चले जायँ।"

रामदयाल बोला—"अभी वह चलने-फिरने योग्य नहीं जान पड़तीं।"

"थोड़ी देर में सही," कुंजर ने कहा—"परंतु रात को रहना वहीं चाहिए। आज की रात बहुत गोला-बारी होगी।"

"हम लोग जाते हैं।" कुमुद ने कहा—"आप रात में खोह पर कुशल-क्षेम पूछने के लिये न आना।"

कुमुद इत्यादि वहाँ से चली गईं।

उस रात कुंजरसिंह कदाचित् इच्छा होने पर भी खोह के पास न जा सका। रात-भर बेतरह रामनगर पर गोले ढाए। उधर से भी जवाब में कुछ गोला-बारी हुई, परंतु बिराटा की कोई हानि नहीं हुई। रामनगर पर अलीमर्दान की भी तोपें गोला उगलती रहीं। परंतु एक बात का आश्चर्य कुंजरसिंह को हो रहा था। अलीमर्दान की ओर से बिराटा पर एक तोप ने भी वार नहीं किया। कुंजरसिंह ने भी शायद यह समझकर कि पहले एक शत्रु से समझ लें, फिर दूसरे को देख लेंगे, अलीमर्दान को नहीं छेड़ा।

उस रात कुंजरसिंह के कान में कुमुद के अंतिम वाक्य ने कई बार झंकार की—उसने कहा था—"आप रात में खोह पर कुशल-क्षेम पूछने न आना।"

उस निषेध में कुंजर को एक अपूर्व मोह-सा जान पड़ा था।

---

(८६)

सबेरे सबदलसिंह कुंजर के पास आया। उदास था। बिना किसी भूमिका के बोला—"रामनगर पर देवीसिंह का अधिकार हो गया है। आपने रामनगर पर गोले क्यों बरसाए ?"

कुंजर ने उत्तर दिया—"पहले मेरे मन में भी कुछ इसी तरह की कल्पना जगी थी, परंतु पीछे विश्वास हो गया कि रामनगर पर अभी देवीसिंह का दख़ल नहीं हुआ है।"

"परंतु नरपतिसिंह दूसरी ही बात कहते हैं।"

"वह धोके में आ गए हैं।"

"और गोमती ?"

"वह भी ; और रामदयाल भी। वह सब छद्म-वेश था।"

रामदयाल कहता है कि धोका-सा था। मान लीजिए, देवीसिंह ही थे, तो वह इस तरह क्यों और कैसे आए ?"

"कैसे आए वे लोग, सो तो आपको मालूम ही हो चुका है ; परंतु मुझे उस व्यक्ति के देवीसिंह होने में बिलकुल संदेह है।"

यदि वह देवीसिंह ही थे, तो बहुत करके गोमती के लिये आए होंगे। मैं नरपति से सब हाल सुन चुका हूँ। केवल इतनी बात प्रकट करने के लिये आने की अटक न थी कि रामनगर उनके हाथ में आ गया है। इस समाचार को तो वह किसी के भी द्वारा कहला सकते थे। रामदयाल उनकी सेवा में रहा है, नरपति विश्वास दिलाते हैं। परंतु यह सब फिर क्या और क्यों हो पड़ा, कुछ समझ में नहीं आता। नरपति त्यागी-विरागी पुरुष हैं, उनके दिमाग़ में सांसारिक बातों को यथावत् स्थान नहीं मिलता। कुमुद कहती है कि धोका-सा हो गया है। शायद ऐसा ही हो।"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ।"

"ख़ैर, दो-एक दिन में मालूम हो जायगा ; परंतु यदि वास्तव में

रामनगर देवीसिंह के अधिकार में है, तो उस ओर गोला-बारी करना आत्मघात के समान होगा।"

"और यदि रामनगर अलीमर्दान या रानियों के हाथ में है, तो उस गढ़ पर गोले न चलाना आत्मघात से भी बुरा सिद्ध होगा।"

सबदल किं-कर्तव्य-विमूढ़ था।

कुछ क्षण पश्चात् बोला—'यदि देवीसिंह का हमसे कुछ अपराध भी हो जायगा, तो हम क्षमा माँग लेंगे।" फिर निस्सहायों की-सी आकृति बनाकर उसने कहा—"इस समय हम किसी को बाहर भेजकर इस बात का ठीक-ठीक अनुसंधान भी नहीं कर सकते।"

कुंजर ने अपनी बात की पुष्टि का प्रण कर लिया था। बोला—"यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं तोपों के मुँह मुरका दूँ ?"

सबदल तोपों का कुल भार कुंजर को सौंप चुका था। वह सहमत न हुआ। कहा—"तोपों के संचालन का संपूर्ण कार्य आपके हाथ में है। मैं हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। असली बात एकआध दिन में ही मालूम हो जायगी। यदि वास्तव में रामनगर देवीसिंह के अधीन हो गया है, तो कुछ-न-कुछ समाचार किसी-न-किसी प्रकार हमारे पास बिना आए न रहेगा। तब तक आपको जैसा उचित जान पड़े, करिए।"

सबदलसिंह चला गया। दो-एक दिन में क्या होगा, इसे वह या कोई भी उस समय नहीं जान सकता था।

आँख से ओझल होते हुए सबदल को कुंजर ने देखा। सरल, दृढ़, व्यक्ति। कुंजर को झूठ बोलने के कारण अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हुई। तुरंत ही उसने मन में कहा—"इसने जितना विश्वास मेरा कर रक्खा है, उससे कहीं अधिक मूल्य इसे दूँगा। इस गढ़ी की रक्षा में अंतिम श्वास की होड़ लगाऊँगा। इसे भ्रम में डालने के सिवा

मुझे कोई और उपाय न सूझा। क्या करूँ, देवीसिंह ने झूठ बोलने के लिये विवश किया।'

(८७)

दूसरे दिन रामदयाल गोमती के लिये उपयुक्त स्थान की खोज में, संध्या के उपरांत, बिराटा से चल पड़ा।

कहना न होगा कि वह इधर-उधर बहुत न भटककर और चक्कर काटकर अलीमर्दान की छावनी में गया, और सीधा अलीमर्दान के पास पहुँचा। प्रातःकाल हो गया था।

उसने रामदयाल को पहचान लिया।

बोला—"तुम्हारी रानी साहबा तो बहुत पहले आ गई हैं। तुम कहाँ थे?"

रामदयाल ने उत्तर दिया—"मैं भी हुज़ूर का कुछ काम कर रहा था।"

"वह क्या?"

"बिराटा से रामनगर पर गोले पड़ रहे हैं।"

रामनगर के नाम पर अलीमर्दान की ज़रा त्योरी बदली।

रामदयाल उसके भाव को समझ गया। बोला—"जहाँ तक मैंने सुना है, इस समय आपका अधिकार रामनगर पर नहीं है।"

अलीमर्दान बोला—"रनिवास में रहकर भी तुम्हें बात करने की तमीज़ न आई।"

"मैं माफ़ किया जाऊँ", रामदयाल ने क्षमा-प्रार्थना का कोई भी भाव प्रदर्शित न करते हुए कहा—"यदि अब भी रामनगर आपके हाथ में है, तो मैंने रामनगर पर बिराटा से गोले बरसवाने में ग़लती की है।"

इस पर अलीमर्दान ज़रा मुस्किराया। बोला—"रामनगर पर

इस समय मेरा क़ब्ज़ा नहीं है, परंतु भरोसा है कि जल्दी होगा। यह सचमुच समझ में नहीं आ रहा है कि तुमने बिराटा को रामनगर के ख़िलाफ़ किस उपाय से किया। इस रात हमारी छावनी की तरफ़ एक भी गोला नहीं आया, यह अचरज की बात है।"

"वह एक लंबी कहानी है," रामदयाल ने कहा—"परंतु बिराटा इस समय कुंजरसिंह के हाथ में है, और उसे यह मालूम हो गया है कि उसका विकट वैरी देवीसिंह रामनगर में जा पहुँचा है। कुंजरसिंह इस समय इस भरें पर काम कर रहा है कि पहले देवीसिंह को मिटाऊँ, फिर आप पर वार करूँ।"

अलीमर्दान हँसा। बोला—"इतनी बड़ी अक़्ल की बात क्या तुमने कुंजरसिंह को सुझाई है?" फिर गंभीर होकर उसने कहा—"कुंजरसिंह हमसे नाहक़ बुरा मान गया। असल में तुम लोगों ने सिंहगढ़ में उसे हाथ से निकल जाने दिया। वह आदमी साथ में रखने लायक़ था।" फिर सोचकर बोला—"उसमें बेहद हेकड़ी है। यह भी एक कारण उसके भाग खड़े होने का हुआ।"

रामदयाल ने इस बात को अनसुनी करके कहा—"अब उस सुंदरी के प्राप्त होने में भी बहुत विलंब नहीं है।"

अलीमर्दान बहुत गंभीर हो गया। बोला—"तुम उस विषय में मेरी सहायता कर सको, तो जैसा मैं कह चुका हूँ, तुम्हें भारी इनाम दूँगा।"

"अब उसका समय आ गया है।" रामदयाल ने भी गंभीर होकर कहा—"बिराटा पर धावा बोल दीजिए। देवीसिंह कोई सहायता बिराटा को न दे सकेगा। सीधा मार्ग मैं बतला दूँगा।"

अलीमर्दान मन-ही-मन प्रसन्न हुआ। परंतु बिना कोई भाव प्रकट किए बोला—"आज ही रात को आज़माओ।"

"आज रात को नहीं," रामदयाल ने प्रस्ताव किया—"एकआध रोज़ ठहर जाइए। बिराटा में निस्सीम गोला-बारूद या मनुष्य नहीं है। कुंजरसिंह को ज़रा थक जाने दीजिए।" फिर नीची आँख करके बोला—"एक ज़रा-सा काम मेरा है। पहले वह हो जाने दीजिए।"

आँख चमकाकर अलीमर्दान ने कहा—"क्या माजरा है भाई?"

बड़ी नम्रता और लज्जा का नाट्य करते हुए रामदयाल बोला—"मैंने भी सोचा है, अब अपना घर बसा लूँ। हमारी महारानी आपकी दया से दलीपनगर का राज्य पा जायँ, और मैं अपनी एक मड़या डालकर घर की देख-भाल करूँ, बस, यही प्रार्थना है।"

अलीमर्दान ने हँसकर कहा—"इसमें मेरी सहायता की किस जगह ज़रूरत पड़ेगी?"

"उस स्त्री को," रामदयाल ने उत्तर दिया—"यथासंभव मैं कल बिराटा से लिवा लाऊँगा। मैं चाहता हूँ, यहीं कहीं सुरक्षित स्थान में उसे रख दूँ। न-मालूम बिराटा में कब कितना उपद्रव उठ खड़ा हो। ऐसी हालत में उसका वहाँ रखना ठीक नहीं है। यहाँ थोड़ा-सा सुरक्षित स्थान मिल जायगा?"

"बहुत-सा।" अलीमर्दान बोला—"तुम्हारी महारानी यहीं पर हैं। उनके पास उस स्त्री को छोड़ देना हर तरह उचित होगा।"

रामदयाल सोचने लगा।

इतने में अलीमर्दान का एक सरदार आया। उसने रामदयाल को पहचान लिया। बोला—"हुज़ूर, रानी साहबा के सिर के लिये दो हज़ार मुहरें इनाम के तौर पर राजा देवीसिंह ने रक्खी हैं।"

अलीमर्दान ने पूछा—"रानी साहबा को मालूम है या नहीं?"

उसने जवाब दिया—"अभी सबेरे उनके किसी सेवक ने ही बतलाया था।"

"मुझे मालूम था," अलीमर्दान ने कहा—"और उसके साथ यह भी मालूम हो गया था कि दीवान जनार्दन शर्मा ने भी अपनी तरफ़ से दो सौ मुहरें उसी सिर के लिये इनाम में और रक्खी हैं।"

रामदयाल चकित होकर बोला—"क्या ये लोग पागल हो गए हैं?"

अलीमर्दान ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। सरदार से कहा—"इस समय बिराटा पर गोला-बारी न की जाय। आज दिन-भर और रात-भर बराबर रामनगर पर ही गोले बरसाओ, और लगातार दलीपनगर की सेना पर हमले करो। इसी समय महारानी के पास जाओ। कहना, थोड़ी देर में हाज़िर होता हूँ। रामदयाल को भी साथ लेते जाओ।"

वे दोनो गए।

---

(८८)

सरदार और रामदयाल छोटी रानी के डेरे पर पहुँचे। कालपी की सेना की छावनी के एक सुरक्षित कोने में एक छोटा-सा तंबू खड़ा था। उसी में छोटी रानी अपने कुछ आदमियों के साथ थीं। भागकर जब रामनगर में रानी आई थीं, तब से अब उनके गौरव में और भी बड़ी कमी हो गई थी।

रामदयाल तंबू के भीतर चला गया। सरदार बाहर रह गया।

भीतर की हीनता रामदयाल को और भी अधिक अवगत हुई। रानी के चेहरे पर अब सहज दृढ़ता और सुलभ कोप के सिवा स्थायी निराशा के भी चिह्न अंकित थे।

रामदयाल को देखकर रानी ने कहा—"इन दिनों कहाँ छिपा था ? क्या मेरा सिर काटने के लिये आया है ?"

रामदयाल ने कुछ डरते हुए, हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"मैं बिराटा में जासूसी के काम पर नियुक्त था।"

"वहाँ क्या जासूसी की ?"

"देवीसिंह का सेवक बनकर कुछ समय तक रहा। कुंजरसिंह ने कल पहचान लिया। लगभग उसी समय देवीसिंह भी वहाँ आ गए। उन्होंने भी पहचान लिया। दोनो को लड़ा-भिड़ाकर यहाँ चला आया हूँ। देवीसिंह रामनगर चले गए हैं, और अब कुंजरसिंह रामनगर पर गोले बरसा रहे हैं।"

रानी ज़रा चिड़चिड़ाकर बोलीं—"जब कालपी की इतनी बड़ी सेना ने रामनगर को न ले पाया, तब बिराटा की तोपें क्या कर पाएँगी ?"

रामदयाल ने तुरंत उत्तर दिया—"बिराटा की तोपों का संचालन कुंजरसिंह ऐसा अच्छा कर रहे हैं कि रामनगर में देवीसिंह को रहना कठिन हो जायगा।"

अपनी दशा की याद करके रानी ने कहा—"अब और किसी के हाथ से कुछ होता नहीं दिखाई देता। परंतु यदि दिलेर आदमियों की एक छोटी-सी सेना मुझे मिल जाय, तो मैं कुछ करके दिखला दूँ। क्या कुंजरसिंह अपना पुराना पागलपन छोड़कर हमारा साथ देने को तैयार हो जायगा ?"

रामदयाल ने उत्तर दिया—"कुंजरसिंह का पागलपन अब और बढ़ गया है। जिसे बिराटा में देवी का अवतार या देवी की पुजारिन बतलाया जाता है, वह उनके कुल कर्तव्य की लक्ष्य है। उनके लिए जो कुछ हो, सो हो। नवाब की एक बड़ी सेना शीघ्र ही यहाँ आनेवाली है।"

धीरे स्वर में छोटी रानी बोलीं—"अब वही एक आधार है। मुझे चाहे राज्य न मिले, कुंजरसिंह राजा हो जाय या कोई और, परंतु देवीसिंह और वह पिशाच जनार्दन धूल में मिल जायँ। रामदयाल मेरा प्रण न पूरा हो पाया! यदि मेरे मरने के पहले कम-से-कम जनार्दन का सिर काट लाता, तो मुँह-माँगा इनाम देती, परंतु तेरे किए कुछ न हुआ।"

रामदयाल ने उत्साहित होकर कहा—"नहीं महाराज, जनार्दन का सिर अवश्य किसी दिन काटकर आपके सामने पेश करूँगा।"

रानी एक ओर टकटकी बाँधकर कुछ सोचने लगीं।

रामदयाल बोला—"आप बिलकुल अकेली हैं, मुझे इधर-उधर भटकना पड़ेगा। आज्ञा हो, तो एक लड़की आपके पास कर जाऊँ।"

रानी ने चौंककर कहा—"लड़की तेरी कौन है?"

चालाक रामदयाल भी अपने चेहरे के रंग को फ़र्क़ होने से न रोक सका। बोला "वैसे तो मेरी कोई नहीं है, परंतु कुछ दिनों से जानने लगा हूँ, इसलिये चाहता हूँ कि आपके पास रह जाय। जब देवीसिंह ने दलीपनगर के सिंहासन की ओर आँख नहीं डाली थी, उसके साथ विवाह करना चाहते थे, जब वह सिंहासन खसोट लिया, तब इस बेचारी का त्याग कर दिया। दुःखिनी है, और देवीसिंह से बहुत नाराज़ है।"

रानी ने नाम इत्यादि और थोड़ी-सी ऊपरी पूछ-ताछ के बाद रामदयाल को गोमती के लिवा लाने की अनुमति दे दी। कहा—"उसे वास्तव में देवीसिंह ने परित्याग कर दिया है?"

"हाँ महाराज।"

"परंतु मेरे पास रहने में उसे और भी अधिक कष्ट होगा। शायद किसी समय उसके प्राणों पर भी आ बने।"

"मैं भी तो आपकी सेवा में रहूँगा।"

"और तुम्हारा प्रण ?"

"सदा सेवा में न रहूँगा—प्रायः रहा करूँगा।"

रानी बोलीं—"तुम उसे लिवा लाओ, परंतु दूसरे डेरे में रहेगी, और उसके ऊपर चौकसी भी रक्खी जायगी। किसी दिन शायद देवीसिंह उसे अपनाने के लिये तैयार हो जाय, या शायद किसी दिन वही देवीसिंह के पास दौड़ जाय, और हम लोगों को यों ही किसी आकस्मिक विपद् में डाल जाय।"

रामदयाल ने कहा—"मेरे सामने ही देवीसिंह ने उस स्त्री का घोर अपमान किया था। वह अचेत होकर गिर पड़ी थी। देवीसिंह ने उससे कहा था कि मैं तो तुम्हें पहचानता नहीं हूँ।"

रानी बोलीं—"तू उसे ले आ। आजकल और कोई साथ में नहीं है। उसके साथ कुछ मन बहलेगा।"

रामदयाल वहाँ कुछ समय ठहरकर चला गया।

सरदार से कहता गया—"अब हम सब लोगों की मुरादें पूरी होंगी।"

वह बोला—"इंशा अल्लाह।"

---

(८६)

रामदयाल बिराटा के उत्तरवाले जंगल और भरकों में होकर इधर-उधर फैले हुए भांडेर-सैन्यदल की आँख बचाता हुआ अँधेरे में बिराटा पहुँचा। बिराटा के सिपाही उसे पहचानने लगे थे, इसलिये प्रवेश करने में दिक़्क़त नहीं हुई। सीधा कुंजरसिंह के पास पहुँचा। बोला—"मैं गोमती के ठहरने का उचित प्रबंध कर आया हूँ।"

"वहाँ जाने की वह अभिलाषा रखती हो, तो मैं न रोकूँगा।" कुंजर ने कहा।

रामदयाल ज़रा चकित होकर बोला—"उस दिन आप ही ने कहा था कि इन लोगों के ठहरने का प्रबंध कहीं बाहर कर देना चाहिए, सो मैंने कर दिया। अब यदि दूसरी मर्ज़ी हो, तो मुझे कहना ही क्या है?"

कुंजरसिंह ने झुँझलाकर कहा—"अच्छा, अच्छा। ले जाओ उसे, जहाँ वह जाना चाहे, और कोई साथ नहीं जायगा। कहाँ ले जाओगे?"

रामदयाल इस प्रश्न के लिये तैयार था। बोला—"यहाँ से चेलरा थोड़ी दूर है। वहाँ एक ठाकुर रहते हैं। उनके यहाँ प्रबंध कर दिया है। मैंने तो सबके लिये ठीक-ठाक कर लिया है। यदि सब लोग वहीं चले चलें, तो बहुत अच्छा होगा।"

"सब लोग नहीं जायँगे, पहले ही बतला चुका हूँ। और, यदि उन लोगों की इच्छा होगी, तो मैं साथ पहुँचाने चलूँगा।" कुंजरसिंह ने कहा। फिर एक क्षण ठहरकर बोला—"यदि अकेली गोमती जायगी, तो भी मैं साथ चलूँगा।"

रामदयाल ने आहत निर्दोषिता के स्वर में कहा—"मैं मार्ग बतलाए देता हूँ। ठाकुर का नाम प्रकट किए देता हूँ। आप किसी को साथ लेकर गोमती को या जो जाना चाहे, उसे लिवा जाइए। यदि मेरी बात में कोई फ़र्क़ निकले, तो जो जी चाहे, सो कर डालिएगा।"

इस पर कुंजरसिंह रामदयाल को लेकर खोह पर गया।

कुंजर ने रामदयाल के आने का कारण बतलाया। ज़रा विचलित स्वर में कुमुद ने कहा—"आप यदि जाना चाहें, तो इस संकटमय स्थान से चली जायँ। मैं पहुँचाने के लिये चलूँगा।"

कुमुद ने दृढ़ता, परंतु कोमलता के साथ उत्तर दिया—'बिराटा के योद्धाओं की सफलता के लिये मैं यहीं रहकर दुर्गा से

प्रार्थना करूँगी। गोमती को अवश्य बाहर भिजवा दीजिए। उस दिन से यह बड़ी अस्वस्थ रहती हैं।

गोमती की इच्छा जानने के लिये कुंजर ने उसकी ओर दृष्टि-पात किया।

गोमती ने कुमुद की ओर देखकर कहा—"मुझे मृत्यु का कोई भय नहीं है। प्राणों के बनाए रखने की कोई कामना नहीं है। कहीं भी रहूँ, सर्वत्र समान है। यदि बहन के पास ही रहकर मेरा प्राणांत होता, तो सब बात बन जाती।" फिर ज़रा नीचा सिर करके बोली—"परंतु अभी मरना नहीं चाहती हूँ।"

कुमुद ने उसकी ओर स्नेह की दृष्टि से देखा।"

एक क्षण बाद गोमती बोली—"ऐसी भली छत्रच्छाया छोड़कर कहीं भी जाना पागलपन है, परंतु यहाँ और अधिक ठहरने से मैं सचमुच बावली हो जाऊँगी। मंदिर में अब धँसा नहीं जाता, खोह में पड़े रहने से अनमनापन बढ़ता जाता है, इसलिये रामदयाल के साथ जहाँ ठीक होगा, चली जाऊँगी। केवल एक बिनती है।"

दयार्द्र होकर कुमुद ने प्रश्न किया—"वह क्या है बहन?"

उस लड़की का गला रुँध गया। बोली—"केवल यह कि मुझसे जो कुछ भी अपराध हुआ हो, वह क्षमा हो जाय।"

कुमुद ने उसे कंधे से लगा लिया।

इसके बाद कुमुद ने कुंजर से कहा—"आप इस क़िले की रक्षा कर रहे हैं। कैसे कहूँ कि आप इस बेचारी को सुरक्षित स्थान तक पहुँचा आवें?"

"मैं अवश्य जाऊँगा, और दुर्गा की कृपा से अभी लौटूँगा।" कुंजरसिंह ने उत्तर दिया।

रामदयाल अभी तक चुपचाप था। उसने प्रस्ताव किया—"इन्हें पुरुष का वेष धारण करके चलना चाहिए।"

इस प्रस्ताव को कुंजरसिंह और गोमती दोनो ने स्वीकृत किया।

---

(६०)

कुंजरसिंह गोमती को लेकर गढ़ के उत्तर की ओर से जाने की दुविधा में था। वह सोचता जाता था कि रामदयाल के ऊपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। परंतु कुमुद ने कहा था कि साथ जाओ, इसलिये जा रहा था। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचाकर लौटने में समय लगेगा, और इस बीच में गढ़ की समस्या कुछ उलट-पुलट गई, तो क्या होगा? यह बात उसके मन में गड़ रही थी।

उसी समय सबदलसिंह मिला। कुंजर से उसने पूछा—"कहाँ जा रहे हो?"

उसने उत्तर दिया—"यह एक निरीह स्त्री गढ़ से बाहर जाना चाहती है। चेलरे तक पहुँचाने जा रहा हूँ।"

सबदलसिंह बोला—"लौटने में बहुत देर लग जायगी। तब तक अगर यहाँ आपकी ज़रूरत पड़ गई, तो क्या होगा? साथ में यह आदमी तो है। दो के जाने की क्या ज़रूरत है? इस स्त्री से आपका कोई नाता है?"

कुंजर ने झिझक के साथ उत्तर दिया—"कोई भी नाता नहीं है। कहा गया था, इसलिये जा रहा हूँ।"

रामदयाल तुरंत बोला—"मेरे बाहु-बल और विवेक का यदि भरोसा किया जाय, तो मैं अकेला ही इस काम को निभा सकता हूँ।"

कुंजरसिंह को उत्तर देने में हिचकते हुए देखकर सबदल ने रामदयाल से कहा—"तुम्हारा इनसे कोई नाता है?"

"क्या बतलाऊँ।" रामदयाल ने उत्तर दिया—"इसे वह जानते हैं, मैं तो सेवक-मात्र हूँ।"

सबदल ने कुछ विनम्र और कुछ अधिकार-युक्त स्वर में कुंजर

कहा—"राजा, आप न जा सकेंगे। देवी ने मानो आप ही को तोपों पर नियुक्त किया है। थोड़े समय के लिये भी आपका यहाँ से चला जाना न-मालूम कब हम सब लोगों के लिये भयंकर हो उठे।"

कुंजर असमंजस में पड़ गया।

एक क्षण बाद ही एक आकस्मिक घटना ने उसे निर्णय के किनारे पहुँचा दिया। उसी समय एक ओर से नरपति दौड़ता हुआ आया। घबराहट में बोला—"मंदिर की दालान पर एक गोला अभी आकर गिरा है। दीवार का एक हिस्सा टूट गया है। वह देखिए, धूल उड़ रही है। शायद हमारी खोह पर भी गोले पड़ें।"

कुंजर ने भी देखा।

कुंजर ने कहा—"आप खोह के भीतरी हिस्से में रहें। मैं अपनी तोपों की मार से उधर की तोपों के मुँह बंद किए देता हूँ।" उसी क्षण रामदयाल से बोला—"तुम इन्हें सुरक्षित स्थान में ले जाओ। मैं न जा सकूँगा। इन्हें कोई कष्ट न होने पावे। ख़बरदार!"

रामदयाल आश्वासन देता हुआ गोमती के साथ चला गया।

---

(९१)

गोमती को रामदयाल सहारा देता हुआ, एक तरह से घसीटता हुआ अलीमर्दान की छावनी की ओर ले चला।

ख़ैर, मकोय और हींस के काँटेदार जंगल में होकर चलना पड़ा। ऊबड़-खाबड़ भूमि और भरकों की भरमार में यात्रा और भी कष्ट-पूर्ण हो गई। ऊपर से गोली-गोले कभी-कभी इधर-उधर आ गिरते थे। काँटों के मारे रामदयाल का शरीर जगह-जगह से लोहू-लुहान हो गया। पसीने के साथ मिलकर रक्त पतली धारों में बह रहा था। परंतु वह अर्द्ध-चेतन गोमती को अपनी थकी हुई बाँहों में कसे हुए था। उसके जो अंग रामदयाल के शरीर द्वारा सुरक्षित

नहीं थे, वे कहीं-कहीं काँटों से छिल गए थे, और रामदयाल को शायद उसी की अधिक चिंता मालूम होती थी। परंतु बिलकुल थक जाने के कारण एक जगह वह बैठ गया। गोमती भी रामदयाल के पास ही बैठ गई।

थोड़ी देर तक दोनो कुछ न बोले। जब रामदयाल की हाँफ शांत हो गई, तब धीरे, परंतु भर्राए हुए स्वर में बोला—"बहुत कष्ट हुआ है, क्यों?"

गोमती ने ज़रा रीती दृष्टि से रामदयाल की ओर देखा, परंतु उत्तर कुछ न दिया।

थोड़ी देर और चुप रहने के बाद रामदयाल बोला—"आपके शरीर में काँटे टूटकर अटक गए होंगे, उन्हें निकाल दूँ।

गोमती ने कहा—"कहीं इधर-उधर पैरों में भले हों; उन्हें ठिकाने पर पहुँचकर निकाल लूँगी, अभी रहने दो।"

रामदयाल को अपने काँटे भी काफ़ी कसक रहे थे। गोमती के न पूछने पर भी उसने कहा—"मेरे शरीर को तो काँटों ने छलनी कर दिया है। मैं नहीं जानता था कि इस मार्ग में इतना बुरा जंगल मिलेगा।" और, अपने लोहू-लुहान हाथों को गोमती के सामने करके देखने लगा। गोमती ने भी देखा।

रामदयाल ने कहा—"अगर कुंजरसिंह आते, तो यहाँ हम लोगों की क्या सहायता कर सकते थे? काँटों में फँसकर मुझे ही बुरा-भला कहते। ख़ैर, उसे भी सह लेता; क्योंकि कुछ उनके लिये तो मैं यह सब कर नहीं रहा हूँ।"

गोमती बोली—"मैं अब पैदल चलूँगी। जैसे तुम इतना कष्ट भोग सकते हो, वैसे ही मैं भी भुगत लूँगी।"

रामदयाल ने एक आह भरकर कहा—"मैं काँटों-कंकड़ों में घिसटना कैसे देखूँगा।"

"तुम भी तो थक गए हो ?"

"थक तो अवश्य गया हूँ, परंतु अभी मरा तो नहीं हूँ।"

गोमती थोड़ी देर चुप रहकर बोली—"थोड़ी दूर चलकर देख लूँ। यदि चलते न बना, तो सहारा ले लूँगी।"

उसने आग्रह के साथ गोमती का हाथ पकड़कर कहा—"मेरे चुटीले शरीर को देखो। इस बहते हुए रक्त को देखो। पैरों की उँगलियाँ ठोकरों से फट गई हैं, उन्हें भी देख लो, तब मालूम हो जायगा कि पैदल चलना कितनी आफ़त का काम है।"

गोमती रामदयाल के हाथ में हाथ दिए रही, परंतु उसने वह सब कुछ नहीं देखा।

रामदयाल ने एकाएक गोमती का वह हाथ झटककर, अपने हृदय पर चिपटाकर रख लिया, और असाधारण आवेश के साथ बोला—

"और मेरे घायल हृदय को देखो।"

गोमती अपने हाथ को रामदयाल की छाती पर कुछ क्षण रक्खे रही, और फिर उसने खींच लिया।

रामदयाल ने उसी आग्रह के स्वर में कहा—"देखोगी ?"

गोमती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रामदयाल कहता गया—"मैं पापी हूँ, नीच हूँ, बुरा हूँ, और सभी कुछ हूँ। मेरे राजा ने जैसा कुछ मुझे बनाया, वह मैं सब हूँ, परंतु तुम्हारे लिये मैं कुछ और हूँ।"

आवेश के अतिरेक में एक क्षण के लिये वह रुद्ध हो गया, परंतु अपने ऊपर शीघ्र अधिकार स्थापित करके बोला—"मेरे लिये केवल दो मार्ग हैं—एक तो यह कि तुम्हें किसी सुरक्षित स्थान में पहुँचाकर तुरंत मर जाऊँ, या—या ख़ैर, तुम्हारे मुँह की एक बात सुनकर फिर कुछ कहूँगा।"

गोमती ने पूछा—"कहाँ चलोगे ?"

"ऐसे स्थान पर, जहाँ तुम्हें किसी तरह का कष्ट न हो सकेगा।"

"मैं लौट न जाऊँ ?" गोमती ने क्षीण स्वर में प्रस्ताव किया। रामदयाल ने कहा—"उस कँकड़ीली भूमि पर बैठे-बैठे कष्ट होने लगा होगा, वहाँ मत बैठो।"

गोमती बोली—"अच्छा, जहाँ चलना हो, चलो। भाग्य में जो कुछ होगा, देखूँगी।" खड़ी हो गई। रामदयाल उसका हाथ पकड़कर चलने लगा। थोड़ी दूर चलकर वह फिसलकर गिर पड़ी। अधिक चोट आ जाती, परंतु रामदयाल ने सँभाल लिया। तो भी उसका घुटना छिल गया। रामदयाल ने उसे उठाकर कंधे से लगा लिया। बोला—"अब पैदल नहीं चलने दूँगा। क्या कहती हो ?"

गोमती बोली—"क्या कहूँ ?"

रामदयाल ने गोमती को उठा लिया। रामदयाल को जान पड़ा, जैसे उसकी सब थकावट एकाएक कहीं चल दी हो। उसे अपने एक-एक रोम में विलक्षण बल प्रतीत होने लगा। गोमती को हृदय से सटाकर रामदयाल ने प्रश्न किया—"तुम यदि समझो कि मैं तुम्हारे साथ कोई घात कर रहा हूँ, तो इसी क्षण या जब चाहो, मुझे छुरी के घाट उतार देना। परंतु मैं जीते जी तुम्हें अपने से अलग न होने दूँगा।"

थोड़ा-सा स्थान ज़रा साफ़-सुथरा मिल जाने से गोमती को बात-चीत का सुबीता मिला। बोली—"यहाँ जगह चलने लायक है। मुझे पैदल ही चलने दो।"

रामदयाल ने काँपते हुए कंठ से कहा—"मैं अपने को जैसा इस समय पा रहा हूँ, वैसा कभी न पाया था। मैं बड़ी स्वच्छता के साथ अपने जीवन को बिताऊँगा। जो कुछ मैंने किया है, उसे भूल जाऊँगा, और तुम्हारे योग्य बनूँगा। तुम मुझे अवसर दोगी ?"

गोमती ने थोड़ी देर कोई उत्तर नहीं दिया। फिर बोली—"यहाँ से कहाँ चलोगे ?"

रामदयाल ने तुरंत उत्तर दिया—"मैं छोटी रानी के पास जाना चाहता था, परंतु अब मैं सोचता हूँ कि वहाँ न जाऊँ। किसी ऐसे स्थान पर चलूँ, जहाँ हम दोनो निरापद् रह सकें।"

गोमती ने अनुरोध के-से स्वर में कहा—"मैं उन्हीं के पास चलना चाहती हूँ। मैं अभी युद्ध-भूमि छोड़ना नहीं चाहती।"

"वहाँ संकट में पड़ जाने का भय है।"

"तुम भी तो वहाँ रहोगे ?"

"रहूँगा। परंतु गोला-बारी हो रही है। ऐसा न हो कि तुम बिछुड़ जाओ।"

"वहीं चलो। मैं वहीं कुछ कर सकूँगी।"

रामदयाल ने कुछ क्षण पश्चात् इस प्रस्ताव को मान लिया। फिर एकाएक उसे हृदय के पास समेटकर बोला—"गोमती, तुम मेरी होकर रहना। रहोगी न ?"

गोमती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

---

(६२)

रामदयाल को बहुत चक्कर काटकर चलना पड़ा। थोड़ी देर बाद गोमती थकावट के मारे रामदयाल की बाहों में सो गई, या अचेत हो गई। रामदयाल थोड़ी दूर चल-चलकर, दम लेने के लिये, रुक जाता, परंतु गोमती को गोद से न उतारता।

जब शिविर थोड़ी दूर रह गया, और सबेरा होने में भी बहुत विलंब न था, रामदयाल एक जगह कुछ समय के लिये थम गया। उसने गोमती को गोद में आराम के साथ लिटाया। गोमती सोती रही।

रामदयाल ने उसे जगाया।

गोमती ने पूछा—"कितनी दूर निकल आए होंगे? अभी तो जंगल में ही मालूम पड़ते हैं?"

रामदयाल ने उत्तर दिया—"बहुत दूर निकल आए हैं। उद्दिष्ट स्थान निकट आ गया है। कुछ कष्ट तो नहीं है?"

"अब मैं पैदल चलूँगी। ख़ूब गहरी नींद आ जाने के कारण फुर्ती मालूम होने लगी है। छोड़ दो।"

"अभी नहीं छोड़ूँगा। पहले एक बात बतलाओ।"

"क्या?"

"तुम मुझे प्यार करती हो?"

गोमती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रामदयाल ने और भी आवेश के साथ कहा—"गोमती, मैं राजा तो नहीं हूँ, परंतु मेरा हृदय राजमुकुटों के ऊपर है। उसे मैं तुम्हारे चरणों में रखता हूँ।"

गोमती धीमे स्वर में बोली—"तुम अपने राजा के सम्मुख जब जाओगे, क्या कहोगे?"

"मैं उनके सम्मुख अब कभी नहीं जाऊँगा। बहुत दिनों से गया भी नहीं। अब तो मैं छोटी रानी के पास रहूँगा, यदि तुम भी वहाँ रहना पसंद करोगी, तो; नहीं तो इस विशाल जगत् में कहीं भी हम लोग अपने लिये ठौर ढूँढ़ लेंगे।"

रानी के पास किसके हित के लिये जा रहे हो? किसके होकर जा रहे हो?"

"अपने हित के लिये, और अपने होकर। मैं इस समय अपने और तुम्हारे सिवा और किसी चीज़ को नहीं देख रहा हूँ।"

"मुझे राजा से एक बार मिलना है।"

"किसलिये?" रामदयाल ने ज़रा चौंककर पूछा।

"दो बातें कहना चाहती हूँ। उस विश्वासघाती को कुछ दंड भी दिया चाहती हूँ, यदि संभव हुआ, तो।"

रामदयाल ने संतोष की साँस लेकर पूछा—"इसके बाद क्या करोगी?"

गोमती ने उत्तर दिया—"इसके बाद जो कुछ भाग्य में लिखा है, होगा। कुमुद के ही पास चली जाऊँगी।"

रामदयाल ने कुछ क्षण चुप रहने के बाद कहा—"यदि इस लड़ाई से बचने के बाद कुंजरसिंह और कुमुद का स्त्री-पुरुष-संबंध हो गया, तो तुम वहाँ क्या करोगी?"

गोमती चुप रही।

रामदयाल कहता रहा—"कुमुद और कुंजर में प्रेम है, इसे मैं भी जानता हूँ, और तुम भी। प्रेम का जो आवश्यक परिणाम है, यह भी होकर रहेगा, यानी वे दोनो अपना एक कुटुंब बनावेंगे। क्या हम लोग ऐसा नहीं कर सकते? तुम्हारा शायद यह ख़याल है कि मैं तो केवल एक नौकर-मात्र हूँ। मैं पूछता हूँ, हृदयों में क्या कोई भेद होता है? और फिर मेरे पास संपत्ति भी काफ़ी होगी। इसमें संदेह नहीं कि तुम महारानी न कहला सकोगी, परंतु तुम सदा मेरी रानी होकर रहोगी, इसमें भी कोई संदेह नहीं। राजा ने जैसा बर्ताव तुम्हारे साथ किया है, उससे क्या तुम यह आशा करती हो कि वह तुम्हें अब ग्रहण कर लेंगे? तुमने उन्हें दंड देने के विषय में जो प्रस्ताव किया है, वह महज़ अपने को धोका देना है। तुम उन्हें कोई दंड न दे सकोगी। जिस समय उनके सामने जाकर उन्हें कोई उल्टी-सीधी सुनाओगी, उस समय वह तुम्हारा और अधिक अपमान करेंगे। हाँ, मैं दंड भी दे सकता हूँ, परंतु तुम कहो, तो।"

गोमती ने कहा—"कुमुद-जैसी स्त्री अब कभी न मिलेगी।" और एक लंबी आह खींची।

रामदयाल ने साँस खींचकर कहा—"तुम अब भी उधर का ही ध्यान कर रही हो ? यदि तुम्हारी इच्छा वहाँ फिर लौट चलने को हो, तो आज दिन-भर यहीं कहीं भरकों में छिप जाओ, संध्या-समय मैं तुम्हें वहीं पहुँचा दूँगा, और अपने को किसी तोप के गोले के नीचे खपा दूँगा।" वह सूक्ष्मता के साथ गोमती की ओर देखने लगा।

गोमती को चुप देखकर ज़रा जोश के साथ रामदयाल बोला—"बोलो गोमती। मैं इसके लिये भी तैयार हूँ। सबेरा होनेवाला है। दिन में बाहर चलना-फिरना अनुचित होगा। यदि काफ़ी रात होती, तो मैं इसी समय बिराटा लौट पड़ता, यद्यपि सारा शरीर चूर-चूर हो गया है, और काँटों के मारे बिच्छू के डंकों-जैसी ताड़ना हो रही है।"

गोमती ने सिर नीचा करके कहा—"मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। अब बिराटा नहीं जाऊँगी।"

रामदयाल का शरीर काँप उठा। उसने तुरंत असहाय गोमती को उठाकर अपने गले से लगा लिया। गोमती की आँखों से आँसू बह निकले।

---

(६३)

उन दिनों छावनियों के आस-पास पहरों की वह कड़ाई न थी, जो आजकल की रण-क्रिया में दिखलाई पड़ती है। इसलिये रामदयाल और गोमती को छावनी के बाहर के थानेवालों ने सबेरा हो जाने के बाद देखा। कुछ रोक-टोक और कठिनाई के बाद रामदयाल गोमती को लिए हुए छोटी रानी के तंबू के पास आ खड़ा हुआ। रानी उन दोनो को देखकर प्रसन्न नहीं हुईं।

रामदयाल से कहा—"इस बेचारी को इस घोर संग्राम में क्यों ले आया ?"

रामदयाल ने निर्भयता से उत्तर दिया—"गोमती की रक्षा और कहीं हो ही नहीं सकती थी। इनका यहाँ बाल भी बाँका न हो सकेगा। आपकी रावटी में रहेंगी यह।"

रानी की आँखों से चिनगारी-सी छूट पड़ी, परंतु गोमती के म्लान मुख और दुर्दशा-ग्रस्त नेत्रों को देखकर असाधारण संयम के साथ बोलीं—"अच्छा, इस लड़की को मेरे पास छोड़ दो। मैं इसकी रक्षा करूँगी। तेरा कार्य-क्रम अब क्या है?" गोमती को रानी ने अपने निकट बिठला लिया।

रामदयाल को तू-तड़ाक का यह वार्तालाप आज अपूर्व श्रुति-कटु जान पड़ा, परंतु उसकी चातुरता ने उसका साथ न छोड़ा। कहने लगा—"जो आपका कार्य-क्रम है, वही मेरा भी। जनार्दन शर्मा को ठिकाने लगाना है, यही न?"

रामदयाल की बातचीत के संक्षिप्त ढंग से रानी ज़रा चकित हुईं। रोष में आकर बोलीं—"तू इस लड़की को सँभाले रहना। मैं जनार्दन का सिर काटूँगी।"

ज़रा लज्जित स्वर में रामदयाल ने उत्तर दिया—"देख-भाल के लिये तो मैं इन्हें यहाँ लाया ही हूँ। यह हथियार चलाना जानती हैं। आपको इनसे सहायता मिलेगी, परंतु जनार्दन से लड़ने के लिये न तो आपको जाना पड़ेगा और न इन्हें, मैं जाऊँगा।"

रानी ने बेधड़क गोमती से पूछा—"तुम्हारा इसका क्या नाता है?"

गोमती के होंठ फड़के, माथे की नसें फूल गईं, और चेहरा लाल हो गया। कुछ कहने को हुई कि गला रुँध गया।

रामदयाल ने दबे हुए स्वर में तुरंत उत्तर दिया—"इस समय मैं इनका केवल रक्षक हूँ। इससे ज़्यादा आपको जानने की ज़रूरत भी क्या है?"

रानी ने सिंहनी की दृष्टि से रामदयाल की ओर देखा। फिर यथासंभव नरम स्वर में गोमती से बोलीं—"तुम ठीक-ठीक बतलाओ, यह तुम्हारा सत्यानास करने को तो नहीं लिवा लाया है? यह बड़ा झूठा और फ़रेबी है।"

रामदयाल ने कुपित कंठ से कहा—"ठीक है महाराज। मेरी सेवाओं का यह पुरस्कार तो मिलना ही चाहिए। मान लीजिए, मैं इनका सत्यानास करने को ही यहाँ लिवा लाया हूँ, तो इनकी जितनी दुर्दशा हो चुकी है, उससे और अधिक तो होगी नहीं, और यदि मैं आपको बहुत खलने लगा हूँ, तो इसी समय चले जाने को प्रस्तुत हूँ।"

गोमती ने स्पष्ट स्वर में कहा—"मैं रानी के ही पास रहूँगी।"

रानी नरम पड़ गईं। बोलीं—"रामदयाल, तुम हमें ऐसे अवसर पर छोड़कर न जाओगे, तो कब जाओगे? इसीलिये तो तुम्हें झूठा और फ़रेबी कहा। छुटपन से तुम्हें देखा है। छुटपन से तुम्हें गालियाँ दी हैं। अब क्या छोड़ दूँगी?"

सिर नीचा करके रामदयाल ने अपने सहज स्वाभाविक ढंग से उत्तर दिया—"सो आपके सामने सदा सिर झुका है। आपको जब कभी रंज या क्रोध में देखता हूँ, बुरा लगता है। मैं आपको धार में छोड़कर कैसे जा सकता हूँ? आपकी सहायता के लिये ही गोमती को लिवा लाया हूँ। आपका इनसे मन-बहलाव होगा, और यदि लड़ाई के समय आपके ऊपर कोई संकट उपस्थित होगा, तो मेरे अतिरिक्त यह भी आपकी सहायक होंगी।"

इसके बाद गोमती को कुछ संकेत करता हुआ रामदयाल छावनी में अलीमर्दान के पास चला गया। अपना जितना अपमान आज उसने अवगत किया, उतना जीवन में पहले कभी न किया था।

(१४)

अलीमर्दान के शिविर में रामदयाल और गोमती के पहुँच जाने के बाद ही बिराटा की गढ़ी पर गोला-बारी बढ़ गई। कुंजरसिंह की तोपें उत्तर देने लगीं। परंतु कुंजरसिंह ने एक घंटे के भीतर ही देख लिया कि समस्या अत्यंत विकट हो गई है, और अधिक समय तक बिराटा की गढ़ी को सुरक्षित रखना संभव न होगा।

तोपों के ऊपर अपने चुस्त तोपचियों को छोड़कर वह कुमुद के पास गया। खोह में इस समय नरपति न था।

कुंजरसिंह ने धीमे स्वर में कहा—"बिदा माँगने आया हूँ।"

कुमुद उसके असाधारण तने हुए नेत्र देखकर चकित हो गई। कोमल स्वर में पूछा—"क्यों ?—क्या ?—"

"अंतिम बिदाई के लिये आया हूँ। आज की संध्या देखने का अवसर मुझे न मिलेगा। ४-६ घंटे में यह गढ़ ध्वस्त हो जायगा, और रामनगर की सेनाएँ प्रवेश करेंगी। कुछ डर मत करना। खोह में ही बनी रहना। कोई सेना आपका अपमान नहीं कर सकेगी। यदि आप भी कल रात को बाहर चली जातीं, तो बड़ा अच्छा होता।"

कुमुद कुछ क्षण चुप रही। स्वर को संयत करके बोली—"दुर्गा कल्याण करेंगी, विश्वास रखिए।"

"दुर्गा और आपका विश्वास ही तो मुझसे काम करवा रहा है," कुंजरसिंह ने कहा—"इसीलिये आपसे इसी समय बिदा माँगने आया हूँ—दुर्गा से मरते समय बिदा माँगूँगा।" कुंजर मुस्किराया। मुस्किराहट क्षीण थी, परंतु उसमें न-मालूम कितना बल था।

कुमुद की आँखें तरल हो गईं। ऐसी शायद ही कभी पहले हुई हों; जैसे गुलाब की पंखड़ी पर बड़े-बड़े ओस-कण ढलक आए हों।

उन्हें किसी तरह वहीं छिपाकर कुमुद कंपित स्वर में कहा—"मैं आपके साथ चलूँगी।"

"मेरे साथ !" सिपाही कुंजर बोला—"नहीं कुमुद, यह न होगा। गोलों की वर्षा हो रही है। उस संकट में आपको नहीं जाने दूँगा।"

"मैं चलूँगी।"

कुमुद की आँखों में अब आँसू न था। कुंजर ने दृढ़ता के साथ कहा—"देवीसिंह की महत्त्वाकांक्षा पर मुझे बलिदान होना है आपको नहीं। आप इसी खोह में रहें।"

"मैं दुर्गा के पास प्रार्थना करने जाती हूँ।" कुमुद बोली।

उसने पैर उठाया ही था कि एक गोला मंदिर की छत पर और आकर गिरा, और वह ध्वास्त हो गई।

कुंजर ने कहा—"वहाँ मत जाइए, दुर्गा का ध्यान यहीं करिए। मैं अब जाता हूँ। मरने के पहले मैं देवीसिंह को अपनी तोपों की कुछ करामात दिखलाना चाहता हूँ। उसे विजय सस्ती नहीं पड़ने दूँगा।"

"अभी मत जाओ," क्षीण स्वर में कुमुद ने कहा—"ज़रा ठहर जाओ। गोला-बारी थोड़ी कम हो जाने दो।" और बड़े स्नेह की दृष्टि से कुमुद ने कुंजर के प्रति देखा।

कुंजर उत्साह-पूर्ण स्वर में बोला—"मैं अभी थोड़ी देर और नहीं मरूँगा। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि देवीसिंह के सिर पर तलवार बजाकर फिर मरूँगा।"

कुमुद चुप रही। जल्दी-जल्दी उसकी साँस चल रही थी। आँखें नीची किए खड़ी थी। कुंजर भी चुप था। तोपों की धूम-धड़ाम आवाज़ें आ रही थीं।

कुंजर ने पूछा—"तो जाऊँ ?" परंतु गमनोद्यत नहीं हुआ।

कुमुद बोली—"जाइए, मैं पीछे-पीछे आती हूँ।"

"तब मैं न जाऊँगा।"

"यह मोह क्यों ?"

"मोह ?" कुंजर ने ज़रा उत्तेजित होकर कहा—"मोह ! मोह ! मोह न था। अब मरने का समय आ रहा है, इसलिये मुक्त होकर कह डालूँगा कि क्या था . ... ।" परंतु आगे उससे बोला नहीं गया।

कुमुद उसकी ओर देखने लगी।

कुछ क्षण बाद कुंजर ने कहा—"तुम मेरे हृदय की अधिष्ठात्री हो, मालूम है ?"

कुमुद का सिर न-मालूम ज़रा-सा कैसे हिल गया। आँखें फिर तरल हो गईं।

"तुम मेरी हो ?" आवेश-युक्त स्वर में कुंजर ने प्रश्न किया।

कुमुद ने कुछ उत्तर न दिया।

कुंजर ने उसी स्वर में फिर प्रश्न किया—"मैं तुम्हारा हूँ ?"

कुमुद नीचा सिर किए खड़ी रही।

कुंजर ने बड़े कोमल स्वर में प्रस्ताव किया—"कुमुद, एक बार कह दो कि तुम मेरी हो, और मैं तुम्हारा हूँ—संपूर्ण विश्व मानो मेरा हो जायगा, और देखना, कितने हर्ष के साथ मैं प्राण विसर्जन करता हूँ।" कुंजर को यह न जान पड़ा कि वह क्या कह गया।

कुमुद ने सिर नीचा किए ही कहा—"आप अपनी तोपों को जाकर सँभालिए। मैं दुर्गाजी से आपकी रक्षा और विजय के लिये प्रार्थना करती हूँ।"

कुंजर ने हँसकर कहा—"उसके विषय में तो दुर्गा ने पहले ही कुछ और तय कर दिया है।"

किसी पूर्व-स्मृति ने कुमुद के हृदय पर एकाएक चोट की। 'दुर्गा ने पहले ही कुछ और तय कर दिया है।'

इस वाक्य ने कुमुद के कलेजे में बर्छी-सी छेद दी। वह विस्फारित लोचनों से कुंजर की ओर देखने लगी। चेहरा एकाएक कुम्हला गया। होंठ काँपने लगे। उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे लड़खड़ाकर गिरना चाहती हो। सहारा लेकर बैठ गई। दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया।

कुंजर ने पास आकर उसके सिर पर हाथ रक्खा—"क्या हो गया है कुमुद? घबराओ मत। तुम दूसरों को धैर्य बँधाती हो। स्वयं अपना धैर्य स्थिर करो। संभव है, मैं आज की लड़ाई में बच जाऊँ।"

कुमुद फिर स्थिर हो गई। बोली—"मैं आज लड़ाई में तुम्हारे साथ ही रहूँगी। मानो।"

कुंजर कुछ क्षण कोई उत्तर न दे पाया। कुमुद ने फिर कहा—"वहाँ पास रहने से आपके कर्तव्य-पालन में विघ्न होगा, और मैं दुर्गा की प्रार्थना न कर सकूँगी।"

कुंजर बोला—"केवल एक बात मुँह से सुनना चाहता हूँ।"

बहुत मधुर स्वर में कुमुद ने पूछा—"क्या?"

"तुम मुझे भूल जाना।"

नीचा सिर किए हुए ही कुमुद ने कुंजर की ओर देखा। थोड़ी देर देखती रही। आँखों से आँसुओं की बह धार बह चली।

कंपित स्वर में कुंजरसिंह ने पूछा—"भुला सकोगी?"

कुमुद के होंठ कुछ कहने के लिये हिले, परंतु खुल न सके। आँखों से और भी अधिक वेग से प्रवाह उमड़ा।

कुंजर की आँखें भी छलक आईं! बड़ी कठिनाई से कुंजर के मुँह से ये शब्द निकले—"प्राणप्यारी कुमुद, सुखी रहना। एक बार मेरी तलवार की मूठ छू दो।"

तुरंत कुमुद उसके सन्निकट आकर खड़ी हो गई। एक उसका कोमल कर कुंजर की कमर में लटकती हुई तलवार की मूठ पर जा पहुँचा, और दूसरा उसके उन्नत भाल को छूता हुआ उसके कंधे पर जा पड़ा।

ऊपर गोले सायँ-सायँ कर रहे थे। तोपचियों ने कुंजरसिंह को पुकारा। कुंजर ने अपना एक हाथ कुमुद की पीठ पर धीरे से रक्खा, और फिर ज़ोर से उसे हृदय से लगा लिया। कुमुद ने अपना सिर कुंजर के कंधे पर रख दिया।

तोपचियों ने कुंजरसिंह को फिर पुकारा।

कुंजरसिंह कुमुद से धीरे से अलग हुआ। बोला—"यहीं रहना, बाहर मत आना। सुखी रहना।" कुमुद कुछ न बोल सकी।

खोह से बाहर जाते हुए पीछे एक बार मुड़कर कुंजर ने फिर कहा—"अगले जन्म में फिर मिलेंगे—अवश्य मिलेंगे अर्थात् यदि आज समाप्त हो गया तो।"

---

(६५)

उसी दिन राजा देवीसिंह ने देखा कि गोला-बारी केवल बिराटा की तरफ़ से ही नहीं हो रही है, किंतु अलीमर्दान की भी तोपें गोले उगल रही हैं।

रामनगर के नीचे के गहरे नाले के एक संकीर्ण भरके में लोचनसिंह के पास देवीसिंह और जनार्दन आए। देखते ही लोचनसिंह ने कहा—"मालूम होता है, अलीमर्दान और कुंजरसिंह का मेल हो गया है। अब तो यहाँ छिपे-छिपे नहीं लड़ा जाता।"

देवीसिंह पास आकर बोला—"हमारी तोपें रामनगर से अलीमर्दान की छावनी पर आग उछालेंगी। परंतु आड़-ओट के कारण कुछ हो नहीं पाता है। व्यर्थ ही गोला-बारूद ख़राब हो रहा है।

यदि किसी तरह अलीमर्दान को मुसावलीपाठे की ओर से हटा सकें, और बिराटा की गढ़ी को हाथ में कर लें, तो स्थिति तुरंत बदल जाय।"

मैं अलीमर्दान को मुसावलीपाठे से हटा दूँगा।" लोचनसिंह ने कहा।

देवीसिंह बोले—"आप भरकों को ही पकड़े रहिए। मैं किनारे-किनारे आड़-ओट लेता हुआ बिराटा पर धावा करता हूँ। आप भरकों में से दाब बोलकर हमारी टुकड़ी की रक्षा करते हुए बढ़िए। जनार्दन मुसावलीपाठे पर हल्ला बोलें। अलीमर्दान की सेना दो ओर से दबोची जाकर मैदान पकड़ेगी। तब ख़ूब खुलकर हाथ करना। इस बीच में हम लोग बिराटा गढ़ी को धर दबाएँगे, और वहाँ से अलीमर्दान का सफ़ाया कर देंगे।"

लोचनसिंह ने अस्वीकृति के ढंग पर कहा—"इस तरह की सलाहें सदा बनती और बिगड़ती रहती हैं। मैं तो इस तरह की लड़ाई लड़ते-लड़ते थक गया हूँ। लड़ना हो, तो अच्छी तरह से खुलकर लड़ लेने दीजिए। यहाँ बैठ-बैठ रेंगते-रेंगते फिट-फिट करने से तो मर जाना अच्छा है।"

देवीसिंह ने उत्तेजित होकर आश्वासन दिया—"नहीं, आधी घड़ी के भीतर ही इसी योजना पर काम होगा। परंतु पहले हमें नदी के किनारे अपनी टुकड़ी के साथ हो जाने दो। उसके बाद तुम ज़ोर का हल्ला बोलकर आगे बढ़ो। तुम्हारे हल्ले के पश्चात् तुरंत ही जनार्दन मुसावलीपाठे के पीछे से हमला करेंगे।"

लोचनसिंह ने कहा—"मैं अभी बढ़ता हूँ। दीवानजी अपनी जानें, परंतु आज आगे पैर रखकर पीछे हटाने का काम नहीं है।"

जनार्दन इस स्पष्ट व्यंग्य से आहत होकर बोला—"आप अपने

की खबर लिए रहिएगा, मेरे पैरों की उँगलियाँ एड़ी में नहीं लगी हैं।"

लोचनसिंह का शरीर जल उठा। परंतु देवीसिंह ने जनार्दन को तुरंत वहाँ से निर्दिष्ट कार्य के लिये भेज दिया।

---

(६६)

अलीमर्दान शीघ्र युद्ध समाप्त करना चाहता था। दीर्घ कालतक लगातार लड़ते रहना किसी पक्ष के भी मन में, हठ के रूप में, न था। छोटी रानी को कुछ समय पहले वह सहायक समझता था, परंतु अब वह उसके लिये भार-सी होती जा रही थीं। बिराटा की पद्मिनी के लिये उसका जी उत्सुकता से भरा हुआ था, देवीसिंह को यदि वह ४-६ कोस ही पीछे हटा सकता, और थोड़ा-सा अवकाश पाकर कुमुद को बिराटा से अपने साथ ले जाता, तो भी वह अपने को विजयी मान लेता। बिराटा और रामनगर के छोटे-से राज्य उसकी महत्त्वाकांक्षा के क्षितिज नहीं थे। उसकी राजनीतिक कल्पनाओं के केंद्र दिल्ली और कालपी थे।

अपनी ही उमंग और सनक से उत्तेजित होकर उसने अपने एक सरदार को बुलाया। कहा—"देवीसिंह पर ज़ोर का हमला करके उसे पीछे हटाना बहुत ज़रूरी है। बिराटा को भी आँख से ओझल नहीं होने देना चाहिए। यदि बिराटावालों के ध्यान में पूर्व दिशा की ओर भाग खड़े होने की समा गई, तो फिर कुछ हाथ नहीं लगेगा। सारी मेहनत बेकार हो जायगी।"

"जब तक कुंजरसिंह बिराटा में है," उसने मंतव्य प्रकट किया—"तब तक वहाँ की चिंता नहीं है। वह बराबर देवीसिंह की सेना पर गोला-बारी करता रहेगा।"

अलीमर्दान उत्तेजित स्वर में बोला—"मैं चाहता हूँ, अपने

सिपाही बढ़कर हाथ करें। देवीसिंह पीछे हटाया जाय। तुम रानी को साथ लेकर हमला करो। मैं एक दस्ता लेकर बिराटा पर धावा करता हूँ। आगे तक़दीर।"

सरदार ने अकचकाकर कहा—"सेना को टुकड़ों में बाँटना शायद हानि का कारण हो बैठे।"

"ज़रूर हो सकता है," अलीमर्दान ने चुटकी ली—"यदि हमारी फ़ौज इसी क़ायदे और पाबंदी के साथ लड़ती रही, तो।"

वह मुँह लगा नायक था, परंतु जब नवाब को उत्तेजित देखा, तब उसने विरोध करने का साहस नहीं किया। इसके सिवा कुंजर-सिंह के दो ओर से दबोचे जाने के प्रस्ताव में एक हिंसा-मूलक आशा थी, इसलिये वह शीघ्र सहमत हो गया। आक्रमण के सब पहलुओं पर बातचीत करके योजना को सांगोपांग तैयार कर लिया। रानी को इस प्रकार की लड़ाई के लिये सहमत कर लेना वह बिलकुल सहज समझता था।

रानी तो सहज सरल गति को घृणा के साथ शिथिलता की संज्ञा देने की मानो प्रतिभा रखती थीं। परंतु अलीमर्दान जानता था कि रानी को अपनी तैयार की हुई योजना को निर्णय के रूप में बतलाने से वह तत्काल उत्साह-पूर्ण सहमति प्राप्त न होगी, जो उसी के मुँह से अपनी योजना पर उसके निश्चय की छाप लगवाने से होती। इसलिये उन दोनो ने छोटी रानी के डेरे पर जाने का संकल्प किया।

अलीमर्दान और सरदार इस अभीष्ट से अपने स्थान से बाहर जाने को ही थे कि एक हरकारा सामने आया।

"हुज़ूर," हाँपता हुआ बोला—"दिल्ली से ख़ानदौरान का पत्र आया है।"

जैसे तेज़ी के साथ बहनेवाले नाले को एकाएक एक बड़ी चट्टान की

बाधा सामने मिल जाय, और उसके आगे की धार क्षीण हो जाय, उसी तरह अलीमर्दान सन्न-सा हो गया। सँभलकर उसने हरकारे से कहा—"कहाँ है ? लाओ।"

हरकारे ने अलीमर्दान के हाथ में चिट्ठी दी। दिल्ली का सिंहासन संकट में था। दिल्ली में ही दिल्ली का एक सरदार विमुख हो गया था। और सरदारों पर इतना भरोसा न था जितना अलीमर्दान पर। राज-पथ को स्वच्छ करने के लिये अलीमर्दान को तुरंत शेष सेना-समेत दिल्ली आने के लिये पत्र में लिखा था। पत्र पर बादशाह की मुहर थी। ख़ानदौरान ने उसे भेजा था। ख़ानदौरान के बनने-बिगड़ने पर अलीमर्दान का, इसी तरह के अनेक सरदारों की भाँति, भविष्य निर्भर था। इसलिये वह पत्र फ़रमान के रूप में था, और अनिवार्य था।

अलीमर्दान ने सरदार को पत्र या फ़रमान दे दिया। उसने पढ़कर मुस्किराकर कहा—"हुज़ूर को शायद पहले से कुछ मालूम हो गया था। कल के लिये लड़ाई का जो कुछ ढंग तय किया गया है, वह इस फ़रमान की एक लकीर के भी ख़िलाफ़ नहीं जा रहा है।"

अलीमर्दान भी उत्साहित होकर बोला—"इसमें संदेह नहीं कि इस परवाने से कल की लड़ाई को दोहरा ज़ोर मिलना चाहिए। भाई ख़ाँ, अगर लड़ाई चींटी की रफ़्तार से चली, तो कल ही या ज़्यादा-से-ज़्यादा दो दिन बाद हमें देवीसिंह से सुलह करनी पड़ेगी, और जीते-जिताए मैदान को छोड़कर चला जाना पड़ेगा। अंत में कुंजरसिंह और उनके देवी-देवता कहीं कूच कर देंगे, और फिर हज़ार लड़ाइयों का भी वह फल न होगा, जो कल की एक कसदार लड़ाई का होना चाहिए। क्या कहते हो ?"

सरदार ने उत्तर दिया—"इंशाअल्लाह कल ही सबेरे लीजिए, चाहे हमारी आधी सेना कट जाय।"

---

(६७)

जब से गोमती छोटी रानी के पास से आई, बोली कम; किसी गंभीर चिंता में, किसी गूढ़ विचार में डूबती-उतराती रही अधिक। छोटी रानी का अनुराग कथोपकथन में अधिक दिखलाई पड़ता था, परंतु गोमती हाँ-हूँ करके या बहुत साधारण उत्तर देकर अपनी विषय-रुचि-भर प्रकट कर देती थी।

छोटी रानी को रावटी बिराटा के उत्तर-पश्चिम में, एक गहरे नाले के छोटे-से द्वीप पर, थी। इसी नाले के छोर पर अलीमर्दान का डेरा था।

रात हो रही थी। गोमती को अपने अंगों में शिथिलता अनुभव हो रही थी। रानी बातचीत करने के लिये आतुर थीं। गोमती कोई बचाव न देखकर बातचीत करने के लिये तत्पर हो गई।

छोटी रानी बोलीं—"कई बार पहले भी कह चुकी थी कि इस लड़ाई में मैं स्वयं तलवार लेकर भिड़ूँगी। पुरुषों की ढीलढाल के कारण ही देवीसिंह अब तक मौज में हैं।"

"हाँ, सो तो ठीक ही है।" गोमती ने जमुहाई लेकर सहमति प्रकट की।

"मैं केवल यह चाहती हूँ कि देवीसिंह के सामने तक किसी तरह पहुँच जाऊँ।" रानी बोलीं।

गोमती ने सिर हिलाया।

रानी कहती गईं—"अब और अधिक जीने की इच्छा नहीं है, दलीपनगर के राज्य की भी आकांक्षा नहीं है, परंतु छलियों और अधर्मियों को अपने मरने से पहले कुचला हुआ देखने की अभिलाषा अवश्य है। देवीसिंह को रण में ललकार सकूँ, जनार्दन शर्मा का मांस कौओं-कुत्तों को खिला सकूँ, केवल यह ललक है। अलीमर्दान के पास इतनी सेना है कि यदि वह डटकर लड़ डाले, तो देवीसिंह की सेना नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। अवसर भी अच्छा है। बिराटा उस

छुलिया पर आग बरसा ही रहा है। इधर से एक प्रचंड हल्ला और बोल दिया जाय, तो युद्ध के सफल होने में विलंब न रहे। तब दलीपनगर फिर उसके सच्चे अधिकारी के हाथ में पहुँच जाय, नीच, शत्रु जनार्दन अपनी करनी को पहुँचे, स्वामिधर्मी सरदारों के जी में जी आवे, और बाग़ी भय के मारे दलीपनगर छोड़कर भागें। धर्म का राज्य हो, और सब लोग शांति के साथ अपना-अपना काम करें। कुंजरसिंह को एक अच्छी-सी जागीर मिल जाय, तो वह भी सुख के साथ अपना जीवन निर्वाह करे। परंतु बड़ी सरकार से कुछ न बना।"

इसी क्षण रानी ने अपने स्थान के एक कोने में दृष्टि डाली। वहाँ राज-पाट का कोई सामान न था। तुरंत उसे अपनी वर्तमान वास्तविक अवस्था का फिर ध्यान हो आया।

भराए हुए कंठ से वह बोलीं—"राज्य नहीं चाहिए, और न वह कदाचित् मिलेगा, परंतु हाथ में तलवार लेकर देवीसिंह के कवच और झिलम को अवश्य फाड़ूँगी, और फिर मरूँगी। इसे कोई नहीं रोक सकेगा, यह तो मेरे भाग्य में होगा, गोमती।"

गोमती की शिथिलता कम हो गई थी। शरीर में सनसनी थी, गले में कंप।

धीरे से बोली -"आप जो कुछ करें, मैं आपके संग में हूँ, मैं भी मरना चाहती हूँ। मुझे संसार में अब और कुछ भी देखने की इच्छा नहीं। कुमुद—बिराटा की देवी—सुखी रहे,यही लालसा है।"

"बिराटा की देवी!" रानी ने उत्तेजित होकर कहा—"दाँगी की छोकरी को देवी किसने बना दिया?"

गोमती ने भी ज़रा उत्तेजित स्वर में उत्तर दिया—"संसार उसे मानता है। और कोई माने या न माने, मैं उसे लोकोत्तर समझती हूँ। यदि इसी समय प्रलय होनेवाली हो, तो मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगी कि कम-से-कम एक वह बची रहे।"

रानी ज़ोर से हँसकर एकाएक चुप हो गईं, और तुरंत बोलीं—"नहीं, मैं प्रार्थना करूँगी कि मैं और देवीसिंह बचे रहें, और मेरी तलवार। मैं अपनी तलवार से गला पी लूँ, और फिर उसी तलवार को अपनी छाती में चुभो लूँ।"

"जनार्दन ?" गोमती ने क्षीण तीक्ष्णता के साथ पूछा।

"मेरे साथ हँसी मत करो।" रानी ने निषेध किया—"जनार्दन बचा रहेगा, तो उसके मारने के लिये रामदयाल भी तो बना रहेगा।"

गोमती का चेहरा एक क्षण के लिये तमतमा गया। तुरंत अपने को संयत करके बोली—"जब मैं स्वयं तलवार चला सकती हूँ, तब किसी के आसरे की कोई अटक नहीं है।" फिर तुरंत अपने असंगत उत्तर पर कुपित होकर बोली—"मैं अपनी बकवाद से आपको अप्रसन्न नहीं करना चाहती, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि—"

"क्या ?" रानी ने असाधारण रुचि प्रकट करते हुए पूछा—"किस बात में संदेह नहीं ?"

गोमती ने बिलकुल संयत स्वर में कहा—"इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं लड़ना चाहती हूँ उसके साथ, जिसने मेरा अपमान किया है, मेरे जीवन का नाश किया है—आपके साथ नहीं।"

रानी ने एक क्षण पश्चात् प्रश्न किया—"रामदयाल कहाँ है ?"

"मुझे नहीं मालूम।" गोमती ने उत्तर दिया।

"तुमसे कहकर नहीं गया ?"

"न। आपसे कुछ कहकर गए होंगे।"

"वह तुम्हारे साथ ब्याह करना चाहता है, अर्थात् यदि तुम उसकी जाति की होओ, तो।"

"और न होऊँ, तो ?"

"तो भी वह अपना घर बसाना चाहता है, तुम्हें यों ही रख लेगा।"

गोमती ने दाँत पीसे। बहुत धीरे और काँपते हुए स्वर में पूछा—"वह कौन जाति के हैं?"

"दासी-पुत्र है।" रानी ने प्रखर कंठ से उत्तर दिया—"दासी-पुत्रों की कोई विशेष जाति नहीं होती, उनका संबंध परस्पर हो जाता है। परंतु वह स्वामिभक्त है।"

"यहाँ तो मुझे सब दासी-पुत्र दिखलाई दे रहे हैं।" गोमती ने मुक्त होकर कहा—"मुझे तो कोई भी वास्तविक क्षत्रिय नहीं दिखलाई देता। क्षत्रियत्व की डींग मारनेवालों में क्षत्रिय का क्या कोई भी लक्षण बाक़ी है? अपने को क्षत्रिय कहनेवाला कौन-सा मनुष्य दुर्बलों को सबलों से, पतितों को उत्थितों से, पीड़ितों को पीड़कों से, निस्सहायों को प्रपन्नों से बचाने में अपने को होम देता है? मैं तो यह देख रही हूँ कि क्षत्रियत्व की डींग मारनेवाले अपने अहंकार की झंकार को बढ़ाने और पर-पीड़न के सिवा और कुछ नहीं करते।" फिर नरम स्वर में तुरंत बोली—"आपसे पूछती हूँ कि बिराटा के मुट्ठी-भर दाँगियों ने आपका या दलीपनगर का क्या बिगाड़ा है, जो उन पर प्रलय बरसाई जा रही है? क्या जिस प्रेरणा के साथ आप दलीपनगर के राजा या छलिया के साथ लोहा लिया चाहती हैं, उसकी आधी भी उमंग के साथ आप बिराटा को उस निस्सहाय कुमारी की कुछ सहायता कर सकती हैं?"

रानी कुछ कहना चाहती थीं कि रामदयाल आ गया। उसके चेहरे पर उमंग की छाप थी, एक तीक्ष्ण दृष्टि से उसने रानी की ओर देखा, और आधे पल एक कोने से गोमती को देखकर बोला—"कल बहुत ज़ोर की लड़ाई होगी, ऐसी कि आज तक कभी किसी ने न देखी और न सुनी होगी।"

क्रुद्ध स्वर में रानी ने कहा—"तू उस लड़ाई में कहाँ होगा? ले जा इस लड़की को संसार के किसी कोने में, और कर अपना जन्म

सफल। मरने-मारने के लिये मुझे अब किसी साथी की जरूरत नहीं।"

किसी भाव के कारण गोमती का गला रुद्ध हो गया। कुछ कहने को ही थी कि छोटी रानी के स्वभाव और अभ्यास से परिचित रामदयाल मानो दोनो ओर के वारों के बीच में ढाल बन गया हो। बोला—"नवाब साहब एक बहुत महत्त्व-पूर्ण विषय पर बातचीत करने के लिये आपके पास आए हैं। यहीं खड़े हैं। तुरंत मिलना चाहते हैं। लिवा लाऊँ ?"

रानी ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। कुछ ही पल बाद रामदयाल अलीमर्दान को लिवा लाया। रानी ने साधारण-सी आड़ कर ली, और रामदयाल ने उसके बैठने के लिये आसन रख दिया।

---

(६८)

"कल देवीसिंह को उसके सब पापों का फल मिलेगा महारानी साहब।" अलीमर्दान ने कहा—"चाहे इस लड़ाई में मेरी आधी फ़ौज ख़त्म हो जाय, पर मोर्चा लिए विना चैन न लूँगा। ख़ुदा ने चाहा, तो कल शाम को इस वक़्त हम लोग रामनगर और बिराटा दोनो पर पूरा अधिकार कर लेंगे।"

रानी ने रामदयाल के द्वारा कहलवाया—"मुझे आपसे यही आशा है। मेरी समझ में हल्ला रात में ही बोल दिया जाय। सेना को कई दलों में बाँट दिया जाय। कुछ तो समय-कुसमय के लिये तैयार बने रहें, बाकी दल कई ओर से चढ़ाई करके डटकर लड़ जायँ।"

अलीमर्दान बोला—"मैंने भी कुछ इसी तरह का उपाय सोचा है। मैं एक बिनती करने आया हूँ।"

रामदयाल ने पूछा—"क्या आज्ञा है ?"

"बिनती यह है" अलीमर्दान ने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—"कि इस धावे का सेनापतित्व महारानी साहब और मेरे नायक के हाथ में रहे। महारानी साहब की शूरता हमारे सैनिकों की छाती को लोहे का बना देगी।"

रानी ने रामदयाल के द्वारा कहा—"आपकी आज्ञा का पालन किया जायगा। आप न भी चाहते, तो भी मैं सेना के आगे रहकर अपने पद और मर्यादा का मन मनाती।"

रामदयाल कहने में शायद कुछ भूल गया था, इसलिये आड़-ओट की अपेक्षा न करके रानी स्वयं बोलीं—"कल मैं बतलाऊँगी कि क्षत्राणी इसे कहते हैं।"

इस नए अनुभव से अलीमर्दान एक क्षण के लिये ज़रा चंचल हुआ।

रानी ने अपनी सहज उत्तेजना की साधारण सीमा से आगे बढ़-कर कहा—"मैं कल इस समय आपसे बात करने के लिये जिऊँ या न जिऊँ, परंतु वह काम करूँगी, जिसे स्मरण करके पुरुषों के भी रोमांच खड़े हो जाया करेंगे।"

रानी का गला रुँध गया। रुँधे हुए स्वर में बोलीं—"मैंने कपटा-चारियों के छल और अधर्म के कारण जो कुछ सहा है, उसे मेरे ईश्वर जानते हैं। मैंने कदाचारियों और विद्रोहियों के सामने कभी सिर नहीं नवाया, और न कभी नवाऊँगी। अभिमान के साथ उत्पन्न हुई थी, और अभिमान के ही साथ मरूँगी।" रानी अपने भरे हुए गले और आंदोलित हृदय को सँभालने के लिये ज़रा ठहरीं। अलीमर्दान इस उद्गार का कोई उपयुक्त उत्तर सोचने लगा। रानी अपने को न सँभालकर सिसककर बोलीं—"मेरे स्वामी वैकुंठवास की तैयारी कर रहे थे; निर्दयी राक्षसों ने उनके सिरहाने बैठे-बैठे एक प्रपंच-जाल रचा, और उसमें दलीपनगर के मुकुट को फाँसकर उसे पद-दलित

किया। यदि इन आततायियों को मैंने दंड न दे पाया, तो मेरे जीवन और मरण दोनों व्यर्थ हुए।"

रामदयाल अपने कोने से हटकर रानी के पास आ गया। सांत्वना देने लगा—"आप रोएँ नहीं। थोड़ी-सी घड़ियों के बाद ही घमासान होगा। उसमें जो कोई जो कुछ कर सकता है, करेगा।"

अलीमर्दान को कोई विशेष उत्तर याद न आया, तो भी बोला—"आपके रोने से हम सबको बहुत रंज होगा। आप भरोसा रक्खें, कल लड़ाई का सब नक़शा बदल जायगा। आपकी बहादुरी हमारे सब सिपाहियों को शहीद बनाने का बल रखती है।"

रानी ने गला साफ़ करके कर्कश स्वर में कहा—"मेरे पास जो थोड़े-से सरदार बचे हैं, वे धावे में मेरे निकट रहेंगे। मैं लड़ूँगी, वे लड़ेंगे। मैं आगे रहकर लड़ूँगी, परंतु सेना का संचालन आप अपने सरदार के हाथ में दीजिए। मैं जिस दिशा से डाकू देवीसिंह का व्यूह वध करूँगी, उस ओर फिर शायद ही लौटूँ। मुझे सैन्य-संचालन का अवकाश न मिलेगा।"

अलीमर्दान तुरंत बोला—"सरदार आपके नज़दीक ही रहेंगे।"

गोमती ने रामदयाल से ऐसे स्वर में पूछा, जिसे अलीमर्दान सुन सके—"नवाब साहब कहाँ रहेंगे?"

अलीमर्दान इस प्रश्न के लिये तैयार था। तपाक से बोला—"समय-कुसमय के लिये जो एक बड़ा दल तैयार रहेगा, उसका संचालन मैं करूँगा। उसके सिवा मुझे बिराटा की भी थोड़ी-सी चिंता है। बिराटा का राजा हम लोगों से लड़ता रहा है। एक-दो दिन से ज़रूर वह देवीसिंह की तरफ़ ध्यान दिए हुए है, पर उसकी ओर से हम लोगों को असावधान न रहना चाहिए। यदि उसने पीछे से हमारी सेना को धर दबाया, तो सब बना-बनाया बिगड़ जायगा।"

गोमती ने सीधा अलीमर्दान को संबोधन करके कहा—"आप बिराटा के राजा की संधि-प्रार्थना को क्यों स्वीकार नहीं कर लेते? आप तो बहुत शक्तिशाली नवाब हैं। आपको भगवान् ने सब कुछ दिया है, तो भी जो कुछ थोड़ी-बहुत धन-संपत्ति बिराटा के राजा के पास बची है, वह आपको भेंट कर देगा। आप उसे क्षमा कर दें।"

अलीमर्दान ने रामदयाल से संकेत में पूछा—"यह कौन है।"

रामदयाल ने बहुत धीरे से अलीमर्दान को उत्तर दिया—"यह वहाँ रही हैं। इस समय महारानी की आश्रित हैं, हम लोगों के पक्ष की हैं। मैंने एक बार कहा था न?"

इसे रानी ने चाहे सुना हो, चाहे न सुना हो, गोमती ने सुन लिया। बोली—मैं भी महारानी के पास रहकर लड़ूँगी। ठाकुर की बेटी हूँ। अपना कर्तव्य पालन करूँगी। इससे अधिक जानने से आपको कोई लाभ न होगा।"

अलीमर्दान ने कहा—"यों तो मैं महारानी साहब के इशारे पर नाचने को तैयार हूँ, परंतु बिराटा के राजा ने जो गुस्ताख़ी की है, उसका दंड देना ज़रूरी जान पड़ता है। परंतु यदि महारानी साहब का हुक्म होगा. तो मैं उसे भी माफ़ कर दूँगा।"

रानी विना किसी उत्साह के बोलीं—"हमारा लक्ष्य दलीपनगर के बाग़ी हैं। देवीसिंह और उसके सहायक जनार्दन के टुकड़े उड़ाना हमारा कर्तव्य है। बिराटा को हम लोग इस समय छोड़ दें, तो बहुत अच्छा होगा। बिराटा के राजा की उस लड़की पर कोई वार न होना चाहिए। आगे जैसी नवाब साहब की मर्ज़ी हो।"

अलीमर्दान ने कहा—"आपकी आज्ञा हो, तो मैं स्वयं थोड़े-से आदमियों को अपने साथ बिराटा ले जाऊँ, और वहाँ के ठिकानेदार को क़ायदे के साथ वहाँ का राजा बना आऊँ। मेरा उसके साथ कोई वैर नहीं है।"

"न," रानी ने उत्तर दिया—"आप यदि उस ओर चले जायँगे, तो यहाँ गड़बड़ फैलने का डर है। आप यदि लड़ाई में आरंभ से ही भाग न लें, तो अपनी कुमुक के साथ निकट ही बने रहें। आप अभी बिराटा न जायँ। रामदयाल को आप चाहें, तो अपने साथ रक्खें।"

"न," रामदयाल ने तेज़ी के साथ कहा—"महारानी जहाँ होंगी, वहीं मैं भी रहूँगा। मैं भी लड़ना जानता हूँ। महारानी के शत्रुओं को मैं भी पहचानता हूँ।"

अलीमर्दान "बहुत अच्छा" कहकर वहाँ से चल दिया। जाते-जाते कहता गया—"थोड़ी देर में ही धावा कर दिया जायगा। थोड़ा-सा आराम करके तयार हो जाइए।"

सरदार अलीमर्दान के साथ आया था, और साथ ही गया। डेरे पर पहुँचने पर बोला—"तो क्या हुज़ूर बिराटा पर हमला न करेंगे।"

"कौन कहता था ?" अलीमर्दान ने रुखाई के साथ कहा—"आधी रात के बाद ही मैं एक दस्ता लेकर बिराटा की ओर जाता हूँ। शायद विना किसी जोखिम के बिराटा में दाख़िल हो जाऊँगा। परंतु मेरे यहाँ से कूच करने के पहले तुम्हारी तैयारी में किसी तरह की कसर न रहनी चाहिए। मैं अगर पद्मिनी को लेकर जल्द लौट पड़ा, तो तुम्हारी मदद के लिये आ मिलूँगा ; अगर देर लग गई, तो मेरी बाट मत देखना, और न मेरी चिंता करना। अब यों भी सारी लड़ाई की ज़िम्मेदारी तुम्हारे ऊपर रहती है। शायद ऐसा मौक़ा आ जाय कि मुझे पद्मिनी को लेकर भाडेर चला जाना पड़े, तो मामूली शर्तों के साथ देवीसिंह के साथ संधि करके चले आना। दिल्ली से लौटकर फिर कभी देखेंगे, परंतु बिराटा का मोर्चा हाथ से न जाने देना चाहिए। जब तक बिराटा से मेरे लौट पड़ने की ख़बर तुम्हें न लगे, तब तक लड़ाई जारी रखना।"

---

(६६)

राजा देवीसिंह ने भी संध्या होने के उपरांत, दूसरे दिन की समर-योजना के सब छोटे-बड़े अंगों पर विचार करने के बाद, यह तय किया कि प्रातःकाल के लिये न ठहरकर आधी रात के बाद ही लड़ाई आरंभ कर दी जानी चाहिए। लोचनसिंह संतुष्ट था।

देवीसिंह ने इस योजना में बिराटा को भी स्थान दिया। उसने अपना निश्चय जिन शब्दों में प्रकट किया था, उसका तात्पर्य यह था—बिराटा व्यर्थ ही हमारे कार्य की सरलता में बाधा डालता है। प्रातःकाल होने के पूर्व ही उस पर अधिकार कर ही लेना चाहिए। फिर दिन में रामनगर और बिराटा दोनो गढ़ों की तोपों के गोले अलीमर्दान की सेना पर फेके जायँ। इधर लोचनसिंह और जनार्दन खुले में उसकी सेना के पैर उखाड़ दें।

दलीपनगर की सेना, खुली लड़ाई की आशा की उमंग में, तीन दलों में विभक्त होकर, सावधानी के साथ, आधी रात के बाद, आगे बढ़ी। एक दल उत्तर की ओर नदी के किनारे-किनारे बिराटा की ओर चला। इसका नायक देवीसिंह था। दूसरा दल जनार्दन के सेनापतित्व में नदी के भरकों और किनारों को देवीसिंह के दल का ओट बनता हुआ उसी दिशा में बढ़ा। लोचनसिंह का दल पश्चिम और उत्तर की ओर से चक्कर काटकर अलीमर्दान की सेना को आगे से युद्ध में अटका लेने और पीछे से घेरकर दबा लाने की इच्छा से उमड़ा। बिराटा की गढ़ी से रामनगर पर उस रात कभी थोड़े और कभी बहुत अंतर पर गोले चलते रहे, परंतु देवीसिंह के पूर्व-निर्णय के अनुसार रामनगर से उन तोपों का जवाब नहीं दिया जा रहा था। रामनगर के तोपचियों को आदेश दिया जा चुका था कि जब एक बँधा हुआ संकेत उन्हें अपनी क्षेत्रवर्ती सेना से मिले, तब वे तोपों में बत्ती दें।

लोचनसिंह ने उस रात, देवीसिंह के आदेश के अनुसार, बहुत सावधानी के साथ कूच किया। उसने अपने सैनिकों से कहा था—"बिल्ली की तरह दबे हुए चलो, और समय आने पर बिल्ली की तरह ही झपाटा मारो।" थोड़े देर तक लोचनसिंह और उसके सैनिकों ने इस सतर्क वृत्ति का पूरी तरह पालन किया; परंतु पग-पग पर लोचनसिंह को उसका अधिक समय तक पालन कर पाना दुष्कर और दुस्सह जान पड़ने लगा। मार्ग बहुत बीहड़ और ऊँचा-नीचा था। सावधानी के साथ उस पर चलना संभव न था, किंतु अनिवार्य था। परंतु जहाँ मार्ग सुथरा और विस्तृत मैदान पर होकर गया था, वहाँ सावधानी का व्रत बनाए रखना स्थिति की व्यग्रता और लोचनसिंह की प्रकृति के विरुद्ध था। इसलिये लोचनसिंह अपने दल के आगे निरुद्ध उमंग से प्रेरित हुआ सपाटे के साथ बढ़ने लगा। निकट भविष्य में किसी तुरंत होनेवाले भयंकर विस्फोट की कल्पना से उन पके-पकाए सैनिकों का कलेजा धक-धक नहीं कर रहा था, परंतु पैर के पास ही किसी छोटी-सी असाधारण आकस्मिक ध्वनि के होते ही सैनिक चौकन्ने हो जाते थे, कभी-कभी थर्रा भी जाते थे, और आधे क्षण में उनका धैर्य फिर उनके साथ हो जाता था।

इस तरह से वे लोग क़रीब आध कोस बढ़े होंगे कि लोचनसिंह एकाएक रुक गया, और ज़मीन से घुटनों और छाती के बल सट गया। उसके पीछे आनेवाले सैनिक एकाएक खड़े हो गए। उनके चलते रहने से जो शब्द हो रहा था, वह मानो सिमटकर केंद्रित हो गया, और एक बड़ी गूँज-सी उस जंगल में उठकर फैल गई।

आकाश में चंद्रमा न था। बड़े-बड़े और छोटे-छोटे तारे प्रभा में डूबते-उतराते-से मालूम पड़ते थे। छोटे तारे टिमटिमा रहे थे। तारिकाएँ अपनी रेखामयी आभा आकाश पर खींच रही थीं। पक्षी भरभराकर वृक्षों से उड़-उड़ जाते थे। आकाश के तारों की

टिमटिमाहट की तरह झींगुरों की झंकार अनवरत थी। लोचनसिंह ने अपने पास खड़े हुए सैनिक का पैर दबाया। लोचनसिंह के इस असाधारण ढंग से उस सैनिक को तुरंत यह धारणा हुई कि कोई बड़ा और विकट संकट सामने है। वह भी घुटनों और छाती के बल पृथ्वी से सट गया। लोचनसिंह के पास अपना कान ले जाकर धीरे से बोला—"दाऊजू, क्या बात है?"

"सामने और दाएँ-बाएँ से कोई आ रहा है। शायद अलीमर्दान की सेना बढ़ी चली आ रही है—बड़ी सावधानी के साथ।"

"तो क्या किया जाय?"

"ज़रा ठहरो। पीछेवालों को तुरंत संकेत करो कि वे सब इसी तरह पृथ्वी से सट जायँ।"

उस सैनिक ने धीरे से यह संकेत अपने पीछे के सैनिकों में पहुँचाया। परंतु, जैसा कि बिलकुल स्वाभाविक था, इस संकेत के सब ओर पहुँचने में काफ़ी विलंब हो गया। जो लोग मार्ग की दुर्गमता के कारण आगे-पीछे हो गए थे, उन तक तो वह संकेत पहुँचा ही नहीं।

कुछ ही क्षण बाद लोचनसिंह को सामने से आनेवाला शब्द एकाएक बंद होता हुआ जान पड़ा, और उसके दाहनी ओर, नदी की दिशा में, बंदूक़ की आवाज़ सुनाई पड़ी।

लोचनसिंह ने अपने पासवाले सैनिकों से धीरे से कहा—"अभी हिलना-डुलना मत।"

जिस दिशा में बंदूक़ चली थी, उस दिशा में शोर हुआ। एक ओर से कालपी और दूसरी ओर से दलीपनगर की जय का शब्द परस्पर गुँथ गया। तब भी लोचनसिंह का हाथ बंदूक़ या तलवार पर नहीं गया।

पास पड़े हुए सैनिक ने लोचनसिंह से पूछा—"दाऊजू, क्या आज्ञा है?"

लोचनसिंह ने कड़वाहट के साथ उत्तर दिया—"चुप रहो। जब तक मैं कुछ न कहूँ, तब तक बिलकुल चुप रहो।"

जिस दिशा में जय की गूँज उठी थी, उस दिशा में बंदूक़ों की नाल से निकलनेवाली लौ प्रतिक्षण बढ़ने लगी, और वह नदी की ओर बढ़ने लगी।

लोचनसिंह ने धीरे से अपने पास के सैनिक से कहा—"जान पड़ता है, अलीमर्दान की सेना सब ओर से बढ़ती चली आ रही है। इस समय जनार्दन की टुकड़ी के साथ मुठभेड़ हो गई है होने दो। बोलो मत। उसका करतब थोड़ी देर देख लिया जाय।"

पास के सैनिक ने कोई उत्तर नहीं दिया। परंतु पीछे के सैनिकों में से कुछ चिल्ला उठे—"दाऊजू, क्या आज्ञा है ?"

इस प्रकार की आवाज़ उठते ही सामने से कुछ बंदूक़ों ने आग उगली। लोचनसिंह के पीछेवाले सैनिकों ने उत्तर दिया, परंतु आगे की क़तार जो पृथ्वी से सटी हुई थी, उसने कुछ नहीं किया। लोचनसिंह के उन साथियों की बंदूक़ों की गोलियाँ वायु में फुफकार मारती हुई कहीं चल दीं, किसी के बाल को भी भी उन्होंने न छुआ होगा; परंतु अलीमर्दान की सेना के उस दल की बाढ़ ने लोचन-सिंह के कई सैनिकों को हताहत कर दिया। इसका पता लोचनसिंह को उनके कराहने से तुरंत लग गया।

बहुत शीघ्र लोचनसिंह को दाहनी ओर लड़ाई ने गहरा रंग पकड़ा। उसकी टुकड़ी का एक भाग और जनार्दन की सेना का बड़ा खंड उसी केंद्र पर सिमट पड़े। देवीसिंह नदी-किनारे पर, अपने दल को लिए हुए, स्थिर हो गया।

लोचनसिंह के निकटवर्ती सैनिक सोचने लगे कि वह कहीं मारा तो नहीं गया; नहीं तो ऐसा किं-कर्तव्य-विमूढ़ क्यों हो जाता? अलीमर्दान की सेना के उस भाग ने, जो लोचनसिंह के सामने था,

सोचा कि इस ओर क्षेत्र रीता है। वह बढ़ा। जब वह लोचनसिंह के बहुत पास आ गया, तब तारों के प्रकाश में लोचनसिंह को एक बढ़ता हुआ झुरमुट-सा जान पड़ा।

लोचनसिंह ने कड़ककर कहा—"दागो।"

पृथ्वी से सटे हुए उसके सैनिकों ने बंदूकों की बाढ़ एक साथ दागी। पीछे के सैनिकों ने भी गोली चलाई। इस बाढ़ से कालपी की सेना का वह भाग बिछ-सा गया। थोड़ी देर में बंदूक़ों को फिर भरकर लोचनसिंह अपने उस दल को झपटकर लेकर बढ़ा। कालपी की सेना के योद्धा भी इस मुठभेड़ के लिये सन्नद्ध थे। एक क्षण में ही बंदूक़ों ने आग और लोहा उगला। फिर धीरे-धीरे बंदूक़ों की ध्वनि कम और तलवारों की झनझनाहट अधिक बढ़ने लगी। लोचनसिंह पल-पल पर अपने दल के एक भाग के साथ आगे बढ़ रहा था, परंतु वह नदी से बराबर दूर होता चला जा रहा था। उसके दल का दूसरा भाग नदी की ओर कटकर आगे-पीछे होता जाता था। उसी ओर से जनार्दन का दल ख़ूब घमासान करने में लग पड़ा था। कालपी की सेना का भी अधिकांश भाग इसी ओर पिल पड़ा।

कुछ घड़ियों पीछे अलीमर्दान के सरदार को मालूम हुआ कि दलीपनगर की एक सेना का भाग उसके पीछे घूमकर युद्ध करता हुआ बढ़ रहा है। वह धीरे-धीरे पीछे हटने लगा। परंतु लोचनसिंह के बढ़ते हुए दबाव का विरोध करने के लिये उसे थम जाना पड़ा। युद्ध कभी थमकर और कभी बढ़-घटकर होने लगा। अँधेरे में मित्र-शत्रु की पहचान लगभग असंभव हो गई। सैनिक केवल एक धुन में मस्त थे—"जब तक बाँह में बल है, अपने पासवाले को तलवार के घाट उतारो।"

---

(१००)

मुसलमान नायक छोटी रानी, गोमती और रामदयाल को साथ-साथ जिस ओर और जिस प्रकार घुमाना चाहता था, वे नहीं घूम पाते थे। इसलिये उसकी प्रगति को बड़ी बाधा पहुँच रही थी। तो भी वह स्थिर-चित्त होने के कारण धैर्य और चतुरता के साथ सैन्य-संचालन कर रहा था। जिस स्थान पर लोचनसिंह के दल के साथ उसकी टुकड़ी की मुठभेड़ हो गई थी, वहाँ पर वह न था। वह जनार्दन के मुक़ाबले में था।

लड़ाई के आरंभ में जितना उत्साह गोमती के मन में था, उतना दो घड़ी पीछे न रहा। वह बच-बचकर युद्ध में भाग ले रही थी, और रानी बढ़-बढ़कर। रामदयाल प्रायः गोमती के साथ रहता था। रानी को बार-बार इस बात का बोध होता था, और बार-बार वह एक अनुदृष्टि क्रोध से भभक उठती थीं। परंतु थोड़ी ही देर में उन्हें भी भान होने लगा कि हाथ उस तेज़ी के साथ काम नहीं करता, जैसा प्रारंभ में कर रहा था। वह भी पीछे हटीं। मुसलमान नायक की एक चिंता कम हुई।

वह सँभलकर, डटकर लड़ना चाहता था। परंतु अँधेरी रात में, अपनी इच्छा के ठीक अनुकूल, सारी सेना का संचालन करना उसके लिये क्या, किसी के लिये भी असंभव था। इधर-उधर सारी सेना गुथ गई, कोई नियम या संयम नहीं रहा। केवल लोचनसिंह के साथ सैनिकों का एक खंड और देवीसिंह का दल इस पक्ष का, और मुसलमान नायक के निकटवर्ती सैनिकों का भाग और बिराटा की ओर अग्रसर होता हुआ अलीमर्दान का दल उस पक्ष का, ये लड़ाई में कोई बड़ा भाग न लेने के कारण कुछ व्यवस्थित थे। अलीमर्दान का दूसरा दल कुछ दूरी पर मुस्तैद खड़ा था। वह बिलकुल सुव्यवस्थित और किसी अवसर की ताक में था। परंतु सभी दलों

उमंग के साथ अपने-अपने कार्य में दत्त-चित्त हो जाने के बाद शीघ्र प्रातःकाल होने के लिये लालायित हो रहे थे।

रामनगर से बिराटा पर तोपें नहीं चल रही थीं। बिराटा से इसी कारण उत्तरोत्तर तोपों की बाढ़ बढ़ने लगी। कोई निशाना चूकता था, और कोई लगता। रामनगर की अस्त-व्यस्त दीवारें और दृढ़ बुर्ज धीरे-धीरे भर-भराकर टूट रहे थे। गढ़वर्ती सैनिकों की चिंता पल-पल पर बढ़ती जा रही थी, परंतु देवीसिंह का बँधा हुआ संकेत अभी तक नहीं मिला था।

देवीसिंह ठीक नदी-किनारे था। दोनो किनारों के भीतर तोपों और बंदूक़ों की आवाज़ दुगुनी-चौगुनी होकर गर्जन कर रही थी। घायलों का चीत्कार धूम-धड़ाके से मथे हुए सन्नाटे को बीच-बीच में चीर-चीर-सा देता था।

बेतवा अपने अक्षुण्ण कलरव के साथ बहती चली जा रही थी। तारों का नृत्य बेतवा की जल-राशि पर अनवरत रूप से होता जा रहा था।

राजा ने अपने पास खड़े हुए एक सरदार से कहा—"यदि कुंजरसिंह थोड़े समय के लिये भी अपनी मूर्खता के साथ संधि कर ले, तो आज का युद्ध अलीमर्दान के लिये अंतिम हो जाय।" एक क्षण बाद बोला—"अज रात शायद रामनगर से तोप चलाने का अवसर ही न आवे।"

सरदार ने कोई मंतव्य प्रकट नहीं किया, परंतु प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"इसलिये कि" देवीसिंह ने उत्तर दिया—"रामनगर से तोप चलते ही बिराटा का नदी-कूल भी बिलकुल सतर्क हो जायगा, और हम लोग आसानी से बिराटा की गढ़ी में प्रवेश न करने पाएँगे।"

इसके बाद देवीसिंह अपने दल को लेकर बहुत धीरे-धीरे और सावधानी के साथ बिराटा की ओर बढ़ा।

---

(१०१)

रात की इस उथल-पुथल ने सचेत बिराटा को और भी सचेत कर दिया। बिराटा में थोड़े-से सैनिक थे। सावधान बने रहने में ही उनकी रक्षा थी। उस रात के भयानक हल्ले और असाधारण आक्रमण ने बिराटा के प्रत्येक शस्त्रधारी को किसी अनहोनी के लिये बिलकुल तैयार कर दिया। उस रात जब तक देवीसिंह और अलीमर्दान के दलों में टक्कर नहीं हुई थी, तब तक कुंजरसिंह की तोपें केवल इस बात का प्रमाण देती रहीं कि उनके तोपची सोए नहीं हैं, परंतु जब बंदूकों की बाढ़ें, उन दोनो दलों की, भभकीं तब किसी संकट के तुरंत सिर पर आ पड़ने की आशंका ने कुंजरसिंह को बहुत सक्रिय कर दिया।

आक्रमणों के होने के कुछ घड़ी पीछे ही अलीमर्दान अपने दल के साथ बिराटा के नीचे, नदी के किनारे, आ गया। उसके बिलकुल पास ही देवीसिंह का दल भी आकर ठिठक गया था। परंतु दोनो इतनी सावधानी से चले थे कि एक ने दूसरे की गति को नहीं समझ पाया था। तो भी बिराटा के सतर्क योद्धा की दृष्टि से उन दोनो की गति-विधि न बच पाई। उसने तुरंत अपने गढ़ में इसकी सूचना दी। अभी तक देवीसिंह और अलीमर्दान की सेनाएँ एक दूसरे के सम्मुख मोर्चा लिये हुए डट रही थीं, इसलिये भी बिराटा के थोड़े-से मनुष्यों की कुशल-क्षेम बनी रही, परंतु उस प्रहरी को मालूम हो गया कि उनमें से एक का, कदाचित् दोनो का, लक्ष्य बिराटा है। यही समाचार तुरंत बिराटा के भीतर पहुँचाया गया।

बिराटा के सैनिक बारी-बारी से थोड़ी देर के लिये शस्त्र लगाए

हुए ही विश्राम करते आए थे। उन्हें बहुत दिन से यथेष्ट भोजन न मिला था। फटे कपड़ों से अपना शरीर ढाँके थे। चोटों की मरहम-पट्टी अपने हाथ से ही कर लेते थे—वह भी अपने फटे कपड़ों के चिथड़े फाड़-फाड़कर। जो कुछ उनके पास था, वह तोप और बारूद पर न्योछावर कर चुके थे, और कर रहे थे। जो कुछ हथियार उनके पास थे, उन्हें अच्छी हालत में रखने की चेष्टा करते थे, परंतु उनकी भी बहुतायत न थी।

हथियार उनके साफ़-सुथरे थे, परंतु शरीर धूल और पसीने में ऐसे सने हुए कि उनकी त्वचा के प्राकृतिक रंग का एकाएक पता लगाना कठिन हो गया था। आँखें धँस गई थीं। गाल की हड्डियाँ तीव्रता के साथ ऊपर उठ आई थीं। बाल बढ़ गए थे।

हृदय की ज्वाला आँखों में आ बैठी थी। परंतु जगली पशुओं की तरह दिखाई देनेवाले उन लोगों की आँखों में कभी-कभी जो मर मिटने की दृढ़ता झलक उठती थी, वह निराशा के घास-फूस के ढेर में ज्वलंत अंगार की तरह थी। टूटी-फूटी गढ़ी पर, इन अस्त-व्यस्त शरीर-रखवालों के जीवट की आभा को ग्रसने के लिये, राहु-केतु की तरह दो तरफ़ से, दो अलग-अलग उद्देश्यों से प्रेरित होकर, दलीप-नगर और कालपी के सुसज्जित योद्धा पिल पड़ने को ही थे। दो वक्र रेखाओं की तरह वे दोनो एक ही केंद्र पर सिमट पड़ने के लिये खिंचने को ही थे।

प्रहरी के समाचार को पाते ही, जैसे प्रचंड झंझावात से पल्लव झकझोर खा जाते हैं, वैसे ही सबदलसिंह और उनकी सेना, जिसे फटियल लड़ाकुओं की भीड़ की उपाधि से ही संबोधित किया जा सकता है, विश्राम और थकावट से उचटकर सजग हो गई, और एक मार्के के ठौर पर इकट्ठी हो गई। सबदलसिंह थोड़ा ही सो पाया था। धँसी हुई आँखों को पोंछता-पोंछता आ गया। कुंजरसिंह भी अपने

तोपचियों को कुछ सलाह देकर उसी समय आया। एक बड़े पीपल के पेड़ के नीचे वे सब इकट्ठे हो गए। कुंजरसिंह ने कहा—"आज हम लोगों की विजय-रात्रि है।"

"कदाचित् अंतिम भी।" सबदलसिंह बोला।

"क्यों? कुंजरसिंह ने ज़रा आश्चर्य के साथ कहा—"मैं यदि ग़लती नहीं कर रहा हूँ, तो रामनगर की गढ़ी मेरी तोपों ने ध्वस्त कर दी है। अलीमर्दान और देवीसिंह की सेनाएँ सबेरा होते-होते आपस में लड़-कटकर समाप्त हुई जाती हैं। तब कल विजय अवश्यं-भावी है।"

सबदलसिंह ने क्षीण मुस्किराहट के साथ उत्तर दिया—"हमें जो समाचार अभी मिला है, वह किसी दूसरे भविष्य की ही सूचना देता है। अलीमर्दान की सेना का एक बड़ा भाग किनारे पर आ पहुँचा है। दूसरी ओर से देवीसिंह का एक दल भी निकट आ गया है। रामनगर पर, गोले चलाने में कोई बुद्धिमानी नहीं जान पड़ती।"

ज़रा उद्धत स्वर में कुंजरसिंह ने कहा—"तब किस बात में बुद्धिमानी है?"

"मरने में।" तीक्ष्णता के साथ सबदलसिंह बोला—"मरने में। देवीसिंह से कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सकती। उस ओर से हम बिलकुल निराश हो चुके हैं। एक-एक पल हमारे लिये बहुमूल्य है। मालूम नहीं, कब अलीमर्दान की सेना यहाँ घुस पड़े, और हमारी मर्यादा पर आ बने।"

कुंजरसिंह ने कुछ सोचकर कहा—"तब मैं मैदान की ओर तोपों का मुँह फेरता हूँ। उन्हें छठी का दूध याद आवेगा।"

"और एक ही क्षण पश्चात्" सबदलसिंह ज़रा रोष-पूर्ण स्वर में बोला—"उन सबको अपनी प्रबल और हमारी हीन स्थिति का

भी स्मरण हो आवेगा। कुँवर साहब, यह लड़ाई कल के और अधिक आगे नहीं जा सकेगी।"

इस मंतव्य पर कुंजरसिंह को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। और लोगों में से भी कोई कुछ न बोला। सबदलसिंह ने धीरे, परंतु दृढ़ता के साथ कहा—"हम लोगों ने संधि के धर्म-सम्मत सब उपाय कर छोड़े। अलीमर्दान हमारी मर्यादा चाहता है, वह हम उसे नहीं देंगे। बाहर से अब किसी सहायता की कोई आशा नहीं है, इसलिये मेरी समझ में केवल एक उपाय आता है।"

उपस्थित लोगों की दृष्टियाँ तारों के क्षीण प्रकाश में उस उपाय के सुनने के लिये सबदलसिंह की ओर फिर गईं।

सबदलसिंह ने उसी दृढ़ स्वर में कहा—"हम सब गढ़ी से निकलकर शत्रुओं से लड़ते-लड़ते मरें। किसी को इनकार हो, तो कह डालने में संकोच न करे।"

कोई न बोला।

सबदलसिंह कहता गया—"परंतु हम अपने पीछे अपने बाल-बच्चों को अनाथ नहीं छोड़ सकते। अपनी बहू-बेटियों को मुसलमानों के घरों में भेजने से जो कालिख हमारे नाम पर लगेगी, उसे सहस्र गंगा नदियाँ नहीं धो सकेंगी। इसलिये ग्वालियर, चित्तौर और चँदेरी में जो कुछ हुआ था, वही बिराटा में भी हो।"

"वह क्या?" ज़रा व्याकुलता के साथ कुंजरसिंह ने प्रश्न किया।

"जौहर।" धीरज के साथ सबदलसिंह ने उत्तर दिया—"हमारी स्त्रियाँ और बच्चे हम सबको मरा हुआ समझकर चेतन चिता पर चढ़ जायँगे, और हम सब थोड़े समय बाद ही अपनी तलवारों के विमान पर बैठकर उनसे स्वर्ग में जा मिलेंगे।"

कुंजरसिंह को यह काव्यात्मक कल्पना कुछ कम पसंद आई। बोला—"मुझे यह बहुत अनुचित जान पड़ता है। [illegible]

को गोद में खिलाया है, जिन स्त्रियों के कोमल कंठों के आशीर्वाद से बाँहों ने बल पाया है, उन्हें अपनी आँखों जीते-जी ख़ाक होते हुए कभी नहीं देखा जा सकता। जब लोग सुनेंगे कि हमने अपने हाथों से निर्दोष बालकों को जला मारा, तब क्या कहेंगे ?"

सबदलसिंह ने कहा—"क्या कहेंगे ? कहें। हमारे मर जाने के पीछे लोग हमारे लिये क्या कहते हैं, इसे हम नहीं सुनेंगे, और फिर ऐसी अवस्था में हमारे बड़ों ने भी तो जगह-जगह यही किया है।"

"यहाँ कदापि न हो।" कुंजरसिंह बोला—"इसमें संदेह नहीं कि जैसे सो जाने के बाद फिर कुछ पता नहीं रहता कि क्या हो रहा है, वैसे ही मर जाने के बाद की अवस्था है। इसीलिये जीते जी ऐसा काम क्यों किया जाय कि मरने के समय जिसके लिये पछतावा हो, और आसानी के साथ मरने में बाधा पहुँचे ?"

दर्शनशास्त्र की इस संगत या असंगत बात के समझने की चेष्टा न करके सबदलसिंह ने क्षीण स्वर में कहा—"हम लोग कई दिन से यही बात सोच रहे हैं। मरने से यहाँ कोई नहीं डरता। परंतु हमारे पीछे जो विधवाएँ और अनाथ होंगे, उनकी कल्पना कलेजे को तड़पा देती है।"

"क्या पहले कभी विधवाएँ या अनाथ नहीं हुए हैं ?" अपने मन को आश्वासन देने के लिये अधिक और अपने श्रोताओं को अपेक्षाकृत कम। कुंजरसिंह ने कहा—"यदि हमारा यही सिद्धांत है, तो हमें कभी न मरने का ही उपाय सोचना चाहिए, और जब हमारे सामने हमारे सब प्रियजन समाप्त हो जायँ, तब हमें मरना चाहिए। जब रण-क्षेत्र में सैनिक जाता है, तब क्या वह यह सब सोच-विचार लेकर जाता है ? चलो, हम सब मरने के लिये बढ़ें। एक-एक प्राण का मूल्य सौ-सौ प्राण लें, और अपने बाल-

बच्चों को परमात्मा के भरोसे छोड़ें। उनके लिये हमें इसलिये भी नहीं डरना चाहिए कि हमारे विरोधियों में अनेक हिंदू भी हैं।"

सबदलसिंह के साथियों ने इस बात को मान लिया। वे सब मरने से नहीं हिचकते थे, परंतु अपने नन्हे-नन्हे बच्चों को अपने हाथ से नष्ट नहीं कर सकते थे।

"परंतु" उनमें से एक असाधारण उत्साह के साथ बोला—"केशरिया बाना हम अवश्य पहनेंगे। मौत के साथ हमारा ब्याह होना है, हम सादा कपड़ा पहनकर दूल्हा नहीं बनेंगे।"

घोर विपत्ति में भी मनुष्य का साथ हँसी नहीं छोड़ती। वे सब इस बात पर थोड़े-से हँसे, और सभी ने इस बेतुकी-सी बात को पसंद किया।

सबदलसिंह बोला—"परंतु केशर शायद ही बिराटा-भर में किसी के घर मिले।"

उन सैनिकों में से जिसने दूल्हा बनने का प्रस्ताव किया था, कहा—"मैं अभी ढूँढ़कर लाता हूँ। केशर न मिलेगी, तो हल्दी तो मिलेगी। मौत के हाथ भी तो उसी से पीले होंगे।" और तुरंत वहाँ से अदृश्य हो गया।

सबदलसिंह ने कुंजर से कहा—"अब अपनी तोपों से और अधिक आग उगलाओ।"

कुंजरसिंह बोला—"परंतु जान पड़ता है, अँधेरी रात के युद्ध में दोनो दल गुँथ गए होंगे।"

"तब जहाँ इच्छा हो, गोले बरसाओ।" सबदलसिंह ने कहा—"परंतु शत्रु के हाथ गोली-बारूद न पड़ने पावे।"

कुंजरसिंह अपने तोपचियों के पास गया। तोपों के मुँह मुस्काए। बहुत देर लग गई। लक्ष्य बाँधने में कम समय नहीं लगा। जब

इस लक्ष्य पर गोला-बारी आरंभ करा दी, तब सबदलसिंह के पास लौटा।

इस बीच में सबदलसिंह के उन सब सैनिकों ने अपने फटे कपड़े हल्दी से रँग लिए थे। थोड़ी-सी केशर भी एक जगह मिल गई थी। सबदलसिंह ने उसका टीका सबके भाल पर लगाया। कुंजर-सिंह ने भी अपने वस्त्र हल्दी में रँगे। सबदलसिंह ने केशर का टीका उसके भाल पर लगाते हुए कहा—"आज दाँगियों की लाज ईश्वर और तुम्हारी तोपों के हाथ है।"

"राजा," कुंजर ने कहा—"निराश नहीं होना चाहिए। क्या ठीक है, शायद ईश्वर कोई ऐसा ढंग निकाल दे कि बात रह जाय, और सब बच जायँ।"

"और कुछ रहने की ज़रूरत नहीं है, रहे या न रहे।" एक अधेड़ सैनिक बोला—"हम लोग केशरिया बाना पहन चुके हैं। यह विना ब्याह के नहीं उतारा जा सकता। सगाई पक्की करके अब विवाह से भागना कैसा? बचने-बचाने के सब विचार ध्यान से हटाओ। यदि यही बात मन में थी, तो भाल पर केशर का तिलक किस बिरते पर लगाया? अब ब्रह्मा के सिवा उसे कौन पोंछ सकता है? इतने दिनों घिरे-घिरे बहुत लड़े, अब जी खोलकर हाथ करेंगे, और स्वर्ग में विश्राम लेंगे। सच मानिए, यह देह भार-सी जान पड़ने लगी है।"

सबदलसिंह चिल्लाकर बोला—'मूठ पर हाथ रखकर राम-दुहाई करो कि सब-के-सब मरने का प्रयत्न करेंगे।"

सबने तलवार की मूठों पर हाथ रखकर ज़ोर से कहा—"राम-दुहाई, राम-दुहाई।"

ये शब्द कई बार, और देर तक दुहराए गए। उत्तरोत्तर उस ध्वनि में प्रचंडता आती गई। वे लोग इधर-उधर घूम-घूमकर दुहाई देने लगे।

इन लोगों के बढ़ते हुए शोर को अलीमर्दान ने भी सुना। उसने सोचा, खेल बिगड़ गया, अब चुपचाप काम नहीं बन सकता। यही विचार उसके सरदारों और सैनिकों के भीतर भी उठा। किसी एक ही भाव से प्रेरित होकर वे लोग पहले थोड़े-से और कुछ पल उपरांत ही बहुत-से गला खोलकर बोले—"अल्लाहो अकबर।"

'राम दुहाई' की पुकार इस प्रखर और प्रबल स्वर की गूँज में पतली और फीकी-सी पड़ गई। एक बार विराटा के सिपाहियों का कलेजा धसक-सा गया। परंतु 'अल्लाहो अकबर' की प्रबल गूँज के ऊपर कुंजर की तोपों की प्रबलता धायँ-धायँ हो रही थी, इसलिये सबदलसिंह के सैनिकों के हृदय में मरने-मारने की धुन ने, एक निराशा-जनित भयंकर नवीन अनुभव शीघ्र ही प्राप्त करने की कामना ने, पुनः साहस का संचार कर दिया। उन्हें आशा हो चली कि लड़ाई की लंबी घसीटी हुई थकावट से निस्तार पाने में विलंब नहीं है।

देवीसिंह ने भी 'राम-दुहाई' और 'अल्लाहो अकबर' के जयकार सुने, और उसे भी अपनी योजना को बदलना पड़ा। उसने सोचा— "अलीमर्दान विराटा पर आक्रमण करना ही चाहता है। अब किसी उपयुक्त अवसर की बाट जोहना बिलकुल व्यर्थ है। विराटा पर जिसका अधिकार पहले होगा, वही इस युद्ध को जीतने की आशा करे। इन मूर्खों की तोपें बिना किसी भेद के गोले बरसा रही हैं। यदि शीघ्र हमारे हाथ में आ गईं, तो हम रामनगर और विराटा, दोनो स्थानों से अलीमर्दान की सेना को कुचल सकेंगे।" वह अपनी सेना लेकर ज़रा और आगे बढ़ा। सबेरा होने में दो-तीन घंटे की देर थी। वह थोड़ा-सा और ठहरना चाहता था, कम-से-कम उस समय तक, जब तक अपने दल को खुलकर लड़ने योग्य परिस्थिति में प्रस्तुत न देख ले।

---

(१०२)

जैसे जंगल के कुपित पशु बिना किसी नियम-संयम के आगे-पीछे, नीचे-ऊँचे, कहीं भी लड़ जाते हैं, उसी तरह रात के उस पहर में वह युद्ध होता रहा। बिराटा की तोपें कभी अपने गोले दलीपनगर के सैनिकों पर, कभी कालपी के सैनिकों पर और कभी वृक्षों, पत्थरों पर फेंकती रहीं।

पूर्व दिशा में क्षितिज से नभ की ओर एक रेखा खिंची। उसकी आभा स्पष्ट न थी, परंतु गगन की नीलिमा और तारिकाओं की प्रभा के ऊपर उसका तिलक सा लग रहा था। वह जिस आगमन की सूचना दे रही थी, कौन जानता था कि उसमें क्या है।

इस समय बड़ी देर बाद छोटी रानी और गोमती का एक झरके में मिलाप हो गया। दोनो ने एक दूसरे के लिये तलवारें तानीं, और दोनो ने एक दूसरे के पास पहुँचकर मोड़ लीं।

"महारानी!" गोमती ने कहा।

"अरे! मैं समझी थी कोई और है।" छोटी रानी ने भी आश्चर्य के साथ कहा।

गोमती बोली—"अच्छा हुआ, आप मिल गईं। मुझे कुछ कहना है।"

"जल्दी कहो। समय नहीं है।" छोटी रानी ने कहा।

"मैं रामदयाल के साथ विवाह नहीं करूँगी, विश्वास रखिए।"

"इन बातों की चर्चा का यह समय नहीं है। तुम चाहे उसके साथ विवाह करना, चाहे उसका गला काट डालना, मुझे दोनो बातों में से एक से भी कोई मतलब नहीं।"

"मैं उसका गला भी न काटूँगी। जितना आश्रय या स्नेह मुझे इन दिनों संसार में रामदयाल से मिला है, उतना कुमुद को छोड़कर मैंने किसी से नहीं पाया है।"

तुम जिस जगह रामदयाल हो, वहीं जाओ; जिस जगह देवीसिंह या जनार्दन होंगे, मैं वहाँ जाऊँगी, या जहाँ मेरी मौत होगी, वहाँ। जाओ, हटो।"

"न, मैं आपके साथ ही रहूँगी। मैं इस तरह नहीं मरना चाहती। मैं दलीपनगर के राजा को भी नहीं मारना चाहती, परंतु उस नृशंस, निष्ठुर से एक बात कहकर अपनी छाती में पिस्तौल मारना चाहती हूँ। पिस्तौल मेरे पास है। उसे केवल इसी प्रयोजन से अभी तक सुरक्षित रक्खा है।"

"वह मुझे दे दो। मैं उसका ज़्यादा अच्छा उपयोग करूँगी।"

"न। मेरी एक बात सुनिए। आप और सब विचार एक ओर रखकर बिराटा की कुमारी की रक्षा का कुछ उपाय करिए। अली-मर्दान उसे ज़बरदस्ती अपनी दासी बनाना चाहता है। वह आपकी बात मानता है। पहले ही यदि आप उसे निवारण कर देतीं, तो वह आपकी मान जाता।"

"पागल," रानी ने कड़ककर कहा—"इन छोटी-छोटी-सी बातों के सोचने का समय मुझे नहीं है। दे अपनी पिस्तौल मुझे, और हो जा मेरे साथ। तू रामदयाल की दासी बनना चाहती है, यह मुझे मालूम हो गया है। मैं बाधा नहीं डालूँगी, भरोसा रख, परंतु पिस्तौल इधर दे, और चल मेरे साथ; यहाँ इस तरह खड़े-खड़े हम दोनो मार डाली जायँगी। चल नदी की ओर, जहाँ से प्रातःनक्षत्र का उदय होता हुआ जान पड़ता है। वहीं देवीसिंह इत्यादि कोई-न-कोई मिल जायँगे।"

गोमती ने फिर इनकार किया, और कुछ कहने को थी कि रानी गोमती की ओर झपटीं। गोमती उनका उद्देश्य समझकर हटी। रानी ने वार के लिये तलवार सँभाली। गोमती ने भागना आरंभ किया, और रानी ने गाली देकर उसका पीछा किया। जिस ओर जनार्दन की

टुकड़ी और कालपी का एक खंड परस्पर काँटों की तरह उलझ रहे थे, उसी ओर ये दोनो गईं। तलवारों के उस झंझावात के पास पहुँचकर गोमती उसमें प्रवेश न करने की इच्छा से फिर मुड़ी। रानी ने उसका फिर पीछा किया।

उधर से एक गोला इन दोनो के बीच में पड़कर आगे को सन्ना गया। जहाँ गिरा था, वहाँ उसने इतनी धूल उड़ाई कि दोनो की आँखें भर गईं। दोनो ही एक दूसरे से ज़रा हटकर आखें मींजने लगीं।

---

(१०३)

उस रात की धूमधाम ने नरपति और कुमुद को भी सजग किया। मंदिर के पास ही 'राम-दुहाई' की ध्वनियों ने नरपति को कारण का पता लगा लाने के लिये विवश किया। कारण की खोज कर लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई। थोड़ी ही देर में वह लौटकर आ गया। भरे हुए स्वर में उसने कुमुद से कहा—"जौहर हो रहा है।"

"जौहर ?" कुमुद ने अकचकाकर नरपति से पूछा—"क्या इसके लिये सब लोग तैयार हो गए हैं ? हम लोगों से किसी ने नहीं पूछा ?"

"मैंने भी यह प्रश्न राजा से किया था" नरपति ने उत्तर दिया—"मुझसे उन्होंने कहा—"मरने के लिये किसी से नहीं पूछना पड़ता।" और बड़ी रुखाई के साथ बोले—"तुम्हें मरना हो, तो तुम भी आ जाओ।" तुम्हारे विषय में उनकी सम्मति माँगी, तो कहा—'जो मन में आवे, सो करें।' तुम्हारी सम्मति क्या है ? इसी के लिये मैं व्याकुल हो रहा हूँ। सब दाँगी केशरिया बाना पहने उछलते-कूदते फिर रहे हैं।"

कुमुद ने गला साफ़ किया। दो पल चुप रही। फिर अर्द्ध-कंपित

स्वर में बोली—"मैं तो कभी की मरने के लिये तैयार हूँ। यदि इस युद्ध का कारण पहले ही मिट जाता, तो आज बिराटा के इतने शूर-सामंतों का व्यर्थ बलिदान न होता। मैं न-जाने क्यों जीवित रही ? किसके लिये ?" फिर तुरंत चुप हो गई। एक क्षण पश्चात् फिर कहा—"आप तो तैरना जानते हैं। तैरकर उस पार चले जाइए।"

"उस पार तो जाऊँगा", नरपति ने उत्तेजित होकर कहा—"परंतु तैरकर नहीं। पानी में प्राण देना मुझे कठिन जान पड़ता है। अथाह जल-राशि है। उसमें बड़े-बड़े भयानक मगरमच्छ हैं। जगह-जगह बड़ी-बड़ी भँवरें पड़ती हैं, और बहुत चौड़ा पाट है। मैं तो तलवार की धार पर मरना अधिक श्रेयस्कर समझता हूँ। मैं मूर्ख भले ही हूँ, परंतु इतना मूर्ख नहीं कि तुम्हें छोड़कर भाग जाऊँ। तुम उस पार चलो, तो तुम्हें लेकर चल सकता हूँ। देवी का स्मरण करो। वह बेड़ा पार लगावेंगी। उठो, चलो। मैं तुम्हें अभी सुरक्षित स्थान में पहुँचाऊँगा।"

स्थिर स्वर में कुमुद बोली—"यह असंभव है। सब लोग यहीं हैं, मैं भी यहीं रहूँगी। पार्थ, सारथी और तोपों के चलानेवाले जब यहाँ हैं, तो मेरा बाल बाँका नहीं हो सकता। और, जब कुछ भी न रहेगा, तो मा बेतवा तो सदा साथ है। आप अपनी रक्षा की चिंता अवश्य करें। मैंने जिस गोद में जन्म लिया है, उसे नष्ट होता हुआ नहीं देखना चाहती। आप जायँ। अकेले आपके यहाँ रहने से कोई सुविधा नहीं बढ़ेगी। देवी की आज्ञा है, दुर्गा का आदेश है, आप जायँ। आपके यहाँ ठहरने से अनिष्ट हो सकता है। आप जायँ। अभी चले जायँ।"

"मैं कदापि न जाऊँगा," नरपति ने हँसकर कहा—"मैं भी दाँगी हूँ। मैं भी अपने कपड़े हल्दी में रँगता हूँ। हम सब दाँगियों को

अपना अंतिम आशीर्वाद दो। हम थोड़े हैं, और दरिद्र हैं। तुम एक अनेक हो। शक्ति हो। शक्तिशालिनी हो। हमें वरदान दो, जिसमें पुरुष की तरह मरें।" फिर आँखें फाड़कर प्रखर स्वर में ऊपर की ओर देखकर बोला—"दुर्गे, देवी ! हम थोड़े-से दाँगियों ने अपने अंतिम रक्त-कण से आपके देवालय की रखवाली की है। हमारे हृदय को अब इतना बल दो कि अंत समय हमारे भीतर किसी तरह की हिचक न आवे, और हम हँसते-हँसते, तुम्हारे झूले की डोर पकड़कर, पार हो जायँ। मा, मा, आशीर्वाद दो।" 'दो, दो' की अंतिम गूँज उस खोह में कई बार गूँजी। नरपति का शरीर थिरकने लगा। वह प्रमत्त होकर गाने लगा, और ताली बजाने लगा—

"मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।
ऊँची - नीची घटिया डगर पहार ;
जहाँ वीरा लँगुरा लगाई फुलवार।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।
छोटी-सी रे मालिन लंबे ऊके केस ;
फुलवा बीने पुरुष के बेस।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।
बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास ;
उड़ गए फुलवा, रह गई बास।
मलिनिया फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।"

नरपति उठ खड़ा हुआ। गीत की गूँजती हुई तान में वह अपनी खोह के बाहर हो गया। शायद हल्दी के रंग में अपने फटे हुए कपड़े रँगने के लिये। कुमुद ने सिर नवा लिया। हाथ जोड़कर अपने कोमल कंठ से गाने लगी—

"मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।
बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास ;

उड़ गए फुलवा, रह गई बास।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।"

उस खोह में, उस रात्रि में, उस धूमधाम में, उस प्रकार चीत्कार में, उस धायँ-धायँ, सायँ-सायँ में उस कोमल कंठ की वह स्वर्गीय तान समा गई—

"उड़ गए फुलवा, रह गई बास।"

(१०४)

प्रभात-नक्षत्र क्षितिज के ऊपर उठ आया। दमक रहा था, और मुस्किरा-सा रहा था। वनराजि और नीचे की पर्वत-श्रेणी पर उसका मंद-मृदुल प्रकाश झर-सा रहा था।

देवीसिंह ने देखा, प्रातःकाल होने में अब अधिक विलंब नहीं है। उसने रामनगर की ओर वह बँधा हुआ संकेत किया, जिसे पाकर उस गढ़ी की तोपों को बिराटा पर गोले बरसाने थे। उस संकेत के पाने के आधी घड़ी बाद बिराटा पर गोले आने लगे।

तब देवीसिंह ने सोचा, यह अच्छा नहीं किया। यदि हमारी तोपों ने इन पागल दाँगियों को पीस डाला, तो अलीमर्दान का विरोध करने के लिये केवल हम हैं। अब किसी तरह यहाँ से अली-मर्दान को हटाना चाहिए। दिन निकलने के पहले यदि हम बिराटा पहुँच गए, तो कदाचित् हमारी ही तोपों से हमारा चकनाचूर हो जाय, इसलिये सूर्योदय तक केवल अलीमर्दान को खदेड़ने को उपाय करना ही ठीक जान पड़ता है।

देवीसिंह ने अपने दल को आक्रमण करने का आदेश दिया। 'अल्लाहो अकबर' के साथ 'दलीपनगर की जय,' 'महाराज देवीसिंह की जय' पुकारें सम्मिलित हो गईं। अलीमर्दान को अनजानी दिशा से आकस्मिक आक्रमण के धक्के को झेलने में विचलित हो जाना पड़ा

परंतु उसके सैनिक दलीपनगर के सैनिकों की तरह ही युद्ध के लिये तैयार खड़े थे। मुठभेड़ के प्रथम धक्के से पहले ज़रा पीछे हटकर फिर आगे बढ़े। आज अलीमर्दान बेतरह सचेष्ट था। देवीसिंह भी कोई कसर नहीं लगा रहा था। दोनो ओर के सैनिक भी हाथ और हथियार, दोनो पर प्राणों की होड़ लगा रहे थे। बराबरी का युद्ध हो रहा था। दोनो संयत तेजस्विता के साथ लड़ रहे थे। ऐसा भासित होता था कि उस युद्ध का भाग्य-निर्णय एक बाल से टँगा हुआ है।

प्रातःकाल का प्रकाश होने तक देवीसिंह ने जमकर लड़ना ही ज़्यादा अच्छा समझा। तितर-बितर होने में सारी योजना भ्रष्ट हो जाने का भय था। यही बात अलीमर्दान ने भी सोची।

निदान, पूर्व दिशा में लाली दौड़ी। अंधकार एक क्षण के लिये सघन और एक क्षण के लिये छिन्न-भिन्न-सा होता दिखलाई दिया।

उत्सुकता के साथ देवीसिंह ने जनार्दन शर्मा और लोचनसिंह के दलों को आँख से टटोला। जनार्दन की टुकड़ी तितर-बितर हो गई थी। कालपी के दल का एक भाग रामनगर की तलहटी में पहुँच गया था, दूसरा देवीसिंह की बग़ल में ही जनार्दन के एक भाग से उलझा हुआ था, और जनार्दन थोड़े-से सैनिकों के साथ कालपी की दूसरी टुकड़ी से घिरा हुआ था। इसमें छोटी रानी भी भाग ले रही थीं, लोचनसिंह का एक दस्ता कालपी के एक टुकड़े को अलीमर्दान की छावनी के पीछे निकाल चुका था। लोचनसिंह कालपीवाले दस्ते पर एक ओर और अलीमर्दान के तैयार योद्धाओं पर दूसरी ओर प्रहार कर रहा था।

लोचनसिंह को अपने निकट देखकर देवीसिंह ने चिल्लाकर कहा—"शाबाश चामुंडराय, बढ़े चले आओ।" इस वाक्य को लोचनसिंह या उसके किसी सैनिक ने नहीं सुन पाया, परंतु देवीसिंह के अनेक सैनिकों के मुँह से यह वाक्य एक साथ निकला।

लोचनसिंह की टुकड़ी ने भी उत्तर दिया—"आए, अभी आए।"

जनार्दन देवीसिंह के और भी पास था। देवीसिंह ने चिल्लाकर कहा—"जनार्दन, घबराना नहीं। लोचनसिंह और हमारे बीच में शत्रु अभी दबोचा जाता है।" देवीसिंह इतने ज़ोर से चिल्लाया था कि उसका गला भर्रा गया, और उसे खाँसी आ गई। खाँसी ने उसके सिर को ज़रा नीचा कर दिया, और तिरछा भी, इसलिये एक स्थान से आई हुई एक अचूक गोली उसके कान को लेती हुई चली गई, परंतु प्राण बच गया।

चिंता के साथ अलीमर्दान ने देखा। भयानक उत्तेजना के साथ उसकी सेना ने जनार्दन के खंड पर वार करने शुरू किए। जनार्दन के लिये पीछे हटने को न स्थान था, न अवसर। इसलिये वह देवीसिंह की ओर ढलने लगा। देवीसिंह के सैनिकों की मार के कारण कालपी के सैनिकों ने जनार्दन को स्थान दे दिया, और वह अपने सैनिकों-सहित देवीसिंह की टुकड़ी के साथ आ मिला।

"महाराज देवीसिंह की जय!" इस ओर से तुमुल ध्वनि हुई।

"महाराज देवीसिंह की जय!" लोचनसिंह के दल से प्रचंड शब्द गूँज उठे।

रामनगर के गढ़ से बिराटा की गढ़ी पर निशाना बाँधकर धायँ-धायँ गोले बरसने लगे, और उसकी दीवारें एक-एक करके टूटने लगीं। एक गोला मंदिर पर गिरा। उसका एक भाग खंडित हुआ। दूसरा गिरा, दूसरा भाग खंडित हुआ। तीसरा गिरा, वह धुस्स होकर रह गया। इतनी धूल उड़ी कि चारो ओर छा गई। पत्थरों और ईंटों के इतने टुकड़े टूटकर बेतवा की धार में गिरे कि पानी छर्र-छर्र हो गया।

रामनगर की तोपों के मुँह बंद करने का कोई उपाय देवीसिंह के हाथ में न था। पहले रामनगर फिर बिराटा की ओर

चिंतित दृष्टि से देवीसिंह ने देखा। आँखों में आँसू आ गए। वे कान की जड़ से बहनेवाले ख़ून में ढलकर जा मिले।

आह भरकर उसने कहा—"मेरे हाथ से मंदिर टूटा। हे भगवन्, किसी तरह इस युद्ध को बंद करो—चाहे मेरा प्राण लेकर ही।"

परंतु न तो रामनगर की तोपों ने गोले बरसाने बंद किए, और न देवीसिंह का प्राण ही किसी ने उस समय ले पाया।

बिराटा की टूटी हुई दीवारों में से फटे चिथड़े पहने हुए सबदल-सिंह के सैनिक दिखलाई पड़ने लगे। उनके चिथड़े पीले रँगे हुए थे। सिर के फटे हुए साफ़ों के चिथड़े लहरा रहे थे, मानो विजय-पताकाएँ हों। रामनगर की तोपों से वे नहीं डर रहे थे। उनकी तोपें कभी अलीमर्दान और कभी जनार्दन की टुकड़ियों पर आग उगल रही थीं। परंतु एक गोले के बाद दूसरे के चलने में बराबर अंतर बढ़ता चला जाता था।

सूर्योदय हुआ—उसी सज-धज के साथ, जैसा असंख्य युगों से होता चला आया है। सूर्य की किरणों ने भी बिराटा के दुर्बल, विवर्ण सैनिकों के पीले वस्त्र-खंडों को ओर झाँका, और उनकी दमकती तलवारों को चमका दिया, मानो रश्मियों ने उन्हें अर्घ्य दिया हो।

बिराटा के सैनिक उन टूटी-फूटी दीवारों के पीछे डटे हुए थे। बाहर निकलकर लड़ने को अब तक नहीं आए थे।

देवीसिंह ने इन पीत-पट-धारियों की चुप्पी का अर्थ समझ लिया। आह भरकर मन में कहा—"इसका पाप भी मेरे ही सिर आना है। किस कुघड़ी में दलीपनगर का राजमुकुट मेरे माथे पर रक्खा गया था!" एक ही क्षण पीछे देवीसिंह ने दाँत पीसकर निश्चय किया—इन्हें अवश्य बचाऊँगा, चाहे होड़ में दलीपनगर नहीं, सारी पृथ्वी और स्वर्ग को भी भले ही हार जाऊँ। और चिल्लाकर बोला—

"बढ़ो, बढ़ो। क्या खड़े होकर युद्ध कर रहे हो? आज ही मा का ऋण चुकाना है। बढ़ो, और मरो। इससे अच्छी मृत्यु कभी न मिलेगी।"

सैनिक बढ़े, और उन सबके आगे उछलता हुआ देवीसिंह।

सूर्य की किरणें कान की जड़ से बहनेवाले रक्त को दमक देने लगीं। अपने राजा को घायल और उछलकर सबसे आगे बढ़ा हुआ देखकर दलीपनगर के योद्धा सब ओर से अलीमर्दान की सेना पर पिल पड़े।

---

(१०८)

परंतु अलीमर्दानवाले दस्ते ने इस भीषण आक्रमण को उसी तरह रोक लिया, जैसे ढाल तलवार का वार रोक लेती है। जिस ओर से लोचनसिंह आक्रमण कर रहा था, उस ओर कालपी की एक टुकड़ी ने भयंकर संग्राम आरंभ कर दिया। परंतु वह दो तरफ़ से घिर गई।

अलीमर्दान देवीसिंह के सैनिकों से लड़ता-भिड़ता, पंक्तियों को चीरता-फारता नदी के किनारे आ गया, जहाँ रात के आरंभ से ही बिराटा के कुछ सैनिक प्रहरी का काम कर रहे थे। उन्हें थोड़े-से क्षणों में समाप्त करके वह अपने कुछ सैनिकों-सहित नाव पर चढ़ गया। उसके एक दस्ते ने तीरवर्ती गाँव पर अधिकार कर लिया। बिराटा-गढ़ी की फूटी दीवारों में से बंदूक़ों की एक बाढ़ चली। अलीमर्दान के कुछ सैनिक हताहत हुए। उसके और सैनिक, प्रचुर संख्या में, पानी में कूद पड़े। वहाँ धार छोटी थी। वे लोग जल्दी ध्वस्त मंदिर के नीचेवाली पठारी पर आ गए। अलीमर्दान भी वहाँ नाव द्वारा आ गया।

देवीसिंह प्रबल पराक्रम से ही अलीमर्दान के शेष सैनिकों को

पानी में कूद पड़ने से रोक सका। उसके दल ने उन लोगों को थोड़ा-सा पीछे हटाया। फिर देवीसिंह भी अपने कुछ सैनिकों के साथ पानी में कूद पड़ा।

अलीमर्दान और उसके सैनिक दौड़ते हुए ऊपर चढ़े।

बिराटा के पीत-पट-धारी अपनी टूटी दीवारों के बाहर निकल पड़े। तलवारों से सिर और धड़ कटने लगे। अलीमर्दान के सैनिक कवच और झिल्लम पहने हुए थे, तो भी दाँगियों की तलवारों ने उन्हें चीर डाला।

सबदलसिंह ने अलीमर्दान को ललकारा—"जब तक इस गढ़ी में दाँगी का जाया जीवित है, तेरी साध पूरी न हो पाएगी। ले।"

अलीमर्दान चतुर लड़ाका था। सबदलसिंह के वार को बचा गया, और फिर उसने अपनी तलवार का ऐसा प्रहार किया कि उसका दायाँ हाथ कंधे से कटकर अलग जा गिरा। सबदलसिंह भूशायी हो गया। बेतवा की मंदगामिनी धारा पर रपट-रपटकर चमकनेवाली किरणों की ओर उसकी दृढ़ दृष्टि थी।

फिर जो कुछ हुआ, वह थोड़े-से क्षणों का काम था। सबदलसिंह के योद्धा अलीमर्दान के बचे हुए दस्ते की तलवारों की नोकों पर झूम-झूमकर आ टूटने लगे। अलीमर्दान के थोड़े-से ही कवचधारी उन लोगों से बच पाए। परंतु दाँगी कोई न बचा। जगह-जगह कटे-कुटे शरीरों के ढेर लग गए। 'केशरिया बानों से ढकी हुई पृथ्वी हल्दी से रँगी मालूम होती थी, मानो रण-चंडी के लिये पाँवड़ा बिछाया गया हो।

देवीसिंह अपने थोड़े-से सैनिकों-सहित गढ़ी के नीचे आया। विलंब हो गया था। अलीमर्दान गढ़ी में प्रवेश कर चुका था।

देवसिंह ने अपने सैनिकों को, जो उस पार थे, नदी में कूद पड़ने के लिये हाथ झुलाया।

इतने में कुंजरसिंह ने एक गोला दलीपनगर की इसी टुकड़ी पर फेका। इस कारण इन्हें ज़रा पीछे हटना पड़ा। परंतु दलीपनगर की सेना का एक बहुत बड़ा भाग नदी-किनारे के ज़रा ऊपरी भाग से पानी में कूद पड़ा, और वेग तथा व्यग्रता के साथ देवीसिंह की ओर आने लगा। देवीसिंह धीरे धीरे गढ़ी की टूटी दीवारों की ओर चढ़ने लगा। पीले कपड़ों से ढकी हुई मृत और अर्द्ध-मृत देहों को देखकर उसका कलेजा धसने लगा, और पैर लड़खड़ाने लगे। वह गढ़ी के भीतर न जा सका। धार तैरकर आनेवाले अपने सैनिकों के आने तक वहीं ठिठक गया। पीले कपड़ों से ढके हुए लोहू-लुहान की ओर फिर आँख गई। होठ दबाकर मन में कहा—"कुंजरसिंह की हिंसा ने इन्हें मुझसे न मिलने दिया।"

(१०६)

कुंजरसिंह की तोप का वह अंतिम गोला था। उसे दागकर, कुंजरसिंह अपनी तोपों को नमस्कार कर खोह की ओर तेज़ी के साथ आया। खोह के बाहर उसे वीणा-विनिंदित स्वर में सुनाई पड़ा—

मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।
बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास ;
उड़ गए फुलवा, रह गई बास।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।"

"उठो, चलो।" कुंजरसिंह ने खोह में धसकर कुमुद से कहा—"मुसलमान घुस आए हैं। हमारे सब सैनिकों ने जौहर कर लिया है।"

कुमुद खड़ी हो गई। मुस्किराई। परंतु आँखों में एक विलक्षण प्रचंडता थी। बोली—"सबने जौहर कर लिया है! सबने? अच्छा किया। चलो, कहाँ चलें?"

"नदी के उस पार, गढ़ी के पूर्व ओर से। अभी वहाँ कोई नहीं पहुँचा है। हम दोनो चलेंगे।"

"हाँ, दोनो चलेंगे उस पार; परंतु अकेले-अकेले।"

"मैं समझा नहीं।" कुंजरसिंह ने व्यग्रता के साथ कहा।

"मैं उस ओर से जाऊँगी, जहाँ मार्ग में कोई न मिलेगा।" कुमुद दृढ़ता के साथ बोली—"आप उस ओर से आएँ, जहाँ जौहर हुआ है। हम लोग अंत में मिलेंगे।"

और, उसने अपने आँचल के छोर से जंगली फूलों की गूँथी हुई एक माला निकाली, और कुंजर के गले में डाल दी। उस माला में फूल अधखिले और सूखे थे।

कुंजरसिंह ने कुमुद को छाती से लगा लिया। कुमुद तुरंत उससे अलग होकर बोली—"यह मेरा अक्षय भांडार लेकर जाओ। अब मेरे पास और कुछ नहीं है।" कुमुद के आँसू आ गए। उसने उन्हें निष्ठुरता के साथ पोंछ डाला। थोड़ी दूर पर लोगों की आहट सुनकर कुमुद ने आदेश के स्वर में कहा—"जाओ। खड़े मत रहो। मुझे मार्ग मालूम है।" फिर जाते-जाते मुड़कर बोली—"मेरा मार्ग निःशंक है; तुम अपना असंदिग्ध करो।"

"मैं अभी आकर मिलता हूँ। तुम चलो।" कुंजरसिंह ने कहा। कुमुद तेज़ी के साथ एक ओर चली गई, और दूसरी ओर तेज़ी के साथ कुंजरसिंह।

उन दोनो के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद अलीमर्दान अपने लोहू-लुहान सैनिकों के साथ आ धमका। जब वहाँ कोई न मिला, उसने अपने सैनिकों से कहा—"यहीं कहीं है। इन चट्टानों में तलाश करो। मैं इधर देखता हूँ। कुछ लोग उधर से आनेवालों को रोकने के लिये मुस्तैद रहना।"

अलीमर्दान और उसके कुछ सैनिक इधर-उधर ढूँढ़ने-खोजने

लगे। जिस ओर कुंजरसिंह गया था, उसी ओर अलीमर्दान गया। एक ऊँची चट्टान पर खड़े होकर अलीमर्दान ने धीरे से अपने निकटवर्ती एक सैनिक से कहा—"वह देखो, धीरे-धीरे उस ढालू चट्टान की तरफ़ जा रही है। कमाल है, देखो।"

---

(१०७)

कुंजर को मार्ग में देवीसिंह मिल गया।

"तुम कहाँ जा रहे हो?" देवीसिंह ने पूछा, और जो बात वह कहना नहीं चाहता था, वह उसके मुँह से निकल गई—"तुमने जौहर नहीं किया?"

कुंजरसिंह ने भी अपने कपड़े पीले किए थे, परंतु वह सार्वजनिक बलिदान में अपनी तोपों की धुन के कारण शामिल न हो पाया था। देवीसिंह की बात उसके कलेजे में काँटे की तरह चुभ गई।

बोला—"जौहर ही के लिये आया हूँ। आज जीवन-भर की कसक मिटाऊँगा। तुमने मेरे स्वत्व का अपहरण किया। तुम्हें मारे विना मुझे कभी चैन न मिलेगा। तुम्हारा सिर काटने से बढ़कर मेरे लिये कुछ भी नहीं है।" और देवीसिंह पर वार करने लगा। वार सँभालते हुए देवीसिंह ने कहा—"स्वर्ग या नरक, जो तुम्हारे भाग्य में होगा, वहीं अभी भेजता हूँ।"

लड़ाई के लिये स्थान उपयुक्त न था, इसलिये स्वभावतः दोनो लड़ते-लड़ते नदी की एक ढालू पठारी की ओर क्रमशः चले गए।

दलीपनगर की सेना ने अपने राजा को इस विपत्ति में ग्रस्त देखा। अलीमर्दान भी बहुत अधिक सैनिक लेकर बिराटा की गढ़ी में नहीं गया था, इसलिये उसकी सेना भी अपने नायक की रक्षा के लिये उत्साहित हो उठी। दोनो दल नदी की ओर झुके, और परस्पर लड़ते-भिड़ते पानी में कूद पड़े। लोचनसिंह पीछे से दबाता हुआ

आ पहुँचा। जनार्दन भी दौड़ पड़ा। इसी भीड़ में एक ही स्थान पर रामदयाल, लोचनसिंह और छोटी रानी आ भिड़े।

रानी ने लोचनसिंह पर तलवार उठाई, और कहा —"ले बेईमान, मूर्ख!" लोचनसिंह के पैर को इस वार ने थोड़ा-सा घायल कर दिया। लोचनसिंह बोला —"दलीपनगर की दुर्दशा के कारण को अभी मिटाता हूँ।" और आँधी की तरह तलवार घुमाकर लोचन-सिंह ने छोटी रानी की भूलोक-यात्रा समाप्त कर दी।

रामदयाल खिसका। कहता गया—'दाऊजू, मैं लड़ाई में नहीं हूँ। मैं तो किसी को ढूँढ़ रहा हूँ।"

"जो जन्म-भर किया है, वही किया कर नीच!" लोचनसिंह ने लात मारकर कहा, और वह तुरंत अपनी सेना के आगे पानी में कूद पड़ा। रामदयाल एक चट्टान पर से भरभराकर पत्थरों से टकराता हुआ पानी में जा गिरा, और फिर कभी नहीं देखा गया।

नदी की वह छोटी धार उतराते हुए सिपाहियों से भर गई। कोई कूदते जा रहे थे, कोई तैरते और कोई गढ़ी के नीचे पहुँचते जा रहे थे।

उधर खुली और ज़रा विस्तृत जगह पाकर कुंजरसिंह देवीसिंह पर वार-पर-वार करने लगा। दलीपनगर और कालपी के भी कुछ सैनिक लड़ते-लड़ते इसी ओर आ रहे थे। ढालू चट्टान के धारवर्ती छोर की ओर कुमुद सरकती जा रही थी, और पीछे-पीछे अलीमर्दान। वह शीघ्र गति से और अलीमर्दान हथियारों के बोझ के मारे ज़रा धीरे-धीरे।

कुंजरसिंह ने देवीसिंह पर वार करते-करते उस ओर देखा। हाथ शिथिल हो गया। हाँफते-हाफते बोला—"प्रलय हुआ चाहती है।"

"अभी, एक क्षण की भी कसर नहीं है।" देवीसिंह ने कहा, और तलवार का भरपूर हाथ दिया। कुंजरसिंह का सिर धड़ से कटकर

अलग जा पड़ा। गले की माला छिन्न हो गई। सूखे हुए फूल पर रक्त का छींटा पड़ा। सूर्य की किरण में वह चमक उठा, मानो अनेक रश्मियों की ज्योति उसमें समा गई हो।

अलीमर्दान और कुमुद के बीच में अभी कई डगों का अंतर था। देवीसिंह उसी ओर लपका।

कुमुद शांत गति से ढालू चट्टान के छोर पर पहुँच गई। अपने विशाल नेत्रों की पलकों को उसने ऊपर की ओर उठाया। उँगली में पहने हुई अँगूठी पर किरणें फिसल पड़ीं। दोनो हाथ जोड़कर उसने धीमे स्वर में गया—

"मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के
बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी राम;
उड़ गए फुलवा, रह गई बास।"

उधर तान समाप्त हुई, इधर उस अथाह जल-राशि में पैंजनी का 'छम्म' से शब्द हुआ। धार ने अपने वक्ष को खोल दिया, और तान-समेत उस कोमल कंठ को सावधानी से अपने कोश में रख लिया!

ठीक उसी समय वहाँ अलीमर्दान भी आ गया। घुटना नवाकर उसने कुमुद के वस्त्र को पकड़ना चाहा, परंतु बेतवा की लहर ने मानो उसे फटकार दिया। मुट्ठी बाँधे खड़ा रह गया।

इतने में रक्त से रँगी तलवार लिए हुए देवीसिंह आ पहुँचा। अलीमर्दान ने तलवार-समेत अपने दोनो हाथों को अपनी छाती पर कसकर कहा—

"आप—राजा देवीसिंह हैं?"

"हाँ सँभलो।" देवीसिंह ने उत्तर दिया।

"क्या झलक थी महाराज!" लड़ने का कोई भी लक्षण न दिखलाते हुए अलीमर्दान बोला—"बहुत हो चुकी। अब बंद करिए।